समुद्रविज्ञान पाठमाला

भविष्य की आशा
हिंद महासागर

श्याम सुंदर शर्मा
राधाकांत भारती

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

भविष्य की आशा :
हिंद महासागर

लेखक
श्याम सुंदर शर्मा
(पूर्व संपादक 'विज्ञान प्रगति')
राधाकांत भारती
(पूर्व संपादक 'भगीरथ')

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार
2004

© भारत सरकार, 2004
© Government of India, 2004

प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
(माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

मूल्य :

देश में	:	रु.
विदेश में	:	पौंड/डॉलर

बिक्री हेतु संपर्क सूत्र :

(1) **वैज्ञानिक अधिकारी (बिक्री)**
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

(2) **प्रकाशन नियंत्रक**
प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
सिविल लाईन्स
दिल्ली–110 054

आयोग के पूर्व अध्यक्ष

1.	डॉ. दौलत सिंह कोठारी	1961-1965
2.	डॉ. निहाल करण सेठी	1965-1966
3.	डॉ. विश्वनाथ प्रसाद	1966-1967
4.	डॉ. एस. बाल सुब्रह्मण्यम	1967-1968
5.	डॉ. बाबूराम सक्सेना	1968-1970
6.	श्री कृष्ण दयाल भार्गव	1970-1970
7.	श्री गंटि जोगि सोमयाजी	1970-1971
8.	डॉ. पी. गोपाल शर्मा	1971-1975
9.	प्रो. हरवंश लाल शर्मा	1975-1980
10.	प्रो. मलिक मोहम्मद	1983-1987
11.	प्रो. सूरजभान सिंह	1988-1994
12.	प्रो. प्रेमस्वरूप सकलानी	1994-1998
13.	डॉ. हरीश कुमार	1998-1998
14.	डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव	1998-2001
15.	डॉ. हरीश कुमार	2001-2003

वर्तमान अध्यक्ष

16.	डॉ. पुष्पलता तनेजा	2003-

पुनरीक्षण एवं संपादन

प्रधान संपादक
डॉ. पुष्पलता तनेजा

संपादक
दुर्गा प्रसाद मिश्र

पुनरीक्षक
डॉ. राजीव निगम
वरिष्ठ वैज्ञानिक
राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा

प्रकाशन

श्री राम बहादुर
उप निदेशक

डॉ0 पी0 एन0 शुक्ल
वैज्ञानिक अधिकारी

डॉ0 संतोष कुमार
सहायक वैज्ञानिक अधिकारी

श्री आलोक वाही
कलाकार

प्रस्तावना

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन, सन 1961 में, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक परिभाषा-कोशों, चयनिकाओं, पाठमालाओं तथा विश्वविद्यालय-स्तरीय हिंदी-पुस्तकों का निर्माण किया है। अनेक पाठ्य-पुस्तकें, शब्द-संग्रह, परिभाषा-कोश, चयनिकाएं, पत्रिकाएं, पाठमालाएं आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि उनकी विषय-सामग्री उपयोगी तथा अद्यतन हो और भाषा सरल, बोधगम्य एवं आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी माध्यम से अपने-अपने विषय को पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला "भविष्य की आशाः हिंद महासागर" प्रकाशन और सूचना निदेशालय (वर्तमान राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं सूचना स्रोत संस्थान), सी.एस.आई.आर. द्वारा प्रकाशित हिंदी-विज्ञान मासिक पत्रिका विज्ञान-प्रगति के पूर्व संपादक श्री श्याम सुंदर शर्मा और 'भगीरथ' पत्रिका के पूर्व संपादक श्री राधा कान्त भारती द्वारा लिखी गई है।

इसकी विषय-सामग्री बारह अध्यायों में विभाजित है। लेखकों ने विषय-सामग्री का संकलन और प्रस्तुतिकरण बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया है। पाण्डुलिपि का पुनरीक्षण दोना पावला, गोवा स्थिति राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान -संस्थान में कार्यरत वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. राजीव निगम ने किया है। लेखकों और पुनरीक्षक के अथक प्रयास से ही यह कार्य संपन्न हुआ है जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

पाठमाला की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण है। इसमें वैज्ञानिक तथा

तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित हिंदी की मानक शब्दावली का प्रयोग करने का प्रयास किया गया है और पुस्तक के अंत में तकनीकी शब्दों की परिभाषाएं और सूचियां भी दी गई हैं। पाठमाला की उपयोगिता में वृद्धि हो, इसके लिए पाठमाला के संपादक श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र ने परिशिष्ट में आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली निर्माण के सिद्धांतों और उसके प्रकाशनों की सूचियां दी हैं।

मुझे विश्वास है कि यह पाठमाला स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

पुष्पलता तनेजा

(डॉ. पुष्पलता तनेजा)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
भारत सरकार

नई दिल्ली

प्राक्कथन

हमारे देश, भारत, को सागर ने तीन ओर से घेर रखा है। वह हमारी जलवायु, वनस्पति, जीव-जंतुओं को तथा हमारे रहन-सहन और यहाँ तक कि हमारे इतिहास को भी निरंतर प्रभावित करता रहता है। वह हमें अन्य देशों से अलग नहीं करता, वरन् उनसे जोड़ता है। उसका हमारे देश के साथ हमेशा से घनिष्ठ संबंध रहा है और अब भी है। वह संबंध इतना अटूट रहा है कि उस सागर का नाम ही हमारे देश के नाम पर "हिंद महासागर" रख दिया गया है।

प्राचीन भारतवासी भी सागर से प्रेम करते थे। मोहनजोदडो हड़प्पा सभ्यता काल में, आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व भी, वे अन्य देशें, विशेष रूप से पश्चिमी एशियाई देशों के साथ समुद्री मार्ग से, नियमित रूप से व्यापार करते थे। उस समय उन्होंने गुजरात के तट पर अनेक बंदरगाह स्थापित कर लिए थे। यह तथ्य राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा लोथल में किए गए अध्ययनों से भली-भांति सिद्ध हो गया है। उस समय भी हमारे देशवासी विशाल डॉक-यार्ड बनाने में सक्षम थे।

मोहनजोदडो-हड़प्पा सभ्यता काल के बाद भी भारतवासी निरंतर समुद्री-यात्राएँ करते रहे। ये यात्राएँ केवल व्यापार के लिए ही नहीं होती थीं। उनका उद्देश्य शांति, सद्भावना, संस्कृति और धर्म का प्रचार-प्रसार करना भी था। इसी उद्देश्य से उन्होंने अनेक देशों, विशेष रूप से दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में अपनी बस्तियाँ भी बसाईं थीं। इतिहास साक्षी है कि प्राचीन भारत के सम्राटों के पास शक्तिशाली नौसेनाएँ भी थीं और उनकी मदद से वे आस-पास के देशों पर विजय भी प्राप्त करते थे।

मध्य युग में समुद्री यात्राओं, तथा नौ सेना रखने की परंपरा कुछ शिथिल हो गई थी परंतु देश के आजाद होने के बाद सागर में हमारी रुचि फिर प्रबल हो गई।

अविश्वसनीय प्रतीत होते हुए भी यह सच है कि उन्नीस सौ साठ के दशक तक वैज्ञानिकों को चंद्रमा के बारे में अधिक जानकारी थी और हिंद महासागर के बारे में कम। इसका मुख्य कारण शायद यह था कि आधुनिक सागरविज्ञान का विकास पश्चिमी देशों में हुआ था और उनके लिए अंध और प्रशांत महासागर जितने महत्त्वपूर्ण थे उतना हिंद महासागर नहीं। वैसे यह निर्विवाद तथ्य है कि समुद्री यात्राएँ सबसे पहले हिंद महासागर से ही आरंभ हुईं थीं।

पिछली सदी के मध्य में अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान आयोजित किया गया। उसमें अनेक देशों के अनुसंधान पोतों ने भाग लिया तथा उपग्रह सहित सब आधुनिक यंत्रों का उपयोग किया गया। अभियान में भारतीय वैज्ञानिकों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अभियान के दौरान हिंद महासागर की भौतिक संरचना, पानी, लहरों, जलधाराओं, जीव-जंतुओं, खनिजों तथा मानसून पवनों के उद्गम के बारे में बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुईं, परंतु इस अभियान की सबसे बड़ी उपलब्धि थी राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान की स्थापना। आज यह संस्थान सागर के विभिन्न पक्षों पर शोध और अध्ययन कर रहा है। इसके वैज्ञानिकों ने देश के तटीय सागरों का गहन अध्ययन किया है; उनको प्रदूषण से बचाने के उपाय सुझाए हैं, तेल ले जाने के लिए सागर की तली पर पाइप बिछाए हैं; जलमग्न प्राचीन नगरों और जल जहाजों की खोज की है तथा अन्य अनेक जनोपयोगी कार्य किए हैं। वैसे उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है मध्य हिंद महासागर की तली पर बिखरी हुई बहुधात्विक पिंडों के नमूने निकालना। उनकी इस उपलब्धि के फलस्वरूप भारत विश्व के उन गिने-चुने देशों की जमात में शामिल हो गया है जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ ने बहुधात्विक पिंडों की खोज करने और निकालने के लिए मनोनीत किया है।

भारत सरकार के महासागर विकास विभाग की स्थापना के बाद सागर अध्ययन और अनुसंधान कार्यों में बहुत तेजी आई। अब हमारे वैज्ञानिक हिंद महासागर पर से यात्रा करके प्रतिवर्ष, नियमित रूप से, अंटार्कटिक महाद्वीप जाते हैं और वहाँ अध्ययन और शोध करते हैं।

प्राचीन काल से ही सागर तटों पर हमारे नगरों और तीर्थों की स्थापना होती रही है। अब भी हमारे देश की लगभग एक-चौथाई आबादी सागर-तटों पर ही बसी है। हमारे तीन महानगर तटों पर ही स्थित हैं।

अब हिंद महासागर हमारे लिए पहले से कहीं अधिक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हो गया है। उसमें ही हम अपनी निरंतर बढ़ती हुई आबादी की अनेक समस्याओं — यथा पेयजल, खाद्य और उद्योगों के लिए कच्चा माल, ऊर्जा आदि की बढ़ती हुई माँगों की पूर्ति की समस्याओं — का हल ढूँढ़ सकते हैं। वह देश की रक्षा की दृष्टि से भी और अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। वह हमारे लिए "भविष्य की आशा" बन गया है।

आज वैज्ञानिक ही नहीं, आम जनता भी हिंद महासागर के विविध पक्षों के बारे में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करना चाहती है। परंतु उसे ये जानकारियाँ सरल भाषा और सुबोध शैली में चाहिए, जिससे वे उन्हें आसानी से समझ सकें। इस दिशा में सर्वश्री श्यामसुंदर शर्मा और राधाकांत भारती द्वारा लिखित और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा प्रकाशित पुस्तक "भविष्य की आशाः हिंद महासागर" बहुत उपयुक्त और समीचीन है।

श्री श्यामसुंदर शर्मा कुशल विज्ञान-लेखक हैं जिन्होंने विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विभिन्न शाखाओं पर अनेक पुस्तकों की रचना की है। इनमें से पाँच पुस्तक सागरविज्ञान के विविध पक्षों पर ही हैं। उन्होंने लगभग पच्चीस वर्षों तक देश की सर्वाधिक लोकप्रिय वैज्ञानिक पत्रिका "विज्ञान प्रगति" का संपादन किया।

श्री राधाकांत भारती जाने-माने विज्ञान-लेखक हैं, उन्होंने अनेक वर्षों तक भारत सरकार के सिंचाई मंत्रालय की पत्रिका "भगीरथ" का सफल संपादन किया था। उन्होंने भूगोल और संबंधित विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना की है। भारत की नदियों पर श्री भारती का विशेष अध्ययन है। इनके लेखन तथा अनुसंधान के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर दूरदर्शन ने नदियों पर वृत्त-चित्र की शृंखला प्रदर्शित की है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर उपयोगी शब्दावली गढ़ने के अतिरिक्त विश्वविद्यालय स्तर की तथा लोक-वैज्ञानिक पुस्तकों का प्रकाशन भी करता है। आयोग की वर्तमान अध्यक्ष, डॉ. पुष्पलता तनेजा बहुत कर्मठ तथा बहुआयामी व्यक्तित्व वाली महिला हैं जो दुरुह वैज्ञानिक साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। आयोग के कार्यों को इन्होंने नई दिशा दी है।

"भविष्य की आशा : हिंद महासागर" एक सराहनीय तथा अभिनंदनीय प्रयास है। मेरी कामना है कि यह पुस्तक देश के हर स्कूल और कॉलेज के पुस्तकालयों में पहुँचे जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग हिंद महासागर के बारे में जान सकें और लाभ उठा सकें।

डा. एस.जैड. कासिम
पूर्व सचिव, महासागर विकास विभाग तथा
सदस्य, योजना आयोग, भारत सरकार
नई दिल्ली

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
पहला अध्याय	: मानव जाति की सांझी धरोहर : सागर	1
दूसरा अध्याय	: हिंद महासागर कैसे बना?	10
तीसरा अध्याय	: इतिहास के आईने में हिंद महासागर	20
चौथा अध्याय	: भौतिक संरचना	34
पाँचवा अध्याय	: मानसून का जन्मदाता	52
छठा अध्याय	: हिंद महासागर की जैव संपदा	71
सातवां अध्याय	: खनिज संपदा	99
आठवां अध्याय	: ऊर्जा का अक्षय स्रोत	114
नवां अध्याय	: हिंद महासागर में बढ़ता प्रदूषण	127
दसवां अध्याय	: आधुनिक भारत में सागरविज्ञान	142
ग्यारहवां अध्याय	: समुद्री पर्यावरण सुरक्षा : अंतर्राष्ट्रीय प्रयास	164
बारहवां अध्याय	: भविष्य की आशा	169

परिशिष्ट

1. शब्दावली	179
2. परिभाषाएँ	194
3. आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली निर्माण के सिद्धांत	210
4. आयोग के प्रकाशनों की सूची	213

1 – मानव जाति की सांझी धरोहर : सागर

तम आसीत्तमसा मूल हमग्रेऽप्रकृेतं सलिलं सर्वमाइदम।
तुच्छचेनाभ्वपिहिंत यदासीत्त पसस्तन्महिना जायतैकम्।।

(ऋग्वेद, X, 129, 3)

(सृष्टि से पूर्व संपूर्ण विश्व मायावी अज्ञान (अंधकार) से ग्रस्त था। सब अव्यक्त थे और सर्वत्र एक ही प्रवाह (सागर) था। उस समय जो कुछ था वह चारों ओर से सत्-असत् तत्व से आच्छादित था। वही एक अविनाशी तत्व तपश्चर्या के प्रभाव से उत्पन्न हुआ)

प्राकृतिक रूप से मनुष्य थलचर है परंतु सागर के प्रति उसका आकर्षण उतना ही पुराना है जितना वह स्वयं। अपने विकास के आदिकाल से ही वह सागर की ओर इस प्रकार आकर्षित होता रहा है मानो वह ही उसका वास्तविक निवास हो। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार उसकी इस पुरातन, अदम्य इच्छा का कदाचित् मूल कारण है उसकी जीनों में 'अंकित सागर की स्मृति'। यह एक सुविदित और सर्वमान्य तथ्य है कि मनुष्य का विकास सागर में विचरण करने वाले जीवों से, उत्परिवर्तनों की एक अत्यंत लंबी शृंखला के बाद, हुआ था। सागर की स्मृति को अपने में संजोए रखने वाली जीन मनुष्य को उन्हीं जीवों से विरासत में मिली हैं। वास्तव में मनुष्य के वे 'दूरस्थ पूर्वज' उस समय तक सागर में ही जीवन-यापन करते रहे थे जब तक वे कशेरुकी जीवों में विकसित नहीं हो गए। कदाचित् इसीलिए मनुष्य की शिराओं में अब भी खारा पानी मौजूद है।

इसी संदर्भ में कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि एप से मनुष्य में विकसित होने के दौरान हमारे पूर्वज सागर के तटों पर रहने लगे थे। वहाँ उन्हें पर्याप्त मात्रा में, आसानी से, भोजन मिल जाता था। वे वहाँ अर्द्ध-उभयचरों की भांति जीवन-यापन करते थे। ऐसा हो सकता है कि सागर में तैरते समय अपने सिर को पानी से ऊपर रखने की उनकी मजबूरी से ही

बाद में सिर को ऊपर रखने का मनुष्य का गुण विकसित हुआ हो।

संपूर्ण पृथ्वी के 70.8 प्रतिशत भाग को (पृथ्वी के कुल क्षेत्रफल, 51 करोड़ वर्ग किमी. में से 36.1 करोड़ वर्ग किमी. को) घेरे हुए सागर ने पृथ्वी को एक 'जल द्वीप' का रूप दे दिया है। अंतरिक्ष से देखने पर महाद्वीप विशाल जलराशि से घिरे हुए टापू प्रतीत होते हैं। सागररूपी यह जलराशि मनुष्य के विकास काल से ही उसके जीवन को प्रत्यक्ष और परोक्ष, दोनों, रूपों से प्रभावित करती रही है। सागर उस मौसम का, जिससे हम जन्म से लेकर मृत्यु तक, कभी भी, कहीं भी, छुटकारा नहीं पा सकते, जन्मदाता और नियंत्रक है। पृथ्वी पर उपस्थित जल की कुल मात्रा का लगभग 97 प्रतिशत भाग अपने में संजोए वह पृथ्वी के पांच जीवों में से चार का स्थायी निवासस्थल है। पृथ्वी पर जितनी भी जैवविविधता उपस्थित है उसका 80 प्रतिशत सागर में ही पाया जाता है और अब भी सागर की गहराइयों में ऐसी जीव-प्रजातियाँ मौजूद हैं जिनके बारे में हमें बहुत कम ज्ञान है। इनमें वे प्रजातियाँ भी शामिल हैं जो सौर ऊर्जा और ऑक्सीजन के स्थान पर भूतापीय ऊर्जा और हाइड्रोजन सल्फाइड का उपयोग करती हैं।

आज संसार की कुल जनसंख्या का लगभग दो-तिहाई भाग सागर के तटों पर ही निवास करता है। संसार के 23 महानगरों (प्रत्येक की आबादी 25 लाख से अधिक) में से 16 सागर तटों पर ही स्थित हैं। पृथ्वी की जैव और निर्जीव संपदा का 90 प्रतिशत भाग तटों से कुछ सौ किलोमीटर के क्षेत्र में ही स्थित है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार लगभग 20 करोड़ व्यक्ति मछली आदि समुद्री जीव पकड़ने के व्यवसाय में लगे हुए हैं। इनकी जीविका का मुख्य स्रोत सागर ही है।

जहाँ तक पेट्रोलियम, गैस तथा अन्य महत्त्वपूर्ण खनिजों का प्रश्न है, सागर में इनके बहुत बड़े भंडार हैं। सागर में अब भी लगभग 40 अरब टन पेट्रोलियम और 23 अरब टन प्राकृतिक गैस के भंडार मौजूद हैं। सागर की तली पर विभिन्न क्षेत्रों में, इतनी मात्रा में बहुधात्विक पिंडिकाएँ पड़ी हुई हैं कि हम उनसे सदियों तक लोहे, तांबे, कोबाल्ट, निकल, मैंग्नीज़ आदि धातुओं

की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। यद्यपि सागर के पानी से अभी हम केवल साधारण नमक, ब्रोमीन, मैग्नीशियम, पोटैशियम-जैसी कुछ वस्तुएँ ही प्राप्त कर रहे हैं और उससे सोना प्राप्त करने के प्रयास असफल रहे हैं परंतु वह दिन दूर नहीं जब हम सागर के पानी से सोना ही नहीं, वरन् प्लेटिनम तथा अन्य बहुमूल्य धातुएँ भी प्राप्त करने लगेंगे।

सागर के विभिन्न जलस्तरों के तापांतर, उसकी लहरें, धाराएँ, ज्वार-भाटे आदि ऊर्जा के अनंत स्रोत सिद्ध हो सकते हैं।

पिछले कुछ दशकों से जिस तेजी से हम अपनी आबादी बढ़ा रहे हैं और थल के स्रोतों का अंधाधुंध दोहन कर रहे हैं उससे सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह दिन दूर नहीं है जब पृथ्वी के मात्र 29.2 प्रतिशत भाग को घेरे थल हमारी पेय जल, खाद्य, आवास, कच्चे माल, ऊर्जा आदि की, निरंतर तेजी से बढ़ती हुई, माँगों की पूर्ति नहीं कर पाएगा। उस समय इन माँगों की पूर्ति के लिए सागर ही एकमात्र विकल्प होगा। हमारी आने वाली पीढियों को सागर की शरण में ही जाना होगा। इस प्रकार सागर हमारे पास, हमारी आने वाली पीढ़ियों की, धरोहर है। वह संपूर्ण मानव जाति की 'सांझी धरोहर' है।

परंतु जाने-अनजाने हम इस अमूल्य धरोहर को नष्ट करते जा रहे हैं। हम इसमें घरेलू कचरा, अन-उपचारित सीवेज, कारखानों से निकलने वाले विषैले पदार्थ, पीड़कनाशी, कीटनाशी, पेट्रोलियम और रेडियोधर्मी पदार्थ आदि डालकर उसके पानी को विषैला बना रहे हैं और उसके जीवों को नष्ट कर रहे हैं। अपने इन कुकृत्यों से हम अनजाने ही समुद्री जीव-जंतुओं की समूची प्रजातियों को ही समाप्त कर रहे हैं। हम सागर को 'मृत' बना रहे हैं।

इस कुचेष्ठा को रोकने के लिए तथा मानव जाति की धरोहर को आने वाली पीढ़ियों को शुद्ध, निर्मल और स्वस्थ रूप में सौंपने के उद्देश्य से ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1998 को 'अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष' (इंटरनेशनल ईयर ऑफ दि ओशंस) के रूप में आयोजित किया था। इस घोषणा को विश्व के अधिकांश देशों ने माना और तदानुसार कार्य किए। इस 'वर्ष' के आयोजन में भारत ने भी सक्रिय योग दिया था (अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष का अधिक विवरण

'आधुनिक भारत में सागरविज्ञान' अध्याय में पढ़िए)।

भारत और हिंद महासागर

जहाँ तक हमारे देश का प्रश्न है उसके लिए उसके निकट के सागर— अरब सागर और बंगाल की खाड़ी (जो हिंद महासागर के ही अंग हैं) — सदा से ही महत्त्वपूर्ण रहे हैं और समय के साथ-साथ, उनका महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। हमारे देश की आबादी का भी लगभग एक चौथाई भाग पश्चिमी और पूर्वी तटीय क्षेत्रों में ही रहता है क्योंकि वहाँ लोगों को अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हमारे देश का तट लगभग 6,100 किमी. लंबा है और यदि उसमें अंडमान-निकोबार द्वीप समूह और लक्ष्यद्वीप समूह के तटों के विस्तार भी शामिल कर लिए जाएँ तब वह 7516.6 किमी. हो जाता है। तृतीय संयुक्त राष्ट्र सागर विधि सम्मेलन (थर्ड यूनाइटेड नेशन्स कांफ्रेंस ऑन दि लॉ ऑफ दि सी — अनक्लॉस III 1973-82) ने हर देश के लिए उसका अनन्य आर्थिक क्षेत्र (एक्सक्लूसिव इकोनोमिक ज़ोन) निर्धारित कर दिया है। यह क्षेत्र तट के हर बिंदु से 200 नॉटिकल मील (1 नॉटिकल मील = 1.852 किमी.) तक फैले सागर तक होता है। इस प्रकार भारत के अनन्य आर्थिक क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग 20.2 लाख वर्ग किमी. है जो संपूर्ण देश के क्षेत्रफल का लगभग 60 प्रतिशत है। यह समुद्री क्षेत्र, जिसमें भारत के तट के महाद्वीपीय शेल्फ (क्षेत्रफल लगभग 2,60,000 वर्ग किमी.) का बड़ा भाग भी शामिल है, उसके निकट के सागरों का सबसे उपजाऊ क्षेत्र है। इसी क्षेत्र से हम मछलियों, चिंगटों, झींगों आदि का अधिकांश भाग प्राप्त कर रहे हैं। इसी क्षेत्र में बॉम्बे हाई, बेसीन तथा अन्य पेट्रोलियम क्षेत्र स्थित हैं जिनसे हम देश के कुल तेल उत्पादन का अधिकांश भाग प्राप्त कर रहे हैं।

अब हम अपने अनन्य आर्थिक क्षेत्र का बेहतर उपयोग कर सकते हैं और इसके लिए हमें कानूनी अधिकार प्राप्त हैं। अपने अनन्य आर्थिक क्षेत्र से अधिक मछलियाँ पकड़ सकते हैं, अपने उद्योगों के लिए अधिक मात्रा में खनिज आदि प्राप्त कर सकते हैं और ऊर्जा का उत्पादन कर सकते हैं।

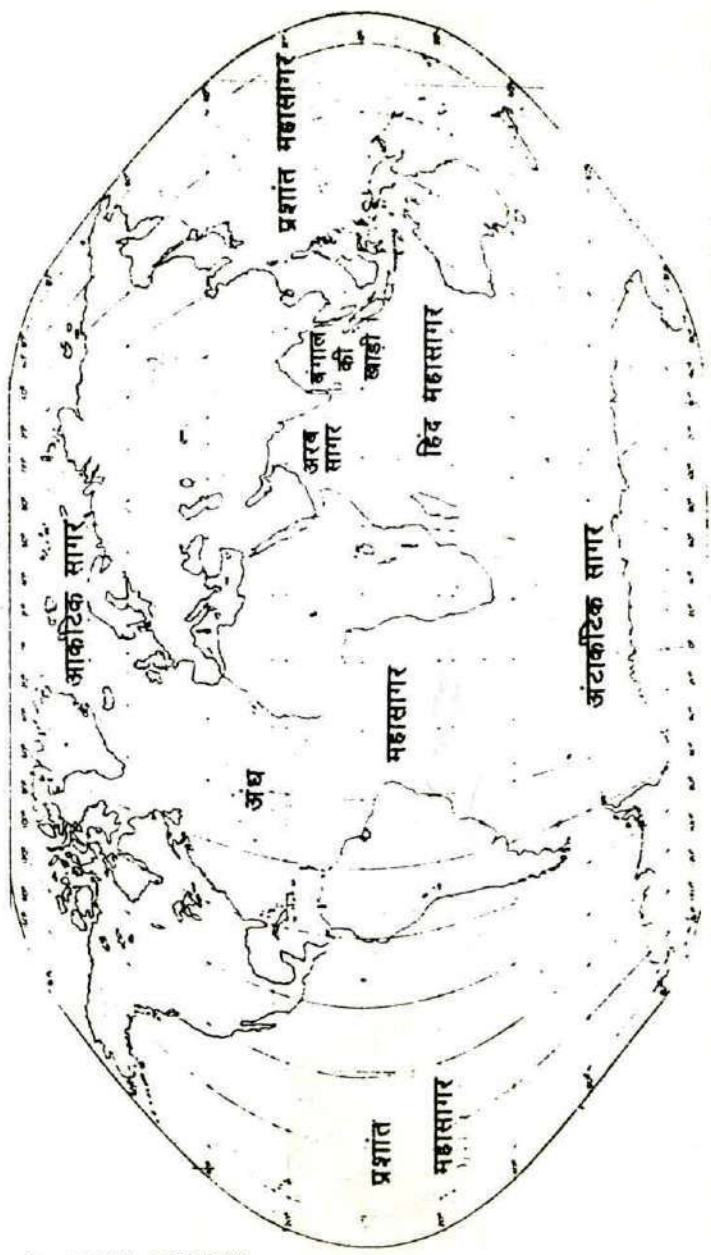

पृथ्वी पर एक ही जल राशि फैली हुई है। उसे "विश्वसागर" कह सकते हैं। भूगोलवेत्ताओं और नाविकों ने उसे अपनी सुविधानुसार, महासागरों और सागरों में बांट लिया है और उनको अलग-अलग नाम दे दिए हैं।

2—414 M/o HRD/2003

हिंद महासागर हमारे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से ही नहीं, वरन् देश की रक्षा की दृष्टि से भी अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। उस पर हमारी निर्भरता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वह भारत के लिए 'भविष्य की आशा' बनता जा रहा है।

यद्यपि हिंद महासागर हम भारतवासियों की अनेक ज्वलंत समस्याओं का हल प्रदान कर सकता है, पर विडंबना यह है कि हमें उसके बारे में बहुत कम ज्ञान है। इसलिए अपनी समस्याओं के हल ढूँढ़ने से पहले हमें यह जानना होगा कि हिंद महासागर कैसे बना, उसका विस्तार कितना है, उसकी भौतिक संरचना कैसी है, उसमें कितना जल भरा हुआ है, मानसून उत्पन्न करने की उसकी क्रियाविधि क्या है, उसमें किस-किस प्रकार के जीव निवास करते हैं, तथा उसमें कितने और कौन-कौन से खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं। हमें यह भी मालूम करना होगा कि उसमें किस प्रकार लहरें उठती हैं, कैसे ज्वार-भाटा आते हैं और उसके विभिन्न जलस्तरों में कितना तापांतर रहता है जिससे हम उससे ऊर्जा (बिजली) प्राप्त कर सकें। साथ ही हमें उन कार्यों पर रोक लगानी पड़ेगी जो इस स्वच्छ सागर को गंदा और प्रदूषित करते आ रहे हैं।

विश्वसागर का एक अंश

हिंद महासागर विश्वसागर का ही एक अंश है। इसलिए हिंद महासागर के बारे में चर्चा करने से पहले स्वयं सागर के बारे में संक्षिप्त चर्चा करना श्रेयस्कर होगा।

वास्तव में पृथ्वी पर ही एक जलराशि, निर्विघ्न रूप से, फैली हुई है जिसे हम 'विश्वसागर' कह सकते हैं। इसमें लगभग 137 करोड़ घन किमी. पानी भरा हुआ है। यह पानी की कितनी बड़ी मात्रा है इसका अनुमान लगाने के लिए हमें एक कल्पना करनी होगी। यदि किसी वजह से संपूर्ण पृथ्वी एकदम सपाट हो जाए, उस पर न तो पर्वत रहें और न ही गड्ढ़े व खाईयाँ, तब सागर में भरा पानी पूरी पृथ्वी पर तो फैल ही जाएगा उसकी पूरी सतह पर उसकी ऊँचाई 3,798 मीटर हो जाएगी। भूगोलवेत्ताओं और नाविकों ने इसे अपनी सुविधानुसार विभिन्न, छोटे-बड़े, भागों में बाँट कर उनका नामकरण कर लिया

है। विश्वसागर के बड़े भागों को 'महासागर' और छोटे भागों को 'सागर' कहा जाता है। महासागर पाँच हैं — प्रशांत (पैसिफिक), अंध (अटलांटिक), हिंद (इंडियन), आर्कटिक और अंटार्कटिक। कुछ भूगोलवेत्ता आर्कटिक और अंटार्कटिक को महासागर मानते ही नहीं। वे आर्कटिक को प्रशांत और अंध महासागरों का विस्तार और अंटार्कटिक को तीनों महासागरों का विस्तार मानते हैं।

यद्यपि भूगोलवेत्ताओं और नाविकों ने महासागरों और सागरों की सीमाएँ निर्धारित कर ली हैं पर महासागरों की सीमाओं के बारे में, अनेक बार उनमें मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ निकटवर्ती सागरों को एक महासागर में शामिल करते हैं और कुछ दूसरे में।

महासागरों में सबसे बड़ा है प्रशांत महासागर। वह पूरी पृथ्वी के लगभग एक-तिहाई भाग में फैला हुआ है। यदि केवल महासागरों और सागरों के विस्तार पर ही विचार करें तब आधे क्षेत्र में प्रशांत महासागर फैला हुआ है और आधे में अन्य सब। निकटवर्ती सागरों सहित उसका क्षेत्रफल 17,96,79,000 वर्ग किमी. है। अंध महासागर का विस्तार प्रशांत महासागर से कम पर हिंद महासागर से अधिक है — विश्व सागर का लगभग एक-चौथाई यानि 10,64,63,000 वर्ग किमी.। निश्चय ही हिंद महासागर सबसे छोटा महासागर है जो पूरी पृथ्वी के केवल 15 प्रतिशत भाग और विश्व सागर के केवल 20 प्रतिशत भाग को घेरे हुए है। इसका क्षेत्रफल 7,59,40,000 वर्ग किमी. है।

हिंद महासागर सबसे छोटा महासागर है तथा आज भी सबसे अधिक 'अज्ञात' महासागर है। हिंद महासागर के बारे में बीसवीं सदी के मध्य तक, किसी सुनिश्चित योजना के अंतर्गत गहन अध्ययन नहीं किए गए थे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, कदाचित् सामरिक दृष्टि से इस महासागर का महत्त्व एकाएक बढ़ जाने के फलस्वरूप, इसकी भौतिक संरचना, पानी, जीव-जंतु, खनिज संपदा आदि के बारे में गहन अध्ययन आरंभ किए गए और 1960 के दशक में अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान आयोजित किया गया

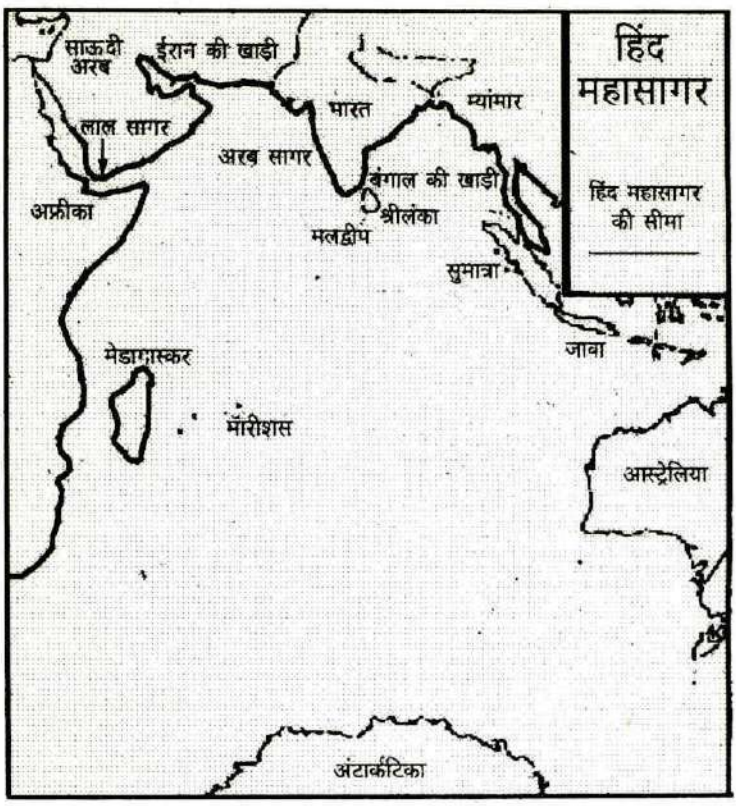

हिंद महासागर : उसको घेरे हुए देश और महाद्वीप

(अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के बारे में विस्तार से 'आधुनिक भारत में सागरविज्ञान' अध्याय में पढ़िए)।

आमतौर से सागरवैज्ञानिक उस जलराशि को हिंद महासागर मानते हैं, जो एशिया के दक्षिण में, सुदूर अंटार्कटिका तक, 20° से लेकर 147° पूर्व देशांतरों के बीच स्थित है। ये देशांतर इसे क्रमशः अंध महासागर और प्रशांत महासागर से अलग करते हैं। हिंद महासागर के उत्तर में ईरान, पाकिस्तान, भारत और म्यांमार (बर्मा) स्थित हैं : पश्चिम में अरब प्रायःद्वीप और अफ्रीका, और पूर्व में मलेशिया, इंडोनेशिया तथा आस्ट्रेलिया हैं। हिंद महासागर के तट

पर, कुल मिलाकर 19 देश स्थित हैं, जिनका क्षेत्रफल लगभग 96,00,000 वर्ग किमी. है और आबादी 122 करोड़। इस प्रकार इसके तट पर संसार की 22.5 प्रतिशत आबादी रहती है। इस महासागर की दक्षिणी सीमा बनाता है अंटार्कटिक महाद्वीप।

हिंद महासागर का सर्वाधिक विस्तार पूर्व-पश्चिम दिशा में, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के दक्षिणी भागों के बीच, है। उस क्षेत्र में इसका विस्तार 9,500 किमी. है। उत्तर की ओर यह संकरा होता चला जाता है। भारत तथा श्रीलंका इसे दो शाखाओं, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी, में विभाजित कर देते हैं। अरब सागर से जुड़े दो अन्य सागर हैं — लाल सागर और ईरान की खाड़ी।

इस प्रकार यदि अरफुरा सागर को हिंद महासागर का भाग नहीं माना जाता तब हिंद महासागर का क्षेत्रफल 7,49,17,000 वर्ग किमी. और औसत गहराई 3,897 मीटर है। अगर अरफुरा सागर को इस महासागर का भाग मान लिया जाता है तब हिंद महासागर का क्षेत्रफल 7,59,40,000 वर्ग किमी. निकलता है।

इसका अधिकतम गहरा स्थल है जावा खड्ड जिसकी गहराई 7,437 मीटर है।

हिंद महासागर में निम्नलिखित सागरों और खाड़ियों को शामिल किया जाता है : लाल सागर, अदन की खाड़ी, ईरान की खाड़ी, ओमन की खाड़ी, अरब सागर, लक्षद्वीप सागर, बंगाल की खाड़ी, अंडमान सागर, मलक्का का मुहाना, सिंगापुर मुहाना, मोंज़ाबिक चैनल और ग्रेट ऑस्ट्रेलियन बाइट।

इन सागरों में से अरब सागर और बंगाल की खाड़ी भारत की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, यद्यपि अंडमान और लक्षद्वीप सागर भी हमारे देश के कुछ भागों को घेरे हुए हैं। इसलिए इन सागरों की भौतिक संरचना आदि के वर्णन कुछ विस्तार से करना श्रेयस्कर होगा।

अगले अध्याय में पढ़िए हिंद महासागर कैसे बना?

---

2 – हिंद महासागर कैसे बना?

जब पृथ्वी का जन्म हुआ तब उस पर सागर नहीं थे। उनका निर्माण बाद में हुआ। इनके निर्माण के बारे में भूवैज्ञानिकों के मत भिन्न-भिन्न हैं। ये मत हिंद महासागर के निर्माण पर भी पूरी तरह लागू होते हैं। इनमें से जो मत अधिकांश भूवैज्ञानिकों की दृष्टि में मान्य और तर्कसंगत है, उसके अनुसार सागरों में, धीरे-धीरे, करोड़ों वर्षों के दौरान भरने वाला पानी सभी प्रकार के स्रोतों — ज्वालामुखी क्रियाओं, गर्म झरनों, आग्नेय चट्टानों आदि — से प्राप्त हुआ था। इस पानी में ऋणायनों (ऋण आवेश से युक्त परमाणु या अणु) — यथा, क्लोराइड, सल्फाइड, कार्बोनेट आदि के साथ ज्वालामुखी चट्टानों के विघटन से प्राप्त सोडियम, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम — जैसे धनायन (धन आवेशित अणु या परमाणु) भी शामिल थे।

उस समय भी, करोड़ों वर्ष पहले भी, मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला में, आज की ही भांति, ज्वालामुखी क्रियाएँ होती रहती थीं।

सागर निर्माण के विभिन्न मतों के बारे में एक बात पूरा बल देकर कही जा सकती है कि ये सब वास्तविक घटनाओं/तथ्यों की अत्यधिक सरल व्याख्याएँ मात्र हैं। वास्तविक क्रियाएँ इनसे कहीं अधिक जटिल तरीकों से घटी होंगी। वे काफी लंबे समय तक, लाखों-करोड़ों वर्षों तक, लगातार होती रही होंगी और मुख्य क्रियाओं के साथ अनेक गौण क्रियाएँ भी, जिन्होंने संचित रूप से मुख्य क्रियाओं को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया था, होती रही होंगी।

सागरों में पानी चाहे किसी भी तरीके से भरा हो, यह निश्चित है कि उस समय विश्वसागर का आकार और आकृति वर्तमान से कहीं भिन्न थी तथा उसमें लवणों की मात्रा बहुत कम थी। उस समय पृथ्वी पर एक ही थल-खंड था और उसे घेरे हुए एक ही जलराशि।

सागरों में जल भरने मात्र से उन्होंने वर्तमान आकार ग्रहण नहीं कर लिए थे। इसके बाद अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं थीं जिनके परिणामस्वरूप सागरों को वर्तमान आकार मिले। ये घटनाएँ हिंद महासागर के निर्माण की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण थीं।

भूखंड सरके : महासागर बने

सागरों के निर्माण की घटनाओं को समझाने के लिए भूवैज्ञानिक तीन परिकल्पनाओं की मदद लेते हैं। ये परिकल्पनाएँ हैं – महाद्वीपीय विस्थापन, सागर की तली का प्रसार और प्लेट विवर्तनिकी। तीनों परिकल्पनाएँ एक-दूसरे में निहित हैं और एक-दूसरे का समर्थन करती हैं।

इन परिकल्पनाओं के आधार पर हिंद महासागर की निर्माण-प्रक्रिया को आसानी से समझाया जा सकता है। इसलिए इनकी चर्चा कुछ विस्तार से कर लें।

महाद्वीपीय विस्थापन – यद्यपि महाद्वीपीय विस्थापन परिकल्पना की खोज का श्रेय आमतौर से जर्मन मौसमवैज्ञानिक अल्फ्रेड एल. वेगेनर को दिया जाता है परंतु उसे 1885 में ही, ऑस्ट्रिया के भूवैज्ञानिक, एडवर्ड सुएस, ने प्रस्तुत कर दिया था।

जर्मन मौसमवैज्ञानिक अल्फ्रेड एल. वेगेनर ने 1912 में इस परिकल्पना की सबसे जोरदार सिफारिश की थी। उनका सैद्धांतिक प्रतिपादन इतना जोरदार था कि आज भी अधिकांश लोग वेगेनर को ही महाद्वीपीय विस्थापन परिकल्पना का प्रतिपादक मानते हैं।

आरंभ में महाद्वीपीय विस्थापन परिकल्पना की छीछालेदर मुख्य रूप से दो कारणों से हुई। प्रथम : वेगेनर शायद अपने समय से 50 वर्ष पूर्व पैदा हो गए थे। द्वितीय : मूलतः जर्मन होने के नाते वे इस परिकल्पना के साक्ष्य पश्चिमी यूरोप में ढूँढ़ते रहे जो वहाँ मौजूद थे ही नहीं। इस बारे में यह भी अनुमान लगाया गया है कि यदि वेगेनर को कंप्यूटर की सुविधाएँ उपलब्ध होतीं तब वे विभिन्न महाद्वीपों के मॉडलों को बेहतर तरीके से आपस में फिट करके दिखा सकते थे।

अंत में महाद्वीपीय विस्थापन के साक्ष्य दक्षिण अफ्रीका के भूवैज्ञानिक, एलेक्स एल. दु तोइत, ने अपने देश में ढूँढे जहाँ वे प्रचुर मात्रा में मौजूद थे।

महाद्वीपीय विस्थापन के बारे में यह परिकल्पना की गई कि पृथ्वी के गर्भ में, भूपर्पटी के एकदम नीचे, स्थित मैंटल गाढ़े, भारी, तरल पदार्थ से बना हुआ है। इस पर थल खंड और महासागर उसी प्रकार तिर रहे हैं जैसे पानी के ऊपर बर्फ तिरती है। बाद में, अध्ययनों में पाया गया कि मैंटल के पदार्थ का घनत्व लगभग 4.5 ग्राम प्रति घन सेमी. है जबकि महासागरों की तली की चट्टानों का घनत्व 3.0 ग्राम प्रति घन सेमी. और महाद्वीपों की तली की चट्टानों का 2.8 ग्राम प्रति घन सेमी.। महासागरों और महाद्वीपों की तली की चट्टानों के घनत्वों में अंतर के कारण ही आमतौर से महासागरों का धरातल महीद्वीपों से नीचा होता है।

सागर तली का प्रसार – यद्यपि महाद्वीपीय विस्थापन परिकल्पना ने महासागरों की निर्माण-विधि को कुछ हद तक समझाने का प्रयत्न किया फिर भी उसमें कुछ खामियाँ थीं। इस सिद्धांत के विरोधियों का यह तर्क काफी जोरदार था कि पृथ्वी के हर क्षेत्र में विशाल भूखंडों को गति प्रदान करने वाले बल समुचित रूप से प्रबल नहीं हैं। उनका यह भी कहना था यदि महाद्वीप एक-दूसरे के संदर्भ में सरकते हैं तब उनके बीच के सागर की तली ऐसी होनी चाहिए जिस पर कोई भी जमावट न हो। साथ ही महाद्वीपों के हजारों किलोमीटर के स्थानांतरण के प्रमाण महाद्वीपों पर भी मौजूद होने चाहिए। पर वे वहाँ नहीं पाए गए हैं। उनका यह एतराज बाद में, केलीफोर्निया तट पर सैन एंड्रीआज़ भ्रंश के साथ हुए विस्थापन के अध्ययनों के परिणामस्वरूप निर्मूल सिद्ध हो गया।

महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत के समर्थकों के समक्ष एक और कठिनाई थी। वह थी यह समझाना कि भूवैज्ञानिक कल्पों के दौरान अनेक महाद्वीपीय क्षेत्र (जो महासागरों की तुलना में हल्के होते हैं), किस प्रकार सागरीय क्षेत्रों में परिवर्तित हो गए।

अंत में 1960 के दशक के आरंभिक वर्षों में आर.एस. डिट्ज और एच. एच. हेस ने एक नई परिकल्पना प्रस्तुत की जिसमें पिछली परिकल्पनाओं के

प्रमुख अंशों को आत्मसात कर लिया। साथ ही कुछ ऐसे अकाट्य तर्क भी पेश किए जिनसे विरोधियों की सब शंकाएँ शांत हो गईं। यह परिकल्पना थी सागर की तली के प्रसार की। उसकी प्रसार की दर 1 से 5 सेमी. प्रति वर्ष है।

इसके अनुसार सागर की तली स्वयं ही गति करती है और उसको गतिशील कराने वाले कारक हैं — संवहन धाराएँ।

सागर की तली के प्रसार की क्रिया का आरंभ होता है मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला से तथा प्रसारित होने वाली तली धीरे-धीरे पर्वत शृंखला से दूर होती जाती है। इस प्रकार मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला और तली के बीच जो अंतर उत्पन्न होता है उसका भराव पर्वत के नीचे, मैंटल से भूपर्पटी पर निकलने वाले, बेसाल्टी पदार्थ से होता है। अंततः यह पदार्थ महाद्वीपों के नीचे चला जाता है।

इसके विपरीत भूपर्पटी का 'पुराना' पदार्थ सागर की खाइयों में से होता हुआ मैंटल में समाता रहता है। 'नए' पदार्थ के भूपर्पटी पर निकलने और 'पुराने' पदार्थ के मैंटल में समा जाने का प्रक्रम कन्वेयर बेल्ट की भांति कार्य करता है। यह प्रक्रम पिछले अरबों वर्षों से निरंतर चल रहा है और शायद पृथ्वी का जीवन समाप्त होने तक चलता रहेगा।

उक्त परिकल्पना की पुष्टि सागर की तली की चट्टानों के चुंबकत्व के अध्ययन से हुई है। आज हमारे पास इस बात के प्रबल प्रमाण हैं कि अतीत में पृथ्वी के चुंबकीय ध्रुव अनेक बार आपस में बदल चुके हैं।

प्लेट विवर्तनिकी — प्लेट विवर्तनिकी की परिकल्पना भूकंपों और ज्वालामुखियों के अध्ययनों पर आधारित है। 1950 के दशक में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सर एडवर्ड बुलार्ड तथा अन्य लोगों ने यह सुझाया कि भूखंड और सागर एकदम 'जड़' टुकड़े नहीं हैं।

ये टुकड़े मैंटल के गाढ़े तरल पर तिर रहे हैं। वैज्ञानिक इन टुकड़ों को 'प्लेट' कहते हैं। पूरी पृथ्वी पर 6 बड़ी और अनेक छोटी प्लेटें हैं। इनकी मोटाई 150 किमी. तक है।

समझा जाता है कि पृथ्वी के निर्माण काल से ही ये प्लेटें एक-दूसरे

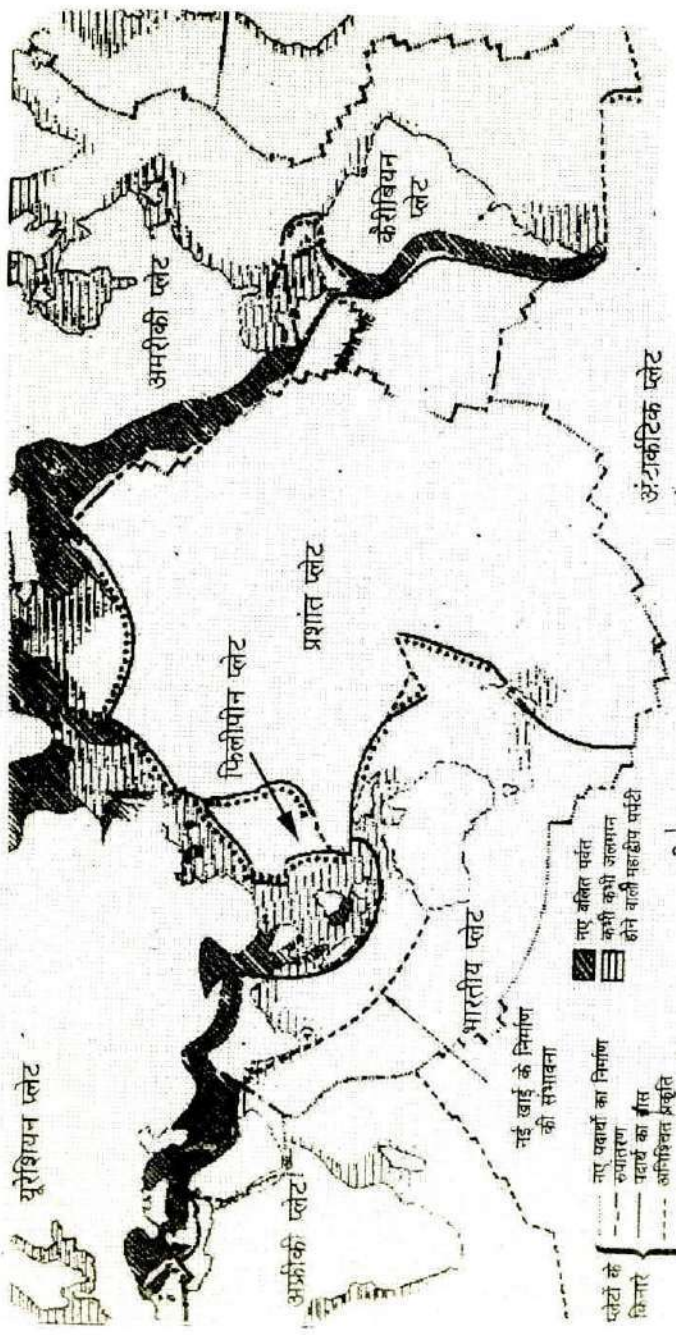

पृथ्वी पर सागर और थल विभिन्न प्लेटों पर स्थित हैं। कुछ प्लेटों पर केवल सागर है, कुछ पर केवल थल और कुछ पर सागर और थल, दोनों, स्थित हैं

के संदर्भ में गति कर रही हैं। वे आपस में टकराती हैं, एक-दूसरे के नीचे चली जाती हैं; ऊपर चढ़ जाती हैं और घर्षण करती रहती हैं। साथ ही ये टूटती रहती हैं और दूसरी प्लेटों के नीचे घुसकर उस समय तक भूगर्भ में घुसती रहती हैं जब तक मैंटल में नहीं पहुँच जातीं। वहाँ पहुंचने पर उनका पदार्थ मैंटल में समा जाता है और उसी से बनती हैं नई प्लेटें।

महाद्वीपीय विस्थापन और प्लेट विवर्तनिकी की परिकल्पनाओं के आधार पर वैज्ञानिकों ने यह गणना की है कि महाद्वीप एक-दूसरे से, लगभग 10 सेमी. प्रति वर्ष की दर से दूर सरक रहे हैं। आम आदमी की दृष्टि में यह दर बहुत धीमी है, परंतु करोड़ों वर्षों तक ऐसा होते रहने से महाद्वीप एक-दूसरे से हजारों किलोमीटर दूर सरक गए हैं। इसके आधार पर ही भूवैज्ञानिकों ने लॉरेशिया के टूटने के काल से लेकर अब तक उत्तर अमेरिका के यूरोप से निरंतर दूर सरकते जाने से उनके बीच में उत्पन्न दूरी का जो अनुमान लगाया था, वह सही पाया गया है।

उन इलाकों का, जहाँ प्लेटें आपस में टकराती हैं अथवा एक-दूसरे से दूर जाती हैं, एक और उल्लेखनीय अभिलक्षण है – ज्वालामुखी। ऐसे इलाकों में सक्रिय, सुप्त अथवा निष्क्रिय ज्वालामुखी पाए जाते हैं।

सागर तली के प्रसार और प्लेट विवर्तनिकी की परिकल्पनाओं ने भूवैज्ञानिकों की परोक्ष रूप से भी बहुत मदद की है। इनकी मदद से वे उन क्षेत्रों का पता अधिक आसानी से लगा सकते हैं जहाँ खनिज मिलने की संभावना अधिक होती है।

महाद्वीपीय विस्थापन, सागर की तली के प्रसार और प्लेट विवर्तनिकी आदि के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले गए हैं उनके अनुसार हिंद महासागर के निर्माण और उसके वर्तमान आकार ग्रहण करने की प्रक्रियाएँ निम्न प्रकार से हुई अनुमानी गईं हैं :

हिंद महासागर : निर्माण प्रक्रिया

मध्यजीवी महाकल्प (मेसोजोइक ईरा) के आरंभ तक – अब से लगभग 22.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक – पृथ्वी पर केवल एक ही थलखंड था और एक

ही सागर। उस एकमात्र थल खंड को वैज्ञानिकों ने 'पेंजिया' (पेंजिया शब्द ग्रीक भाषा के 'पेन' यानि 'सब' और 'जी' यानि पृथ्वी से बना है), नाम दिया और उसको घेरने वाले सागर को 'पेंथलसा'। यह आदि-थलखंड मुख्य रूप से दक्षिणी गोलार्ध में स्थित था।

बाद में, अब से लगभग 15 करोड़ वर्ष पूर्व, किसी कारणवश, कदाचित् सागर की तली के प्रसार के कारण, पेंजिया दो थलखंडों में विभक्त हो गया। इन खंडों के बीच में जो खाई बनी वह काफी लंबी थी और उसमें पानी भरने से बना टेथिस सागर।

इनमें से उत्तरी भूखंड को, जिसमें उत्तर अमेरिका, यूरोप और एशिया महाद्वीप शामिल थे, वैज्ञानिक 'लॉरेशिया' मानते हैं और दक्षिणी भूखंड को 'गौंडवानालैंड'। गौंडवानालैंड वर्तमान अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अंटार्कटिक, भारतीय प्रायःद्वीप तथा मालागासी शामिल थे। फिर कुछ कारणोंवश लॉरेशिया उत्तर की ओर सरकने लगा और गौंडवानालैंड दक्षिण की ओर। साथ ही दोनों टूटने भी लगे। लॉरेशिया के टूटने से बने उत्तर अमेरिका और यूरेशिया तथा उनके बीच की खाई से बना अंध महासागर का उत्तरी भाग।

गौंडवानालैंड के टूटकर बिखरने से बने अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अंटार्कटिक महाद्वीप और भारतीय प्रायःद्वीप तथा हिंद महासागर और अंध महासागर का दक्षिणी भाग।

पुराचुंबकीय अध्ययनों की मदद से भूवैज्ञानिकों ने गौंडवानालैंड के टूट कर बिखरने के बारे में जो परिकल्पना की है, वह मोटे तौर से इस प्रकार है :

गौंडवानालैंड मध्यजीवी महाकल्प के आरंभ तक एक ही भूखंड बना रहा। फिर ट्राइऐसिक कल्प के दौरान उसने टूटना आरंभ किया। सबसे पहले दक्षिण अमेरिका टूटकर अलग हुआ। वह उत्तर-पश्चिम की ओर सरकने लगा। उसके गौंडवानालैंड के शेष थलखंडों से दूर सरकने के फलस्वरूप निर्माण हुआ अंध महासागर के दक्षिणी भाग का।

उसके बाद ट्राइऐसिक कल्प में ही आस्ट्रेलिया भी गौंडवानालैंड से टूटकर दूर जाने लगा। परंतु इस बारे में भूवैज्ञानिक एकमत नहीं हैं।

आस्ट्रेलिया और अंटार्कटिक के बीच स्थित हिंद महासागर के दक्षिण-पूर्वी भाग की तली के अध्ययनों से यह शंका उत्पन्न होती है कि वे एक-दूसरे से केवल 4.3 करोड़ वर्ष पूर्व ही अलग हुए थे। क्रिटेशियस कल्प के पुराचुंबकीय आँकड़े आस्ट्रेलिया-अंटार्कटिक के गठबंधन की पुष्टि करते हैं परंतु जुरासिक कल्प के आँकड़े नहीं।

भारतीय प्रायःद्वीप-मालागासी-अंटार्कटिक ब्लॉक अफ्रीका से मध्य जुरासिक कल्प तक जुड़ा रहा। वह ब्लॉक मध्य जुरासिक और मध्य क्रिटेशियस कल्पों के बीच, किसी समय, अफ्रीका से अलग हुआ। इस घटना से ही हिंद महासागर का निर्माण आरंभ हुआ। बाद में भारतीय प्रायःद्वीप और मालागासी भी अंटार्कटिक से अलग हुए पर वे क्रिटेशियस कल्प तक भी सेशल्स से जुड़े रहे।

उस समय भारतीय प्रायःद्वीप-मालागासी ब्लॉक तथा अंटार्कटिक अफ्रीका के दक्षिण में स्थित थे, पर कालांतर में भारतीय प्रायःद्वीप-मालागासी ब्लॉक ने उत्तर की ओर सरकना आरंभ किया। इस गतिविधि के प्रमाण हिंद महासागर के उस क्षेत्र की तली के प्रसार के रूप में आज भी स्पष्ट रूप से मौजूद हैं।

मध्यजीवी महाकल्प के अंत में अफ्रीका और अंटार्कटिक का विस्थापन लगभग पूरा हो चुका था। दूसरे शब्दों में उस समय तक, अब से लगभग 7 करोड़ वर्ष पूर्व तक, हिंद महासागर का दक्षिण-पश्चिमी हिस्सा भी बन चुका था। इस प्रकार उस समय तक लगभग संपूर्ण हिंद महासागर का निर्माण हो चुका था। इस क्रिया के प्रमाण हिंद महासागर में स्थित मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला के दक्षिणी भाग की तली में भी मिलते हैं। उस तली के अध्ययनों में यह पाया गया कि मध्यजीवी महाकल्प के बाद उसका कोई उल्लेखनीय प्रसार नहीं हुआ है।

क्रिटेशियस कल्प के दौरान भी भारतीय प्रायःद्वीप-मालागासी ब्लॉक की, उत्तर की ओर गति जारी रही। अंत में वह मध्यजीवी और नूतनजीवी महाकल्पों के संधिकाल में रुकी। उस समय, (लगभग 6.5 करोड़ वर्ष पूर्व)

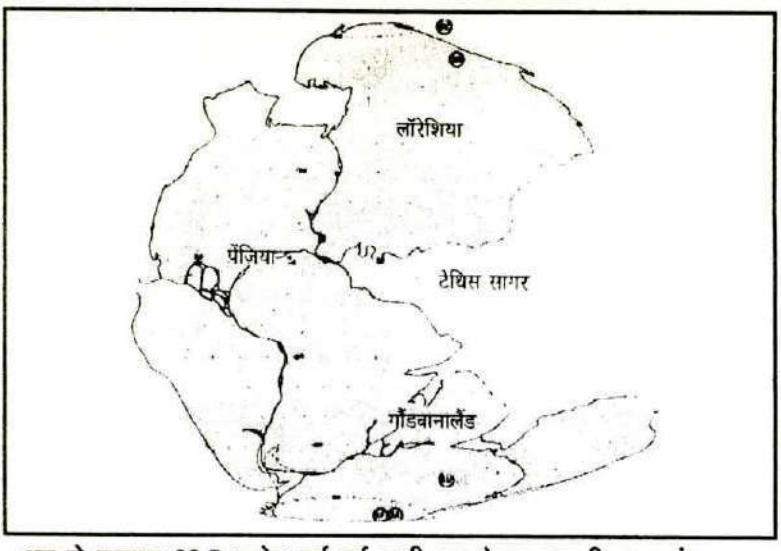

अब से लगभग 22.5 करोड वर्ष पूर्व पृथ्वी पर केवल एक ही थल खंड था : पेंजिया और एक ही सागर था : पैंथलसा

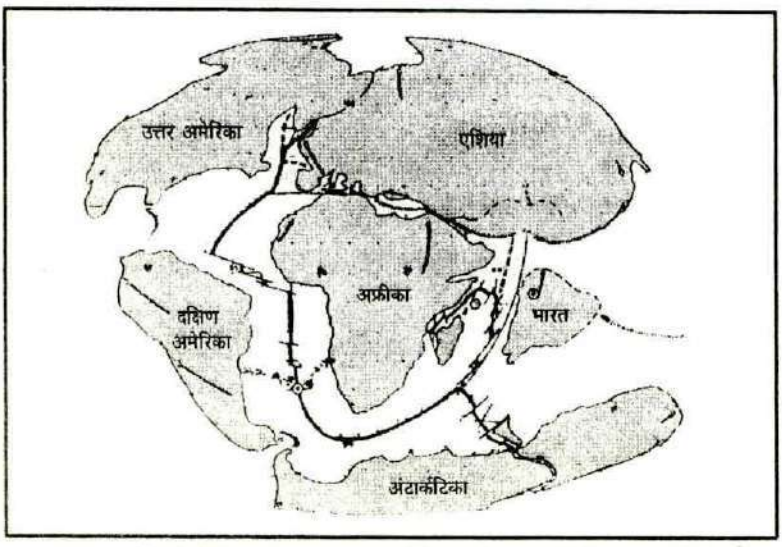

कुछ कारणों से पेंजिया ने टूटना शुरु किया और वह विभिन्न महाद्वीपों में विभक्त होने लगा

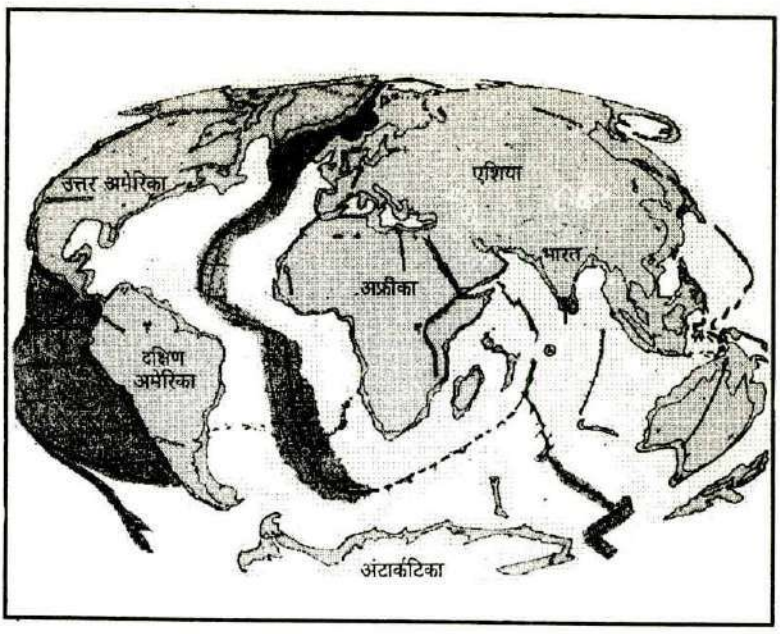

अंत में महाद्वीपों और महासागरों ने अपनी वर्तमान आकृतियां और स्थान प्राप्त कर लिए

भारतीय प्रायःद्वीप में डकन ट्रैप चट्टानों का निर्माण हो रहा था।

एक समय ऐसा भी आ गया जब भारतीय प्रायःद्वीप मालागासी – सेशल्स ब्लॉक से भी टूटकर बिखरने लगा। समझा जाता है कि मालागासी और सेशल्स लगभग एक-साथ ही भारतीय प्रायःद्वीप से अलग हुए थे। भूवैज्ञानिकों के अनुसार यह घटना लगभग 30° दक्षिण अक्षांश के निकट जहाँ वर्तमान कार्ल्सब्रिज पहाड़ी स्थित है, पेलिओसीन युग में घटी थी।

इसके बाद भारतीय प्रायःद्वीप तेजी से उत्तर की ओर सरकने लगा। मध्यनूतन युग आते-न-आते उसने भूमध्यरेखा पार कर ली थी और वह यूरेशिया प्लेट से जा टकराया था। इस घटना के फलस्वरूप हिमालय पर्वत शृंखला का निर्माण आरंभ हुआ। यह पर्वत शृंखला ऊपर उठने लगी और अब भी, थल की सर्वोच्च पर्वत शृंखला का स्थान ले लेने के बाद भी, ऊपर उठ रही है।

---

3 – इतिहास के आइने में हिंद महासागर

प्राचीन काल से ही हिंद महासागर नौ-चालन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। उसमें प्रतिवर्ष आने वाले अत्यंत विनाशकारी चक्रवातों और तूफ़ानों के बावजूद भी नाविकों की दृष्टि में वह, अन्य महासागरों की तुलना में, 'दयालु' सागर है। ये चक्रवात और तूफान उस पर यात्रा करने वाले जलयानों को उतनी हानि नहीं पहुँचाते जितने अंध और प्रशांत महासागरों के चक्रवात। इसीलिए हिंद महासागर ही ऐसा महासागर है जिस पर अब भी पुराने जमाने के, नाजुक पोत यात्रा करने का दुस्साहस कर सकते हैं।

हिंद महासागर में गल्फ स्ट्रीम या क्यूरोसिवो जैसी कोई जलधारा नहीं है परंतु उसमें पूर्व से पश्चिम की ओर दक्षिणी भूमध्यरैखिक जलधारा बहती है। यह आस्ट्रेलिया और इंडोनेशिया के बीच स्थित तिमोर सागर से आरंभ होकर अफ्रीका के पूर्वी तट और मालागासी के बीच बहने वाली मोजांबिक चैनल तक जाती है।

इतिहासकारों और मानवशास्त्रियों का अनुमान है कि इसी जलधारा की मदद से इंडोनेशिया के मूल निवासी मालागासी पहुंचे होंगे। वैसे प्राचीन काल में इतनी लंबी समुद्री यात्रा करने वाली मानव प्रजातियों के उदाहरण यदाकदा ही मिलते हैं। शायद इसीलिए दक्षिणी भूमध्यरैखिक जलधारा नाविकों का 'प्रिय पथ' नहीं बन पाई। हिंद महासागर पर यात्रा करने वाले नाविक प्राचीन काल से ही तटों के सहारे-सहारे ही यात्राएँ करते रहे हैं। दूसरे शब्दों में, उन्हें मानसून जैसी पवन पर अधिक भरोसा था, जलधाराओं पर नहीं।

वास्तव में प्राचीन काल से ही व्यापारियों के लिए भारत ही हिंद महासागर का केंद्रीय क्षेत्र रहा है। वह लगभग 2,000 वर्षों तक – पुर्तगाली तथा अन्य यूरोपीय लोगों के आगमन तक – 'सोने की चिड़िया' बना रहा।

शायद इसी वजह से इस पूरे महासागर का नाम 'हिंद महासागर' पड़ गया।

निःसंदेह हिंद महासागर को महत्त्व प्रदान कराने में भारत की भौगोलिक स्थिति का विशेष महत्त्व है। आसपास के क्षेत्रों की तुलना में, सागर में काफी आगे की ओर निकला हुआ भारतीय प्रायःद्वीप, अत्यंत प्राचीन काल से ही सुदूर-पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाले अथवा लौटने वाले जलयानों को अत्यंत महत्त्वपूर्ण 'विश्राम-स्थल' तथा माल के क्रय-विक्रय के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करता रहा है।

पश्चिमी देशों के प्राचीन इतिहास के ग्रंथों में हिंद महासागर का उल्लेख यदाकदा ही मिलता है। लिखित इतिहास के अनुसार हिंद महासागर में इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं कि उस पर नौचालन ईसा से लगभग 3,000 वर्ष पूर्व ही आरंभ हो गया था। किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा ईसा की प्रथम शताब्दी में लिखित **पेरीप्लस ऑफ दि इरीथ्रीअन सी** नामक ग्रंथ में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं। साथ ही हिंद महासागर के बारे में ऐसी जानकारी भी मिलती है, जो आधुनिक दृष्टि से एकदम सही है।

प्राचीन फिनिशिया (वर्तमान सीरिया और लेबनान) के निवासी समुद्रप्रेमी लोग थे। वे ईसा-पूर्व दसवीं शताब्दी में ही हिंद महासागर पर विचरण करने लगे थे। बाद में उनका दबदबा ईरान की खाड़ी से लेकर गुजरात के तट तक हो गया। उन दिनों फिनिशियन व्यापारी नियमित रूप से गुजरात का माल मेसोपोटामिया ले जाते थे और वहाँ का माल गुजरात लाते थे। यद्यपि वे नियमित रूप से गुजरात से व्यापार करते थे पर उन्होंने वहाँ अपनी आबादियाँ नहीं बसाईं थीं। वे शांतिप्रिय लोग थे और शांतिप्रिय तरीके से ही व्यापार करते थे।

ईसा से छह शताब्दी पूर्व, धीरे-धीरे, फिनिशियनों का स्थान यूनानी लेने लगे। वास्तव में वे ही पहले यूरोपवासी थे जिन्होंने हिंद महासागर पर नियमित यात्राएँ आरंभ की थीं। यूनानी सम्राट सिंकदर महान् को भी सागर से बेहद लगाव था। उन्होंने उसमें अनेक अभियान आयोजित किए थे। पहले अभियान में, जो ईसा-पूर्व 325 में आयोजित किया गया था, भारत में निर्मित लगभग

800 पोत शामिल थे। यह अभियान सिंधु नदी के डेल्टा से आरंभ होकर ईरान की खाड़ी तक गया था। उसके बाद, उन्होंने हिंद महासागर के उत्तर-पश्चिमी भाग में तीन और अभियान आयोजित किए थे।

कहा जाता है कि सिकंदर सागर (उथले सागर) की तली में उतरे भी थे। ये घंटे के आकार के एक बड़े, पारदर्शी, पात्र में बैठकर सागर की तली तक पहुंचने के प्रयास किया करते थे।

सिंकदर की मृत्यु के बाद उनके साम्राज्य के पश्चिमी भाग के शासक बनने वाले टॉलमी वंश के शासक भी सागरप्रेमी थे। टॉलमी-सप्तम के शासन काल (146 से 117 ईसा-पूर्व) में भारत और मिश्र (जहाँ टॉलमी शासन करते थे) के बीच समुद्री मार्ग से व्यापार होने लगा था। यह व्यापार टॉलमी वंश के पतन के बाद भी जारी रहा।

टॉलमी-अष्टम के शिक्षक, अगाथैरकीडीज द्वारा लिखित ईरीथ्रीअन सी (लाल सागर) विषयक ग्रंथ को सागर के इतिहास का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। इसमें तत्कालीन भारत और मिश्र के बीच व्यावसायिक संबंधों का रोचक वर्णन है।

टॉलमी वंश के पतन के बाद, रोमन शासकों द्वारा मिश्र पर विजय के बाद, भारत और मिश्र के बीच व्यापारिक संबंध और दृढ़ होते गए यद्यपि स्वयं रोमन व्यापारिक यात्राएँ नहीं करते थे। रोमन काल में हिंद महासागर में जलयानों की यात्राओं के बारे में मुख्य रूप से चार लेखकों के ग्रंथ प्रस्तुत किए जाते हैं। ये लेखक थे — स्ट्राबो, वरिष्ठ प्लिनी, **पेरीप्लस** के अज्ञात रचयिता और टॉलमी। टॉलमी द्वारा ईसा की दूसरी शताब्दी में रचित **जिओग्राफिया** अब भी भूगोल का प्रामाणिक आदि-ग्रंथ माना जाता है। उस समय भारत के प्रसिद्ध बंदरगाह थे — बहारदीपुर, बैरीगाजा (भंडौंच), कारीकल, मसूलीपत्तनम आदि।

अनेक इतिहासकारों के अनुसार भूमध्यसागर के नाविकों को हिंद महासागर की दक्षिण-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी मानसूनों के बारे में, ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी के यूनानी भूगोलवेत्ताओं ने बताया था। परंतु वास्तव में पूर्वी

देशों के नाविकों को इन पवनों की गतिविधियों की जानकारी पहले से ही थी। वे अपनी समुद्री यात्राओं के दौरान मानसून पवनों की भरपूर सहायता भी लिया करते थे। आधुनिक युग के आरंभ में (मई 1498 में) वास्को-द-गामा को भारतीय तट तक पहुंचाने में मानसून पवन (गर्मी की मानसून) ने बहुत सहायता दी थी।

अरबवासियों का नियंत्रण

इस्लाम के प्रादुर्भाव के बाद अरब के, विशेष रूप से उसके मरुस्थली, उत्तरी भाग के, निवासी एकाएक जोश और उत्साह से भर गए। इस्लाम के अनुयायी बन जाने के बाद अरब कौम में नई शक्ति का संचार हुआ और वह विश्वविजय करने तथा इस्लाम का प्रचार करने के लिए निकल पड़ी।

मुसलमानों (अरबों) से भारत का संपर्क दो प्रकार से हुआ। उन्होंने उत्तर-पश्चिम दिशा से, थल मार्ग से, आकर भारत पर आक्रमण किया। साथ ही दक्षिण-पश्चिम दिशा से, समुद्री मार्ग से, आकर नियमित रूप से व्यापार करना भी आरंभ किया। यद्यपि ये दोनों घटनाएँ अनेक शताब्दियों तक लगभग साथ-साथ होती रहीं पर इन्होंने एक-दूसरे को प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित नहीं किया। इस प्रकार जब मुस्लिम आक्रमणकारी भारत के उत्तर-पश्चिमी इलाके पर कहर ढा रहे थे उस समय भी मुस्लिम व्यापारियों की नौकाएँ नियमित रूप से भारत के दक्षिणी-पश्चिमी तट के बंदरगाहों पर शांतिपूर्वक आ-जा रहीं थीं। ये नौकाएँ मात्र व्यापार के लिए ही भारतीय तटों, विशेष रूप से मालाबार तट, पर आया करती थीं। यद्यपि उस समय भी बैरीगाज़ा और क्रैंगनोर बंदरगाहों का पहले जैसा ही महत्त्व था परंतु धबोल, कालीकट, क्विलोन जैसे बंदरगाहों का महत्त्व भी तेजी से बढ़ रहा था।

अरब व्यापारियों के कट्टर मुसलमान होने के बावजूद उन्होंने कभी भी इस्लाम के प्रचार की कोशिश नहीं की थी।

सन् 851 में अरब यात्री सुलेमान द्वारा लिखित **सिलसिलात-ए-तवारीख** नामक ग्रंथ में अरबों की समुद्री यात्राओं के विस्तृत और रोचक वर्णन मिलते हैं। सागरप्रेमियों के अनुसार **पेरीप्लस ऑफ दि ईरीथ्रीअन सी** के बाद

यह पुस्तक ही हिंद महासागर पर नौचालन की सर्वश्रेष्ठ प्राचीन 'गाइड बुक' थी।

इस्लाम ने विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान की अभिवृद्धि की। इन क्षेत्रों में भूगोल, इतिहास आदि के विषय सर्वोपरि थे। वास्तव में मध्य युग में इस्लाम धर्म के अनुयायी, अरबवासियों, ने विज्ञान के विविध क्षेत्रों के साथ-साथ इन क्षेत्रों में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया था।

तत्कालीन अरब विद्वानों में इब्न बतूता का नाम सहज ही उभर कर सामने आता है। इब्न बतूता बहुत विद्वान, साहसी और कलाप्रेमी व्यक्ति थे। उन्होंने भारत की भी यात्रा की थी। वैसे हिंद महासागर पर अरबों द्वारा लिखित सर्वोत्तम पुस्तक के रूप में इब्न शहरयार की पुस्तक **अजैब-एल-हिंद** (हिंद के अजूबे) का सानी नहीं है। इसमें हर तथ्य का उपयुक्त वर्णन है। मजेदार बात यह है कि यह वर्णन बहुत संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मध्ययुगीन अरब साहित्य की, विशेष रूप से समुद्री यात्रा वृत्तांतों, की चर्चा करते समय **अलिफ लैला** में वर्णित सिंधबाद की यात्राओं को नहीं छोड़ा जा सकता। यद्यपि सिंधबाद एक काल्पनिक नायक था और उसकी सब यात्राएँ भी लेखक के मस्तिष्क की उपज मात्र थीं परंतु निश्चय ही उसने जितने लोगों को समुद्री यात्राएँ करने के लिए प्रेरित किया, उतना कदाचित् ही किसी अन्य व्यक्ति/पुस्तक ने किया हो।

शताब्दियों तक लगातार समुद्री यात्राएँ करते रहने के फलस्वरूप अरबवासियों ने नौचालन के क्षेत्र में विशेषज्ञता अर्जित कर ली थी। साथ ही दक्ष व्यापारी होने के नाते वे धन अर्जन में भी किसी से पीछे नहीं थे।

समुद्री यात्राएँ करते समय अरब व्यापारी अपने साथ एक देश के पौधे, यंत्र तथा अन्य वस्तुएँ भी दूसरे देशों को ले जाते थे। इनमें से अनेक वस्तुएँ दूसरे देशों के लिए एकदम नई और आश्चर्यजनक होती थीं। अनेक बार प्राप्तकर्ता देश उन्हें स्वयं उगाने या बनाने के प्रयत्न भी करते थे। इस प्रकार अरबों ने धान, कहवा और गन्ना जैसे पौधों को अनेक देशों में प्रविष्ठ करा

दिया, जहाँ उनकी पैदावार तेजी से होने लगी है। साथ ही अरबों ने चीन में आविष्कृत बारूद (गन पाउडर) को भी अन्य देशों में प्रचलित कर दिया और अफ्रीका के मासूम निवासियों को, गुलामों के रूप में, एशिया के अनेक देशों में पहुंचा दिया।

ईसा की सातवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक हिंद महासागर पर नियमित व्यापारिक यात्राएँ होती रहीं परंतु स्वयं सागर के बारे में जानकारियाँ प्राप्त करने के प्रयत्न लगभग नहीं के बराबर किए गए। यद्यपि अरबवासी हिंद महासागर पर बहुत लंबी-लंबी और साहसिक यात्राएँ करते थे परंतु उनकी यात्राएँ मुख्य रूप से उसके उत्तरी और पश्चिमी भागों तक ही सीमित रहती थीं। अरब नाविक उसके दक्षिणी भाग पर यात्रा करने से हमेशा कतराते थे। वास्तव में उन्होंने उस क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस ही नहीं किया। अतः वह क्षेत्र उनके लिए हमेशा अज्ञात बना रहा।

टायनबी तथा कुछ अन्य इतिहासकारों ने हिंद महासागर पर अरबों के नियंत्रण की चर्चा बहुत बढ़ा-चढ़ा कर की है परंतु उनका वास्तविक नियंत्रण केवल लाल सागर तक ही सीमित था। अरबों के पास कोई बड़ा, लड़ाकू जहाजी बेड़ा भी नहीं था और न ही ताकतवर नौसेना। इसलिए सोलहवीं शताब्दी में जब अरब व्यापारिक नौकाओं को पुर्तगाली समुद्री डाकुओं का मुकाबला करना पड़ा तब उन्हें एक गैर-अरब देश, तुर्की, की नौसेना की मदद लेनी पड़ी।

आधुनिक युग का आरंभ

हिंद महासागर के इतिहास में वर्ष 1498 बहुत महत्त्वपूर्ण है। उस वर्ष वास्को-द-गामा का समुद्री मार्ग से भारत आगमन हुआ था। उससे एक नए युग का प्रारंभ हुआ। इसके बाद घटनाक्रम बदलता ही गया। पहले धीरे-धीरे और फिर तेजी से। इस प्रकार 1498 से हिंद महासागर के इतिहास में आधुनिक युग आरंभ हो गया।

हिंद महासागर पर यात्रा करने में वास्को-द-गामा के नाविक बहुत ऊब चुके थे और वे वापस, पोर्तगाल, लौटने की ज़िद करने लगे थे। जब उन्होंने

अपनी जिद नहीं छोड़ी तब द-गामा ने उन्हें बातचीत करने के बहाने अपने जहाज पर बुलाया (वह चार जहाजों के साथ अपने अभियान पर निकला था)। वार्ता चल ही रही थी कि उसने अपने विश्वस्त लोगों द्वारा विद्रोहियों के नौचालन उपकरण सागर में फिंकवा दिए। अब विद्रोहियों के पास द-गामा की आज्ञा मानने के सिवाय कोई चारा नहीं बचा था।

यूरोप से भारत तक का समुद्री मार्ग खोजने में पोर्तगालियों को लगभग दो सौ वर्ष का समय लगा था परंतु एक बार अपने प्रयत्नों में सफल हो जाने के बाद उन्होंने केवल 15 वर्षों में ही इस मार्ग में आने वाले, (हिंद महासागर के) सब महत्त्वपूर्ण स्थलों पर कब्जा कर लिया।

धीरे-धीरे पोर्तगाल निवासियों ने भारत के पश्चिमी तट के अनेक स्थानों — यथा गोवा, द्वीव, दमन, सालसट और बेसीन — तथा श्रीलंका, मलक्का, ओरमुज तथा मकाओ (चीन) आदि पर स्थायी कब्जा कर लिया परंतु अनेक कारणों से वे भारत, इंडोनेशिया तथा सुदूर-पूर्व के देशों के बड़े भागों पर अपना स्थायी राज्य स्थापित करने में असफल रहे।

पोर्तगाली चाहे कुशल व्यापारी और बुद्धिमान शासक नहीं थे, परंतु वे बहुत दक्ष भूगोलवेत्ता और खोजी अवश्य थे। निःसंदेह अरब भूगोलवेत्ताओं ने हिंद महासागर के अनेक क्षेत्रों के विवरण काफी सही तरीके से पेश किए थे और मध्य युग में पोर्तगालियों के आगमन से पहले चीनियों ने अपने ग्रंथ **वु-पाई-ची** की रचना आरंभ कर दी थी परंतु सोलहवीं शताब्दी के आरंभ तक भी हिंद महासागर के मानचित्र तथा विवरण बहुत सही नहीं थे। यूरोपवासियों के लिए तो वे उपयोगी भी नहीं थे क्योंकि सब अरबी भूगोल ग्रंथ टॉलमी की शैली में लिखे गए थे। पोर्तगालियों ने अपने आगमन के लगभग तुरंत बाद इस क्षेत्र में कार्य आरंभ कर दिया।

प्रसिद्ध इतिहासकार काम्मेरर के अनुसार पोर्तगालियों द्वारा हिंद महासागर का पहला मानचित्र, सन् 1510 के लगभग, तैयार किया गया। यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य था क्योंकि वास्तव में यह वैज्ञानिक आधार पर तैयार किए जाने वाला, हिंद महासागर का, सर्वप्रथम मानचित्र था। दुर्भाग्यवश इसके

बनाने वाले का नाम अब तक भी गुमनामी के अंधेरे में कहीं खोया पड़ा है।

सोलहवीं शताब्दी में पोर्तगाल सरकार ने ऐसी व्यवस्था की हुई थी जिससे भूगोलवेत्ता और सागरप्रेमियों को बहुत सुविधा होती थी। हर पोर्तगाली पोत अपनी यात्रा से लौटने के बाद अपने देश के 'कासा द इंडिया इ द मीना' (भारत और खान कार्यालय – नौसेना उपनिवेश और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मंत्रालय) को अपने चार्ट, रिपोर्ट और यंत्र आदि प्रेषित करता था। उनके आधार पर मंत्रालय में बड़े-बड़े मानक मानचित्र तैयार किए जाते थे जो महासागरीय अभियानों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा सहायक साबित होते थे।

डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी

पोर्तगाल निवासी भारत तथा पूर्वी एशिया के अन्य देशों के साथ व्यापार करना चाहते थे परंतु उनके पास पर्याप्त संख्या में जलयान नहीं थे। इसलिए एशियाई देशों से माल लाने के लिए उन्हें एक अंतर्राष्ट्रीय (यूरोपीय) संगठन पर, जिसमें नीदरलैंड का बोलबाला था, निर्भर रहना पड़ता था।

धीरे-धीरे डच (हालैंड निवासियों) ने पोर्तगालियों को केप ऑफ गुड होप, मलक्का तथा इंडोनेशिया से विस्थापित कर दिया। वैसे डच लोगों का लक्ष्य भारत नहीं वरन् 'मसालों का देश', जावा, (इंडोनेशिया) था। वहाँ उन्होंने अपना जाल 'सभ्य व्यापारियों (जंटलमैन मर्चेंट) के रूप में फैलाया और अपनी पकड़ बहुत मजबूत कर ली तथा बीसवीं सदी के मध्य तक उन्होंने अपना साम्राज्य जमाए रखा।

वे बहुत कुशल मानचित्र निर्माता (नक्शानवीस) थे। उनमें मरकेटर और ओरटेलियस जैसे इतिहासप्रसिद्ध मानचित्र निर्माता भी थे। उन्होंने न केवल हिंद महासागर के विभिन्न भागों के बेहतर मानचित्र तैयार किए वरन् केप ऑफ गुड होप से सीधे इंडोनेशिया जाने का मार्ग खोजा और हिंद महासागर के दक्षिणी भाग की भी खोज की। पर नौचालन के लिए वे मानसूनों पर निर्भर नहीं रहते थे।

समझा जाता है कि उन्होंने आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त न्यूजीलैंड और तस्मानिया की भी खोज की थी।

सन् 1600 में (ब्रिटिश) ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद, अंग्रेजों ने भी पूर्वी एशियाई देशों के साथ व्यापार करने की पहल की और वे भी हिंद महासागर को पार करते हुए भारत आ पहुंचे। ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के चार वर्ष बाद फ्रांस भी प्रतिस्पर्धा में आ कूदा। आरंभ में इन सब यूरोपीय देशों के निवासियों का उद्देश्य पूर्वी एशिया के देशों के साथ व्यापार कर मुनाफा कमाना था। पर उस काल की अराजकता और स्थानीय शासकों की आपसी लड़ाइयों का फायदा उठाकर उन्होंने भारत और अन्य एशियाई देशों में अपना प्रभुत्व तथा साम्राज्य स्थापित करना आरंभ कर दिया।

अठारहवीं शताब्दी में, हिंद महासागर के तटवर्ती देशों में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी एक शक्तिशाली केंद्रीय सत्ता का ह्रास। यह ह्रास केवल राजनैतिक और सैनिक ही नहीं वरन् आर्थिक भी था। उस काल में हिंद महासागर के तट पर बसे एशियाई देशों की नौ-सैनिक शक्ति एकदम क्षीण हो गई थी जबकि यूरोपीय देशों की नौ सेनाएँ दिन-प्रतिदिन बलशाली होती जा रही थीं। यूरोप में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में नित होने वाले आविष्कारों और खोजों का उपयोग करके वहाँ बड़े-बड़े जलयान बनाए जा रहे थे। उनकी क्षमता और दक्षता बढ़ाई जा रही थी।

इस काल में यूरोपीय देशों में सागरविज्ञान के क्षेत्र में भी तेजी से प्रगति हो रही थी। सागर के विभिन्न क्षेत्रों के अन्वेषण के लिए नित नए अभियान आयोजित किए जा रहे थे और सागर के रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए जोर-शोर से प्रयत्न किए जा रहे थे।

सागर अन्वेषण हेतु आयोजित अभियानों और सागरविज्ञान के क्षेत्र में हुई उपलब्धियों के प्रभाव, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से, हिंद महासागर पर भी पड़े। अनेक अभियान हिंद महासागर पर से भी गुजरे थे।

सागरप्रेमी : भारतीय

आप पढ़ चुके हैं कि भारत, विशेष रूप से उसका दक्षिणी प्रायःद्वीप, हिंद महासागर को दो विशाल शाखाओं – अरब सागर और बंगाल की खाड़ी – में विभक्त करता है। इनमें से प्रत्येक का क्षेत्रफल यूरोप के लगभग बराबर

है।

हिंद महासागर के इस प्रकार के विभाजन की ओर सागरप्रेमियों का, विशेष रूप से पाश्चात्य सागरप्रेमियों का, ध्यान प्राचीन काल में ही आकर्षित हो गया था और उन्होंने इसे चार भागों में बांट दिया था। उनके अनुसार भारतीय तटों के निकट का सागर ही 'वास्तविक हिंद महासागर' (**इंडोकोन पेलागॉस** Indikon pelagos) था। अरब प्रायःद्वीप के इर्द-गिर्द की जलराशि जो अफ्रीका के पूर्वी तट पर मेनाउथिआस द्वीप (आधुनिक पेम्बा) तक फैली है, उनके अनुसार **'इरीथ्रीयम मारे'**, यानी लाल सागर, थी। उस लाल सागर की दो प्रमुख शाखाएँ थीं ईरान की खाड़ी और वर्तमान लाल सागर (**साइनस अरेबिकस**)। वर्तमाल बंगाल की खाड़ी प्राचीन यूनानियों के अनुसार 'गंगा की खाड़ी' अथवा 'बड़ी खाड़ी' थी। हिंद महासागरं का दक्षिणी भाग **'मारे प्रासोडम'** यानी 'हरा सागर' था।

उक्त 'हरे सागर' के बारे में प्राचीन पाश्चात्य विद्वानों को बहुत कम जानकारी थी यद्यपि उस काल में भी चीनी और अरबी जलयान उस पर से यात्रा करते रहते थे। पाश्चात्य विद्वानों को तो हिंद महासागर के इस भाग की जानकारी वास्को-द-गामा की ऐतिहासिक यात्रा के बाद ही प्राप्त होनी आरंभ हुई थी।

अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार सिंधु घाटी के निवासी, ईसा के जन्म से लगभग तीन हजार पूर्व ही, नियमित रूप से, अन्य देशों के साथ समुद्री मार्ग से व्यापार करते थे। भारतीय नौचालन के विकास का गहन अध्ययन करने वाले इतिहासकार, डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी तथा डॉ. पंड्या के अनुसार ईसा के जन्म से लगभग 1000 वर्ष पूर्व भी भारत और मेसोपोटामिया के बीच, बड़े पैमाने पर, व्यापार होता था। यह व्यापार समुद्री मार्ग से होता था। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय सुमेर निवासियों के साथ समुद्री मार्ग से व्यापार करते थे।

गुजरात में लोथल नामक स्थान पर की गई खुदाई में मिले अवशेष भी सिंधु घाटी युग के भारतवासियों के सागर संबंधी ज्ञान की पुष्टि करते हैं।

लोथल, खंभात की खाड़ी के तट पर, साबरमती नदी के ज्वारनदमुख पर, बसा बंदरगाह था। जलयान उस तक उच्च ज्वार के दौरान ही पहुंच पाते थे। इन अवशेषों से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गया है कि उस युग में भी भारतीय ज्वार-भाटाओं के बारे में जानकारी रखते थे और वे बड़ी समुद्री नौकाएँ और बंदरगाह बनाना जानते थे। ये अवशेष यह भी सिद्ध करते हैं कि हमारे पूर्वज, अत्यंत सीमित रूप से ही सही, तटीय सागरों का उपयोग खाद्य तथा अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए भी, करते थे।

कुछ वर्ष पूर्व तक अनेक व्यक्ति श्रीकृष्ण को पौराणिक व्यक्ति ही मानते थे और उनकी राजधानी 'द्वारका' को एक काल्पनिक नगर। परंतु राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा वर्तमान द्वारका के निकट सागर की तली में एक अन्य, भव्य, नगर के अवशेष ढूँढ़ लिए जाने के बाद यह निश्चित हो गया है कि श्रीकृष्ण के राज्य की राजधानी पुराणों में वर्णित केवल एक

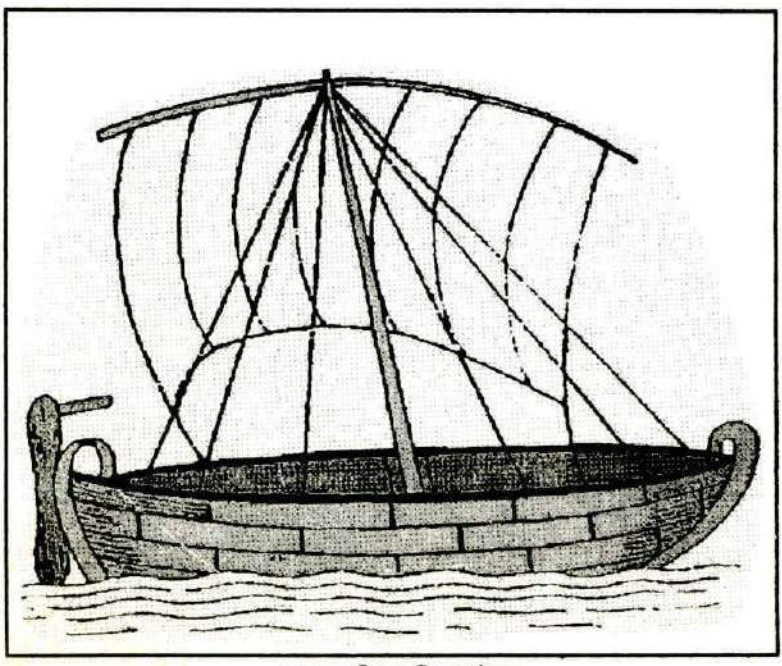

एक प्राचीन तमिल नौका

काल्पनिक नगरी नहीं थी। उसका भौतिक अस्तित्व भी था। श्रीकृष्ण के काल में वह एक प्रसिद्ध बंदरगाह भी थी।

सामवेद् की संहिताओं में शक्तिशाली सागरों के 'फूल जाने' के उल्लेख मिलते हैं। यहाँ सागरों के 'फूल जाने' का तात्पर्य उच्च ज्वार के दौरान जल-स्तर के ऊंचे उठ जाने से है।

तमिल साहित्य के प्राचीन ग्रंथों के रचना काल को, 'संगम काल' भी कहा जाता है। वह ईसवी युग की आरंभिक शताब्दियों का समकालीन था। उस काल में तमिलनाडु और केरल के तटों पर अनेक बंदरगाह यथा पोदुके (पांडिचेरी), कावेरीपत्तनम्, नागापत्तनम् (वर्तमान तंजावूर जिले में), पेरीपत्तनम्, कोरकोरी आदि स्थित थे। इन बंदरगाहों से, ईसा से छह शताब्दी पूर्व से ही, अन्य देशों के साथ, नियमित रूप से, व्यापार होने लगा था और लगभग छह सौ वर्षों तक (तीसरी शताब्दी ईसा-पूर्व से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक) यह व्यापार अपनी चरम सीमा पर था।

भोज द्वारा रचे गए ग्रंथ **युक्ति कल्पतरु** में जलयान निर्माण-कला का विस्तृत वर्णन है। उसमें विभिन्न प्रकार की नौकाओं की निर्माण और मरम्मत करने की विधियाँ, उनको चलाने के तरीके आदि के विस्तृत विवरण हैं। उसमें यह भी बताया गया है कि लंबी समुद्री यात्राएँ करने वाले जलयानों की तली में लोहे का उपयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा सागर की तली में स्थित चुंबकीय चट्टानें जलयानों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती हैं।

सम्राट अशोक के राज्यकाल में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु नियमित रूप से सुदूर देशों की समुद्री याात्राएँ करना आम बात थी। अशोक के पुत्र और पुत्री समुद्री मार्ग से ही श्रीलंका गए थे। प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ के अनुसार "जब हम सम्राट अशोक की सिंहल नीति पर दृष्टिपात करते हैं, तब सहज ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके पास थल सेना के साथ जहाज़ी बेड़ा भी था।"

दक्षिण भारत के चोल राजाओं के समुद्री बेड़ों ने अपने-आपको केवल तटीय सागर तक ही सीमित नहीं रखा था वरन् वे बंगाल की खाड़ी को साहसपूर्वक पार करके इरावदी के डेल्टे और मलय प्रायःद्वीप तक की याात्राएँ करते थे। ये बेड़े जावा और सुमात्रा तक भी चले जाते थे।

अन्य देशों, विशेष रूप से यूरोपीय और पश्चिमी एशियाई देशों, के साथ भारत के व्यापार के बारे में इतिहासकारों ने एक विचित्र तथ्य का उल्लेख किया है। व्यापार के सिलसिले में उन देशों के व्यापारी ही अक्सर भारत आते थे और वे ही अपने देशों से माल लाकर यहाँ बेचते थे और उसके बदले में भारतीय उत्पाद ले जाते थे। भारतीय व्यापारी यदाकदा ही, बहुत कम संख्या में, उन देशों को जाते थे। भारतीयों में यह प्रवृत्ति प्राचीन और मध्य युगों में ही नहीं, वरन् आधुनिक युग के आरंभ होने तक भी, विद्यमान रही है।

यह व्यवस्था सामान्यतः बहुत सुचारु थी और इससे व्यापार में कोई गड़बड़ी या शिकायत नहीं होती थी परंतु आधुनिक युग में भारत को इस व्यवस्था के कारण अत्यधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी। उसका लगभग संपूर्ण समुद्री व्यापार अन्य देशवासियों पर, जिनका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना भर था, निर्भर हो गया।

वैसे इस बारे में हमें कुछ अपवाद भी मिलते हैं। गुजरात के वोरगी वोहरा, यनुल्ला अब्दुल गफ्फूर और हाज़ी सलाह चेल्लाबी आदि ऐसे कुछ व्यक्ति थे जो अठारहवीं शताब्दी के प्रथम कुछ दशकों में यूरोपीय व्यापारियों से टक्कर लेते रहते थे।

अंतर्राष्ट्रीय समुद्री व्यापार को स्वयं अपने हाथों में न लेने की भारतीयों की प्रवृत्ति के अनेक कारण बताए जाते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. मुखर्जी के अनुसार भारतीयों की मानसिकता कभी भी अन्य देशों को जीतने और उनको पददलित करने की नहीं रही। इसलिए वे बहुत कम अवसरों पर ही अन्य देशों को जाते थे। साथ ही भारतीय युवाओं और साहसी व्यक्तियों के लिए अपने देश में ही साहसिक और रोमांचक काम करने के पर्याप्त अवसर मिल जाते थे।

बृहत्तर भारत – उक्त वर्णन से हमारा अभिप्राय यह प्रमाणित करना नहीं है कि प्राचीन भारतीयों ने अन्य देशों में अपनी बस्तियाँ स्थापित ही नहीं की थीं। उन्होंने वर्तमान इंडोनेशिया, इंडोचीन, मलय आदि देशों में अपनी बड़ी-बड़ी बस्तियाँ बसायीं थीं। इस काम में दक्षिण भारतीयों ने ही नहीं वरन् गुजरातियों ने भी योग दिया था। सन् 75 और फिर सन् 600 के लगभग साहसी गुजराती

युवकों ने भी जावा में आधिपत्य जमाने के प्रयत्न किए थे। भारतीयों ने वहाँ अपनी बस्तियाँ बसाई थीं तथा अपनी संस्कृति और धर्म का प्रचार किया था।

अन्य देशों, श्रीलंका, कंपूचिया, जावा आदि में भारतीयों की आबादी बसाने में बंगालवासियों ने भी बहुत योग दिया था। उन्होंने चंपा (कोचीन-चाइना) में 'भागलपुर' नामक शहर भी बसाया था। बंगाल की लोककथाओं में 'चंडी' और 'मनसा' देवियों और सुदूर देशों की यात्रा करने वाले यात्रियों का वर्णन मिलता है। प्राचीन बंगाल के कुछ प्रसिद्ध बंदरगाह थे — संतगांव, सोनारगांव, चंपा, भागलपुर और तापलिप्ता।

भारत से बाहर, अन्य देशों में विशेष रूप से दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में 'बृहतर भारत' की स्थापना करने के पीछे भारतीयों का उद्देश्य उन देशों की जनता को लूटना, या पददलित करना अथवा अपना साम्राज्य फैलाना नहीं था।

मध्य युग — यद्यपि मध्य युग में भारतीयों द्वारा 'भारत के बाहर भारत' बसाने का कार्य समाप्त हो गया परंतु उस युग में भी उन्होंने सीमित अर्थ में अपने आसपास के सागरों में रुचि बनाए रखी। अकबर के काल में रची गई **आइने अकबरी** में भारत के आसपास के सागरों की मछलियों, विशेष रूप से खाद्य मछलियों तथा अन्य जीवों के वर्णन हैं। समझा जाता है कि वास्को-द-गामा को भारत तक पहुंचाने में पूर्वी अफ्रीका के एक गुजराती मुस्लिम युवक का बहुत योग था।

मध्य युग में शिंवाजी ने अपनी नौ-सेना का गठन किया था और वे उस पर पर्याप्त ध्यान भी देते थे। मराठा शक्ति के उत्थान में नौ-सेना का भी योग था। शिवाजी के शासनकाल में विजयदुर्ग, कोलाबा, सिंधुदुर्ग, रत्नागिरि, अंजनवाला आदि में युद्धपोतों का निर्माण किया जाता था।

'सतारा के मुखिया प्रमुख' नाम से विख्यात आंग्रे, मुंबई से विंसीरेला तक के समुद्री तट का 'बेताज बादशाह' था। तीस से चालीस तोपों से लैस, युद्धपोतों का उसका बेड़ा उस समय के यूरोपीय व्यापारियों के लिए दहशत बन गया था। इसीलिए इस वीर की स्मृति में भारतीय नौ-सेना ने अपने एक युद्धपोत का नाम **'आई एन एस आंग्रे'** रखा है।

---

4 – भौतिक संरचना

अन्य महासागरों की भांति हिंद महासागर की तली पर भी विशाल, एकदम सपाट, मैदान, बड़े-बड़े विभंग, भूकंपीय दृष्टि से निष्क्रिय पर्वत श्रेणियाँ, ज्वालामुखी तथा मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला हैं। पर भूवैज्ञानिकों के मतानुसार, वह अपनी निर्माण प्रक्रिया के फलस्वरूप, "सबसे जटिल और रहस्यमय" महासागर है। उसके निर्माण के दौरान टेथिस सागर समाप्त हो गया था और अल्पाइन–हिमालय पर्वत शृंखला का उदय हुआ था। इसीलिए कुछ वैज्ञानिक हिंद महासागर के निर्माण और हिमालय पर्वत शृंखला के उदय को 'एक ही घटना के दो पहलू' मानते हैं।

अरब सागर और बंगाल की खाड़ी हिंद महासागर की ही शाखाएँ हैं। हिंद महासागर की एक शाखा होने के बावजूद भी भूवैज्ञानिकों के अनुसार लाल सागर एक 'विशेष' सागर है। उसमें ऐसी अनेक विशेषताएँ पाई गई हैं जो हिंद महासागर के अन्य अंगों में नहीं हैं। इसलिए इन तीन सागरों की भौतिक संरचना, जल, आदि का वर्णन अलग से, कुछ विस्तार से, करना बेहतर होगा।

हिंद महासागर में गहरी खाइयों की संख्या काफी कम है। इसीलिए पिछले करोड़ों वर्ष से समय-समय पर मध्य हिंद महासागर पर्वत शृंखला के क्षेत्र में मैंटल से निकलने वाला 'नया' पदार्थ अब भी तली पर पाया जाता है।

वैज्ञानिकों द्वारा किए गए विभिन्न अध्ययनों और **ग्लोमर चैलेंजर** अनुसंधान पोत द्वारा सागर तल में किए गए गहरे छिद्रों से हिंद महासागर की तली, उसके गहरे सपाट मैदानों, निष्क्रिय पहाड़ियों, उसकी मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला, उसके 'सूक्ष्ममहाद्वीपों' (माइक्रोकांटीनेंट) आदि के बारे में काफी जानकारी मिली है। वास्तव में सूक्ष्ममहाद्वीपों की बड़ी संख्या हिंद महासागर की एक विशेषता है।

सागरवैज्ञानिकों का अनुमान है कि हिंद महासागर की अनेक विशेषताएं, उसकी असममित (ऐसिमिट्रिकल) आकृति के फलस्वरूप हैं। उत्तर में एशिया महाद्वीप के स्थित होने के फलस्वरूप ही उसने यह आकृति प्राप्त की है।

हिंद महासागर को निम्न पाँच प्रमुख भौतिक संरचनाओं में विभक्त किया जा सकता है : महाद्वीपीय मार्जिन, सागर बेसिन, मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला, सूक्ष्ममहाद्वीप और विभंग क्षेत्र।

महाद्वीपीय मार्जिन – हिंद महासागर का महाद्वीपीय शेल्फ कुछ सौ मीटर से लेकर 200 किमी. तक चौड़ा है। हमारे देश के पश्चिमी तट पर, मुंबई के निकट, महाद्वीपीय शेल्फ की चौड़ाई 200 किमी. से भी अधिक है। इस महासागर में शेल्फ-अवकाश (शेल्फ-ब्रेक), जो एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के महाद्वीपीय शेल्फों की बाहरी सीमा बनाता है, औसतन 140 मीटर है।

इस महासागर के महाद्वीपीय ढलान में अनेक जलमग्न, गहरे, खड्ड हैं। इनमें गंगा और सिंधु नदियों के डेल्टाओं से आरंभ होकर सागर की ओर जाने वाले खड्ड विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं (इनके बारे में बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के अंतर्गत विस्तार से पढ़िए)। इन नदियों के डेल्टाओं के निकट के सागरों में बहुत मोटी जमावटें हैं जो वितलीय कोन (पेलजिक कोन) कहलाती हैं।

महाद्वीपीय ढलान के आधार पर स्थित है महाद्वीपीय उत्थान। ढलान के आधार पर प्रवणता 1 : 40 है और वितलीय मैदान की सीमाओं पर 1 : 1000. वैसे महाद्वीपीय शेल्फ में टेकरियाँ हैं, टीले हैं और गहरे खड्ड हैं।

सागर बेसिन – हिंद महासागर की बेसिनों की सर्वाधिक उल्लेखनीय संरचनाएँ हैं विशाल वितलीय मैदान। ये अत्यंत समतल मैदान पृथ्वी की सतह की सर्वाधिक सपाट संरचनाएँ हैं। इनका ढाल 1 : 1000 से लेकर 1 : 7000 तक है। इनमें कहीं-कहीं छोटी पहाड़ियों और गहरे खड्डों के अतिरिक्त कोई भी ऐसी संरचना स्थित नहीं है जो 1-2 मीटर से अधिक ऊंची हो।

ये वितलीय मैदान हिंद महासागर के उत्तरी और दक्षिणी भागों में अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं – आस्ट्रेलिया के निकट के सागर में कम।

मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला – मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला की एक शाखा हिंद महासागर में भी स्थित है। अदन की खाड़ी में, सीबा पहाड़ी के रूप में आरंभ होने वाली और मॉरीशस के उत्तर-पूर्व में दो शाखाओं में विभक्त होकर उल्टे 'वाई' अक्षर की आकृति ग्रहण कर लेने वाली इस पर्वत शृंखला को आमतौर से 'मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला' कहा जाता है। अदन की खाड़ी से दक्षिण की ओर जाने वाली यह पर्वत शृंखला बाद में कार्ल्सबर्ग पर्वत बनाती है। दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ती हुई मुख्य शृंखला राड्रिग्ज़-मॉरीशस पठार पर भ्रंश क्षेत्र में चली जाती है। वहाँ यह दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। एक शाखा दक्षिण-पूर्व की ओर, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के दक्षिण से गुजरती हुई, प्रशांत महासागर में चली जाती है और दूसरी अफ्रीका के दक्षिण से होती हुई अंध महासागर में।

मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला के अक्ष के साथ भूकंपीय रूप से सक्रिय गर्त स्थित हैं। इस संपूर्ण शृंखला की संरचना एकदम पर्वतीय है। इसे अनेक अनुप्रस्थ विभंग काटते हैं। इन विभंगों के कारण अनेक क्षेत्रों में इसका अक्ष भी विस्थापित हो गया है।

इस पर्वत की चट्टानें मुख्यतया बेसाल्ट हैं परंतु इसके अनेक क्षेत्रों में अल्ट्रामैफिक तथा अन्य असाधारण संरचनाओं की चट्टानें भी पाई जाती हैं। चट्टानों की असाधारण संरचनाएँ उष्ण जल के प्रवाहों की साक्ष्य हैं। इन प्रवाहों का उच्च, ऊष्मीय घनत्व यह दर्शाता है कि ये धातुमय प्रकृति की हैं।

मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला के कुछ भाग उसकी सक्रिय भूकंपीय प्रकृति के प्रतीक हैं। इन भागों में मैंटल से बेसाल्टी पदार्थ बाहर निकलता रहता है और पर्वत के ढालों पर फैलता रहता है। इसलिए उन भागों पर जमावटों की मोटाई बहुत कम है और ये जमावटें आसपास के पदार्थों के जमने से बनी हैं।

साथ ही इन भागों में सागर की तली फैल रही है। इसके फैलने की गति कार्ल्सबर्ग पर्वत में 1-2 सेमी. प्रति वर्ष, मध्य हिंद महासागरीय पर्वत के मध्य भाग में 2-3 सेमी. प्रति वर्ष और दक्षिण-पूर्वी शाखा में लगभग 3 सेमी. प्रति वर्ष है। पर्वत शृंखला की दक्षिण-पश्चिमी शाखा की तली के प्रसार की

दर एक सेमी. प्रति वर्ष है।

मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला में भूकंप काफी संख्या में आते हैं। इनके अधिकेंद्र एक सीधे अक्ष पर अथवा उसके निकट स्थित होते हैं। इस शृंखला के शिखर पर एक केंद्रीय चुंबकीय असंगतता के अनुपस्थित रहने से यह अनुमान लगाया गया है कि कम से कम इसका दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र, मेसोज़ोइक युग से ही प्रसार नहीं कर रहा है।

नांइटी ईस्ट पर्वत शृंखला – अंतर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष (1957-58) के दौरान किए गए अध्ययनों में संयुक्त राज्य अमेरिका की लेंमोंट भूवैज्ञानिक वेधशाला (कोलंबिया विश्वविद्यालय) के वैज्ञानिकों ने हिंद महासागर में एक नए पर्वत का पता लगाया था। यह पर्वत शृंखला लगभग 10° उत्तर अक्षांश से आरंभ होकर दक्षिण दिशा में लगभग 32° दक्षिण अक्षांश तक चली जाती है। सागर के गर्भ में पाई जाने वाली पर्वत शृंखलाओं में यह सबसे सीधी और सबसे लंबी, शृंखला है। एकदम उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थित इस शृंखला की लंबाई 4,800 किमी. है। अनेक गुणों में यह मध्य हिंद महासागरीय पर्वत से एकदम भिन्न है। इसमें न तो ज्वालामुखी हैं और न ही भूकंपीय क्षेत्र।

यह लगभग 90° पूर्व देशांतर पर स्थित है। इसीलिए इसे 'नांइटी ईस्ट पर्वत शृंखला' कहा जाता है।

विभंग क्षेत्र – हिंद महासागर में अनेक विभंग हैं जिन्होंने मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला के अक्ष को अपने सामान्य पथ से विस्थापित कर दिया है। अरब प्रायःद्वीप और अदन की खाड़ी के पूर्व में स्थित ओवेन विभंग मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला के अक्ष को लगभग 300 किमी. दाहिनी ओर विस्थापित कर देता है। इस विस्थापन के संकेत हमें वीटले खाई के रूप में मिलते हैं। यह खाई वितलीय मैदान से भी लगभग 1000 मीटर गहरी है। अदन की खाड़ी में, इसके अतिरिक्त भी अनेक विभंग हैं। ये ओवेन विभंग के समानांतर हैं।

दक्षिण-पश्चिमी भाग में मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला का विन्यास अनेक वाम-पार्श्वीय क्षेत्रों द्वारा विस्थापित हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मालागासी विभंग क्षेत्र, जो मालागासी के पूर्व में स्थित है, ओवेन विभंग

क्षेत्र का दक्षिणी प्रसार है। एमस्टरडम विभंग क्षेत्र सैंट पॉल और एमस्टरडम द्वीपों के निकट स्थित है। ये विभंग क्षेत्र उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थित हैं और नांइटी ईस्ट पर्वत के लगभग समानांतर हैं। परंतु डायमैन्टिना विभंग क्षेत्र और रॉड्रिग्ज़ भ्रंश क्षेत्र, मोटे तौर से, पूर्व-पश्चिम दिशा में स्थित हैं।

सूक्ष्ममहाद्वीप – हिंद महासागर की एक अत्यंत उल्लेखनीय संरचना है सूक्ष्ममहाद्वीप। मोटे तौर से ये एकदम अभूकंपीय है – इनमें भूकंप नहीं आते। हिंद महासागर के उत्तरी भाग में स्थित, पश्चिम से पूर्व की ओर, ऐसे सूक्ष्ममहाद्वीप हैं : मोजांबिक रिज़, मालागासी रिज़, मैस्कारने पठार, चैगोस – लक्षद्वीप पठार।

हिंद महासागर के दक्षिणी भाग में केरगुएलेन पठार और ब्रोकन रिज ऐसे सूक्ष्ममहाद्वीप। इनमें से ब्रोकन रिज़ नांइटी ईस्ट पर्वत के पूर्व में, 30° दक्षिण अक्षांश के निकट, स्थित है।

अपनी विशेष आकृति के फलस्वरूप ये मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला से एकदम अलग पहचाने जा सकते हैं। आमतौर से ये अधिक ऊंचे क्षेत्र हैं।

मालागासी निश्चित रूप से एक सूक्ष्ममहाद्वीप है और ग्रेनाइटी संरचना वाले सेशल्स द्वीप यह सुझाते हैं कि मेस्कारने पठार का कम से कम उत्तरी भाग तो अवश्य ही एक सूक्ष्ममहाद्वीप रहा होगा।

चैगोस द्वीप समूह कोरल उद्गम के द्वीप हैं जो एक लंबे-चौड़े पठार पर स्थित हैं।

तली की जमावटें

हिंद महासागर की तली की जमावटों को दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है : स्थलजात जमावटें और गहरे सागर की जमावटें।

स्थलजात जमावटें – निश्चय ही स्थलजात जमावटें महाद्वीपों के निकट के सागरों में, महाद्वीपों से लगभग 1000 किमी. दूर तक, पाई जाती हैं और अधिकांशतः नदियों द्वारा थलीय संरचनाओं को काटकर लाई गई मिट्टी, चट्टानों आदि के जमने से बनी हैं। इससे दूर की स्थलजात जमावटें मुख्य

रूप से पवनों द्वारा उड़ाकर लाई गई रेत आदि के जमने से बनी हैं। ऐसी जमावटों में सिंधु और गंगा नदियों के खड्डों में बनी जमावटें प्रमुख हैं। इनका विस्तार हिंद महासागर की कुल जमावटों का लगभग 44 प्रतिशत है। हिंद महासागर के चुंबकीय अध्ययनों और **ग्लोमर चैलेंजर** द्वारा सागर की तली में किए गए गहरे छिद्रों के अवलोकनों से, यह निष्कर्ष निकलता है कि तली की चट्टानों का निर्माण आज से लगभग 14 करोड़ वर्ष पहले, जुरासिक और उत्तर क्रिटेशियस युगों में हुआ था। साथ ही तली को बनाने वाले पदार्थ और बेसाल्टी लावा प्रवाहों से उसकी अभिवृद्धि करने वाले पदार्थ, महाद्वीपों के विस्थापन के फलस्वरूप निर्मित हुए थे। इन बेसाल्टी लावा प्रवाहों के विस्थापन के ऊपर जमावटों की मोटाई काफी कम है। 'डीप सी ड्रिलिंग प्रोजेक्ट' के अंतर्गत किए गए अध्ययनों में यह मोटाई 155 से लेकर 725 मीटर तक पाई गई है।

मालागासी और सोमाली बेसिनों में भी मोटी-मोटी स्थलजात जमावटें हैं।

उष्ण कटिबंधों की जमावटों में कैओलिनाइट क्ले की बहुतायत है पर दक्षिण की ओर इसकी मात्रा तेजी से घटती जाती है।

हिंद महासागर की बेसिन के इर्द-गिर्द स्थित भूअभिनतिक खाइयों और गर्तों में, विशेष रूप से ओमन और मकरान खड्डों तथा अंडमान बेसिन और जावा-बाली-तिमूर खाई में स्थलजात पदार्थ मुख्य रूप से आविल धाराओं द्वारा लाए जाते हैं।

मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला के क्षेत्र में ज्वालामुखी लावा और राख की जमावटें हैं। इन जमावटों की कगारों पर गहरे सागर के निपंक स्थित हैं। ज्वालामुखी क्षेत्रों की मार्ज़िनों में ज़िओलाइट खनिज उपस्थित हैं। कुछ ज्वालामुखी जमावटों पर अटॉल के रूप में कोरलजन्य चूनापत्थर है।

हिंद महासागर के उस क्षेत्र की तली पर जो अंटार्कटिक क्षेत्र के निकट स्थित है, हिमखंडों और प्लावी हिमखंडों (आइस फ्लोज) द्वारा लाए जाने वाले स्थलजात पदार्थों की जमावटें पाई जाती हैं। इनमें सूक्ष्म और मोटे, दोनों प्रकार के, कणों वाले पदार्थ हैं। अंटार्कटिक महाद्वीप से लगभग 500 किमी.

उत्तर तक के क्षेत्र में हिमनदियों में समावेशित स्थलजात पदार्थों की बहुतायत है।

इस महासागर के पश्चिमी भागों में 20° दक्षिण अक्षांश से लेकर 15° उत्तर अक्षांश तक, कोरल भित्तियों और जैवहर्मों की बहुतायत है। वैसे लाल सागर में ये भित्तियां 30° उत्तर अक्षांश क्षेत्र में भी स्थित हैं। लक्षद्वीप, मालद्वीप और चैगोस द्वीप समूहों में भी अटॉल हैं। दिगो गारसिया स्वयं एक अटॉल है।

इन कोरल भित्तियों और द्वीपों की विशेषता यह है कि ये जलमग्न ज्वालामुखियों से संबद्ध नहीं हैं वरन् सूक्ष्ममहाद्वीप किस्म के पठारों से संबद्ध हैं।

चैगोस और मालागासी के बीच के ज्वालामुखी क्षेत्र में जलमग्न पठारों और ज्वालामुखियों पर स्थित विभिन्न किस्मों की कोरल भित्तियों की भरमार है।

हिंद महासागर के पूर्वी क्षेत्र में, आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के निकट, कोरल भित्तियों की संख्या बहुत कम है। वास्तव में उस क्षेत्र में दो द्वीपों, कोकोस-कीलिंग द्वीप और क्रिश्चियन द्वीप, के अतिरिक्त कोई भी ऐसा द्वीप अथवा उथला पठार नहीं है जहाँ कोरल अपनी भित्ति बना सकें।

गहरे सागर की जमावटें – हिंद महासागर के गहरे भागों की तली पर मुख्यतः तीन प्रकार की जमावटें पाई जाती हैं। ये जमावटें लाल क्ले तथा कैल्शियमी और डायएटमी निपंकों की हैं।

महासागर के पूर्वी क्षेत्र की तली पर द्वीपों और महाद्वीपों से दूर और विशेष रूप से 10° उत्तर और 40° दक्षिण अक्षांशों के बीच के क्षेत्र में, लाल क्ले की जमावटें काफी हैं। वहाँ तली के लगभग 25 प्रतिशत भाग में ये जमावटें उपस्थित हैं। पश्चिमी आस्ट्रेलिया के तटीय क्षेत्र में कई स्थानों पर लाल क्ले की जमावटें महाद्वीपीय उत्थान की सीमा तक फैली हुई हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि यह इलाका अर्द्धमरुस्थल है और उसमें ऐसी नदियाँ अनुपस्थित हैं जो वर्ष भर बहती हैं। उष्ण कटिबंध की ओर लाल क्ले रेडियोलारेन निपंक के साथ मिल जाती है।

हिंद महासागर की उष्ण कटिबंधीय पट्टी, 20° उत्तर से 40° दक्षिण अक्षांशों के बीच के क्षेत्र, की तली पर कैल्शियमी निपंक, विशेष रूप से *ग्लोबिजेरिना* किस्म के निपंक की जमावटें हैं। इन इलाकों में ये जमावटें तली के लगभग 54 प्रतिशत भाग पर फैली हुई हैं। ये जमावटें उन क्षेत्रों में अधिक

हैं जहाँ सागर की गहराई अधिक नहीं है, पानी कोष्ण है और जैव-उत्पादकता बहुत अधिक है।

हिंद महासागर के दक्षिणी भाग में, 50° दक्षिण अक्षांश के नीचे, तली के लगभग 20 प्रतिशत भाग पर सिलिकामय, डायएटमी, निपंक की जमावटें हैं।

भारत की दृष्टि से हिंद महासागर के सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हैं अरब सागर और बंगाल की खाड़ी। आम आदमी की दृष्टि से अंडमान सागर बंगाल की खाड़ी का ही एक हिस्सा है परंतु सागरवैज्ञानिकों के अनुसार उसके अनेक अभिलक्षण बंगाल की खाड़ी से एकदम भिन्न हैं। इसलिए वे उसे एक स्वतंत्र सागर मानते हैं। वैसे वह भी हमारे देश के लिए महत्त्वपूर्ण है। अतएव इन तीनों सागरों का वर्णन कुछ विस्तार से करना बेहतर होगा।

अरब सागर

अरब सागर हिंद महासागर का उत्तर-पश्चिमी भाग है। इंटरनेशनल हाइड्रोग्राफिक ब्यूरो के अनुसार अरब सागर हिंद महासागर का वह भाग है जो दक्षिण-पश्चिम में रास हाफुन (सोमालिया) को अद्दू अटॉल से जोड़ने वाली और फिर मालद्वीप और लक्षद्वीप की पश्चिमी सीमाओं से होती हुई भारत के पश्चिमी तट पर स्थित सदाशिवगढ़ लाइट को जोड़ने वाली रेखा से घिरा हुआ है। उत्तर में वह पाकिस्तान, ईरान, तथा अरब प्रायःद्वीप से और पश्चिम में इथीओपिया से घिरा हुआ है।

सागरवैज्ञानिकों के अनुसार अरब सागर की दक्षिणी सीमा गोवा के निकट से आरंभ होकर, लक्षद्वीप के पश्चिमी तट तक होती हुई भूमध्यरेखा की ओर झुक जाती है और लगभग 5° दक्षिण अक्षांश तक अफ्रीका के पूर्वी तट पर स्थित मोम्बासा तक जाती है। यदि हम अदन और ओमान की खाड़ियों को छोड़ दें तब इसका क्षेत्रफल 74,56,000 वर्ग किमी. है। इसमें अरब बेसिन का 95 प्रतिशत भाग परंतु सोमाली बेसिन का केवल उत्तरी दो-तिहाई (सबसे गहरा) भाग ही शामिल है। लक्षद्वीप और श्रीलंका के बीच स्थित जलराशि के अभिलक्षण अरब सागर से भिन्न हैं। इसलिए उसे एक स्वतंत्र सागर,

लक्षद्वीप सागर, के रूप में मान्यता दी जाती है।

भूवैज्ञानिकों का मत है कि अरब सागर के निर्माण में भारतीय प्रायःद्वीप के उत्तर की ओर सरकने की क्रिया का विशेष योग है। उसका निर्माण मध्यजीवी-नूतनजीवी महाकल्पों में हुआ और उसके कुछ महत्त्वपूर्ण अंश अतिनूतन (प्लिओसिन) युग के दौरान विकसित हुए।

मध्य हिंद महासागरीय पर्वत शृंखला का उत्तर-पश्चिम प्रसार (कार्ल्सबर्ग पर्वत) अरब सागर को दो मुख्य बेसिनों, उत्तर-पूर्व में स्थित अरब बेसिन और दक्षिण-पश्चिम में स्थित सोमाली बेसिन में विभक्त करता है। इन दोनों बेसिनों की सीमाओं पर दो जलमग्न पठार हैं। इन पठारों पर अरब सागर

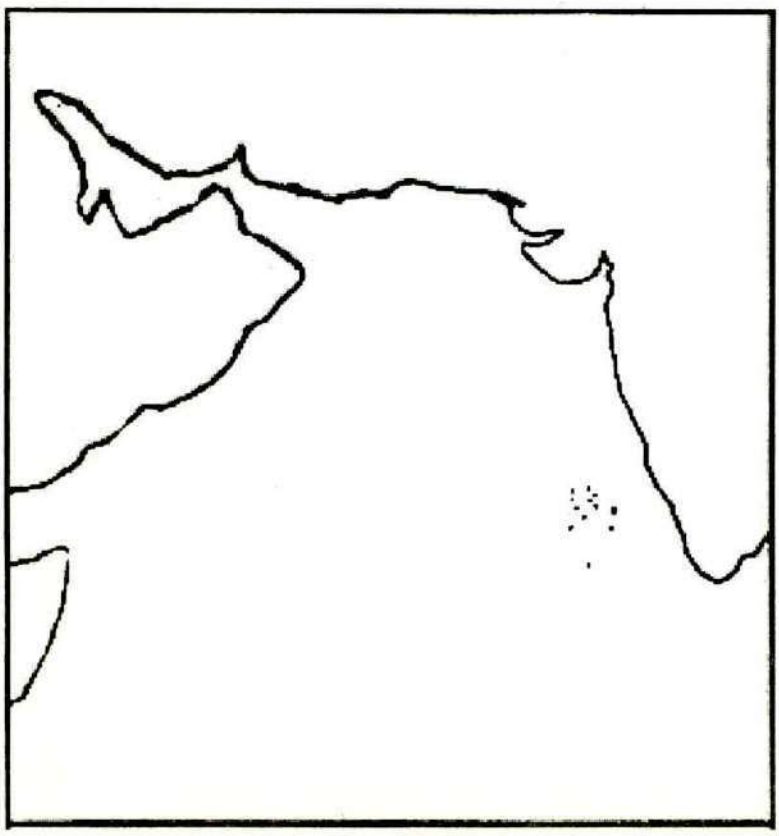

अरब सागर

की गहराई लगभग 1800 मीटर है; कार्ल्सबर्ग पहाड़ी पर 1800 से लेकर 3600 मीटर तक और मध्य महासागरीय पर्वत के मध्य में स्थित रिफ्ट घाटी में 3600 मीटर से भी अधिक।

अरब सागर के महाद्वीपीय शेल्फ पर आमतौर से कीचड़ की जमावटें हैं परंतु शेल्फ की बाहरी सीमा की तली पर रेत है। वैसे अरब सागर के लगभग 2700 मीटर तक गहरे भागों की तली पर स्थलजात जमावटें हैं। उससे गहरी तली पर कैल्शियमयुक्त निपंक की परंतु 4000 मीटर से अधिक गहराई पर लाल क्ले की जमावटें हैं। अरब सागर के उत्तरी भाग में जमावटों की मोटाई 2.5 किमी. है जबकि दक्षिणी भाग में वह घटकर केवल 0.5 किमी. ही रह जाती है।

जलराशि – अरब सागर में 10,000 वर्ग किमी. क्षेत्र पर होने वाली वर्षा का पानी मिलता है जबकि भारत और पाकिस्तान की नदियाँ - नर्मदा, ताप्ती, सिंधु आदि, 525 वर्ग किमी. क्षेत्र का पानी लाकर उसमें मिलाती हैं। यह सागर उस क्षेत्र में स्थित है जहां वर्षा बहुत कम होती है पर गर्मी बहुत पड़ती है। इसलिए इसकी सतह (125 मीटर की गहराई तक) के पानी का ताप और लवणता बहुत उच्च हैं।

अरब सागर में कई अन्य सागरों से भी पानी आता है। ईरान की खाड़ी और लाल सागर का 10° सै. ताप और लगभग 35.4‰ लवणता का पानी उसमें मिलता है। ईरान की खाड़ी का पानी पूरे अरब सागर में भूमध्यरेखा तक और बंगाल की खाड़ी के पश्चिमी भाग तक, 100 से 300 मीटर की गहराई पर, मिलता है और लाल सागर का पानी 400 से 900 मीटर तक की गहराई पर। परंतु लगभग 1500 मीटर से अधिक गहराई पर अंटार्कटिक सागर का ठंडा पानी (ताप 1.3 से 2.0° सै. और लवणता 34.7‰) मौजूद है।

अरब सागर के पानी का ताप ऋतुओं के अनुसार बदलता रहता है। मध्य अरब सागर में जनवरी-फरवरी में, सतह के पानी का ताप, सबसे कम 24-25° सै. हो जाता है। जून में वह बढ़कर 28° सै. के करीब हो जाता है। विचित्र बात यह है कि नवंबर में भी ताप लगभग इतना ही अधिक हो जाता है। लगभग 100 मीटर गहराई पर 18 से 23° उत्तर अक्षांश तक और 59 से 64° तक

पूर्व देशांतरों से घिरे क्षेत्र में ताप फरवरी में 22° सै. और सितंबर में 20° सै. तक हो जाता है।

इस सागर के पानी में घुली ऑक्सीजन की मात्रा लगभग 70 मीटर की गहराई पर सबसे अधिक, 4.74 मिलि. प्रति लिटर है। उसके नीचे उसकी मात्रा कम होती जाती है; 100 मीटर की गहराई पर वह 1.1 और 800 मीटर गहराई पर 0.45 मिलि. प्रति लिटर रह जाती है। परंतु उससे अधिक गहराई पर उसकी मात्रा फिर बढ़ जाती है। लगभग 2100 मीटर गहराई पर वह 3.0 और 5000 मीटर की गहराई पर वह 4.27 मिलि. प्रति लिटर हो जाती है।

पानी के पी-एच. का वितरण भी ऑक्सीजन की भांति ही है परंतु पानी का न्यूनतम पी-एच. (7.59) लगभग 1600 मीटर गहराई पर है। उससे अधिक गहराई पर पी-एच बढ़ जाता है और तली के पानी का पी-एच. 7.67 पाया गया है। ऐसा कदाचित् तली पर स्थित कार्बोनेटों के घुलने के फलस्वरूप है।

जहां तक सिलिकन डाइऑक्साइड और फॉस्फेट-फॉस्फोरस के वितरण के प्रश्न हैं वे सतही पानी में, थर्मोक्लाइन के ऊपर, सबसे कम हैं परंतु 2100 मीटर से अधिक गहराई पर उनकी मात्राएँ बढ़ने लगती हैं। सतही पानी में जीव-जंतुओं द्वारा उनका भक्षण करते रहने से उनकी मात्रा अपेक्षाकृत कम बनी रहती है।

बंगाल की खाड़ी

बंगाल की खाड़ी हिंद महासागर का वह भाग है जिसमें मिलने वाले मीठे पानी की मात्रा अधिक होती है और वाष्पन की मात्रा कम।

मोटे तौर पर बंगाल के दक्षिण में 0° से 25° उत्तर अक्षांश तक और 80°-100° पूर्व देशांतरों के बीच स्थित जलराशि बंगाल की खाड़ी कहलाती है। इसका क्षेत्रफल 22,00,000 वर्ग किमी. है।

बंगाल की खाड़ी के उत्तरी भाग और आंध्र के तटीय क्षेत्र में महाद्वीपीय शेल्फ लगभग 160 किमी. चौड़ा है पर दक्षिण की ओर वह संकरा होता जाता है। दक्षिण में इसकी चौड़ाई 40 किमी. ही रह जाती है।

जलराशि – बंगाल की खाड़ी की उल्टी फनल जैसी आकृति और

उसका उथला होता हुआ तल, ऊंचे ज्वार, शैस और विभिन्न ऊंचाइयों की आंतरिक लहरें पैदा करता है। ज्वार के दौरान भारी मात्रा में पानी ऊपर उठता है। साथ ही थोड़ी अवधि की आंतरिक लहरें भी बहुत प्रबल हो जाती हैं क्योंकि वे उथले, कम घनत्व वाले, सतह के पानी और उसके नीचे स्थित अधिक घनत्व वाले पानी के बीच उठती हैं। वे 6 से 9 मीटर तक ऊंची हो जाती हैं।

इस खाड़ी में अनेक बड़ी नदियाँ – कावेरी, कृष्णा, गोदावरी, महानदी, गंगा, ब्रह्मपुत्र आदि मिलती हैं। ये इसमें बहुत बड़ी मात्रा में ताजा पानी मिलाती हैं। साथ ही उत्तर-पूर्वी भारत में होने वाली भारी वर्षा का भी अधिकांश पानी इस खाड़ी में आ मिलता है। इसलिए शरद ऋतु में 10° उत्तर अक्षांश के निकट के क्षेत्र में इस खाड़ी के पानी की लवणता 33-34 से घटकर मात्र 18 भाग प्रति एक हजार भाग ही रह जाती है, पर लवणता में यह कमी तटीय सागर में ही होती है। सूखे मौसम में तली का अधिक लवणता वाला पानी सतह पर आने लगता है। वैसे संपूर्ण बंगाल की खाड़ी की लवणता अन्य उष्ण कटिबंधीय सागरों की तुलना में कम है।

पानी की लवणता में घट-बढ़ उसमें उपस्थित रासायनिक पोषक पदार्थों की मात्राओं को भी प्रभावित करती है। महाद्वीपीय शेल्फ में होने वाले उत्स्रवण के दौरान पानी में फॉस्फेटों की मात्रा 6 से बढ़कर 10 और सिलिकेटों की मात्रा 8 से बढ़कर 20 म्यू ग्राम एटम प्रति लिटर हो जाती है। उत्स्रवण के दौरान, तली के (कम ऑक्सीजन युक्त) पानी के सतह पर आ जाने से ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। ठंड की ऋतु के अंत में म्यांमार और अंडमान के तटों पर तथा हुगली डेल्टा में मछलियों की पैदावार अधिक होती है।

गंगा खड्ड – इस खाड़ी में अनेक बड़े-बड़े खड्ड हैं। पहला खड्ड सुमात्रा के उत्तरी भाग से शुरू होकर निकोबार द्वीप समूह तक जाता है। इसकी अधिकतम गहराई 4500 मीटर है।

दूसरा खड्ड बहुत प्रसिद्ध है। उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में फैला यह खड्ड गंगा के डेल्टा के निकट से आरंभ होकर महाद्वीपीय शेल्फ

तक चला गया है। इसकी चौड़ाई लगभग 13 किमी. और गहराई 1850 मीटर है। यद्यपि इसकी दीवारें बहुत खड़ी हैं परंतु इसकी तली काफी सपाट है। भूवैज्ञानिक इसे बड़े विचित्र नाम, 'स्वाच ऑफ नो ग्राउंड', नाम से पुकारते हैं।

समझा जाता है कि इस तथा बंगाल की खाड़ी के कुछ अन्य खड्डों का निर्माण समय-समय पर, कुछ सौ सालों के अंतराल पर, उस विशाल अवसाद के, जिसे नदियां लाकर अपने डेल्टाओं के निकट सागर में जमा करती रहती हैं, सागर की तली पर फिसलने से हुआ है। यह पदार्थ सागर की तली पर गहरी नाली बनाते हुए, बहुत दूर तक, चला जाता है। इस खड्ड की भी उसी प्रकार की 'शाखाएँ' हैं जैसी थलीय नदियों की सहायक नदियाँ होती हैं।

गंगा खड्ड की गहराई, चौड़ाई और लंबाई गंगा नदी की अपेक्षा बहुत

बंगाल की खाडी

अधिक है। इसलिए उसमें पानी की बहुत बड़ी मात्रा समा जाती है। कुछ लोग इस खड्ड में बहने वाली आविल धारा (टरबडिटी करंट) को 'जल में डूबी गंगा' भी कहते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान आंध्र प्रदेश के तट के निकट तीन अन्य खड्डों — आंध्र, महादेवन और कृष्णा खड्डों — का पता चला था। इनका आकार 'वी' जैसा है।

श्रीलंका के पूर्वी तट के निकट भी एक खड्ड, त्रिंकोमाली खड्ड, स्थित है।

अंडमान सागर

अंडमान सागर 7,98,000 वर्ग किमी. की एक बेसिन में स्थित है। वह बेसिन उत्तर में इरावदी के डेल्टे से आरंभ होकर 1200 किमी. दूर सुमात्रा के उत्तरी भाग तक तथा मलक्का के मुहाने के साथ-साथ फैली हुई है। पूर्व-पश्चिम दिशा में मलय प्रायःद्वीप से लेकर अंडमान-निकोबार तक उसका विस्तार, लगभग 650 किमी. है।

अंडमान सागर अनेक चैनलों द्वारा बंगाल की खाड़ी से जुड़ा हुआ है। इसलिए इनके पानी आपस में मिलते रहते हैं।

अंडमान सागर ही भारतीय क्षेत्र का वह प्रथम सागर है जिसमें आधुनिक सागरवैज्ञानिक अध्ययन आरंभ हुए थे। आज से लगभग 132 वर्ष पहले, सन् 1871 में, भारतीय संग्रहालय के डॉ. जे. वुड मैसन ने अपने सर्वेक्षण जहाज, **अनडांटेड**, पर यात्रा करते हुए पहली बार अंडमान तट के निकट के गहरे सागर में जीवशास्त्रीय अध्ययन किए थे (इनके बारे में आधुनिक भारत में सागरविज्ञान' अध्याय में अधिक विस्तार से पढ़िए)।

भूवैज्ञानिकों के अनुसार अंडमान सागर एक अलग भूआकृतिक संरचना के रूप में, क्रिटेशियस कल्प में (लगभग 6 करोड़ वर्ष पूर्व), अंडमान-निकोबार पर्वत के आरंभिक उत्थान के दौरान, बना था। अंडमान-निकोबार द्वीपों पर पाई जाने वाली चट्टानों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि वह पर्वत सागर में से पहली बार, अब से लगभग 2 करोड़ वर्ष पहले, निकला था तथा उसके बाद अत्यंतनूतन युग में भी कम से कम एक बार, सागर में

फिर जलमग्न होकर पुनः बाहर निकला था।

अंडमान सागर में दो बड़ी नदियाँ, इरावदी और सालवीन, गिरती हैं। ये दोनों अपने साथ बहुत बड़ी मात्रा में ताजा पानी और अवसाद लाती हैं। समझा जाता है कि अकेली इरावदी नदी प्रति वर्ष लगभग 25 करोड़ टन अवसाद लाती है। इसके फलस्वरूप इरावदी का डेल्टा हर एक सौ वर्ष में 5 किमी. की दर से और मर्तबान की खाड़ी (जिसमें दोनों नदियाँ गिरती हैं), 40 मीटर गहराई पर, 55 किमी. प्रति सौ वर्ष की दर से, सागर की ओर बढ़ती जा रही है।

मर्तबान की खाड़ी की तली में भी एक लंबा खड्ड है जिसकी अनेक शाखाओं-उपशाखाओं ने उसे वृक्ष जैसी आकृति प्रदान कर दी है। इस खड्ड में से भी इरावदी और सालवीन नदियों द्वारा लाए जाने वाला अवसाद समय-समय पर सरक कर गहरे सागर में गिरता रहता है। इस खड्ड में भी आविल धारा बहती है। वैसे अंडमान सागर में इस प्रकार के अन्य खड्ड भी स्थित हैं।

अंडमान सागर पूर्णतः उष्ण कटिबंध में स्थित है। इसलिए इसके पानी का ताप, ग्रीष्म ऋतु में 30° सै. तक पहुंच जाता है। सर्दी की ऋतु में वह घटकर लगभग 27° सै. रह जाता है। गहराई के साथ पानी का ताप गिरता जाता है। लगभग 2000 मीटर की गहराई पर वह 5° सै. जैसा कम हो जाता है।

इस सागर में ताजे पानी के बड़ी मात्रा में मिलते रहने से इसकी लवणता बहुत कम हो जाती है। सागर के उत्तरी भाग के सतह के पानी की लवणता, जून से नवंबर तक, लगभग 20 भाग प्रति एक हजार भाग जैसी कम हो जाती है परंतु उस समय सागर के दक्षिणी भाग के पानी की लवणता 33.5 भाग प्रति एक हजार भाग जैसी उच्च बनी रहती है।

ठंड के सूखे मौसम के दौरान पानी की लवणता बढ़ जाती है। वह लगभग 33.5‰ तक हो जाती है। सागर के मध्य भाग में गहरे पानी (लगभग 1500 मीटर गहरे) की लवणता 35 भाग प्रति एक हजार भाग तक पहुंच जाती है।

लाल सागर

हिंद महासागर का एक क्षुद्र अंग होने के बावजूद अफ्रीका और एशिया को विभक्त करने वाला और एक लंबी पट्टी की आकृति वाला, लाल सागर, अनेक दृष्टि से एक अत्यंत विलक्षण सागर है।

लाल सागर 12° 31' से 30° उत्तर अक्षांश तक फैला हुआ है जिसका क्षेत्रफल 4,50,000 वर्ग किमी. और आयतन 2,51,000 घन किमी. है। वह एक उथला सागर है। उसकी औसत गहराई 491 मीटर और अधिकतम गहराई 2350 मीटर है। यह मरुस्थली क्षेत्र में स्थित है और उस पर, कहीं भी, वर्ष भर में 18 सेमी. से अधिक वर्षा नहीं होती। इसलिए उसमें उष्ण कटिबंधीय सागरों में पाए जाने वाले जीव-जंतु पाए जाते हैं। इसके दक्षिणी भाग में तेजी से बढ़ने वाली कोरल भित्तियाँ हैं, मछलियों की बहुतायत है और कछुए, ड्यूगांग तथा यहाँ तक कि व्हेल भी मिलती हैं।

आमतौर से सागर का पानी नीला अथवा नीला-हरा होता है और बहुत गर्म प्रदेश में स्थित होने के कारण लाल सागर के पानी का रंग गहरा नीला होना चाहिए परंतु उसका रंग हल्का लाल है। इसका कारण है कि उसके पानी में *ट्राइकोडेस्मियम एरीथ्रीथेएम* प्रजाति के, लाल रंग के, शैवाल की उपस्थिति। यह शैवाल बहुत सूक्ष्म होता है और लाल सागर के पानी में उसकी मात्रा दस लाख जीव प्रति लिटर से भी अधिक है।

लाल सागर तली के प्रसार का एक ज्वलंत और अत्यंत स्पष्ट उदाहरण है। भूवैज्ञानिकों का अनुमान है कि एक समय, आज से लगभग 3 करोड़ वर्ष पहले, लाल सागर का अस्तित्व था ही नहीं। फिर एशिया और अफ्रीका महाद्वीप एक-दूसरे से दूर सरकने लगे। उनके सरकने के फलस्वरूप उत्पन्न खाई में हिंद महासागर का जल भरने लगा और लाल सागर का जन्म हुआ। एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों के लगभग 2 सेमी. प्रति वर्ष की दर से एक-दूसरे से दूर सरकते जाने की क्रिया के निरंतर जारी रहने और तली के निरंतर फैलते जाने से लाल सागर धीरे-धीरे चौड़ा होता जा रहा है।

साउदी अरब प्रायःद्वीप के सामने स्थित अफ्रीकी तट का अध्ययन करने

से भूवैज्ञानिकों को एक ऐसा त्रिभुजाकार क्षेत्र भी मिल गया जो आज थल है पर कभी सागर का अंग था। 'एफार त्रिभुज' (एफार ट्रेंगल) नाम से प्रसिद्ध यह थलीय क्षेत्र वास्तव में सागर की ऐसी तली है जो धीरे-धीरे ऊपर उठ कर थल का अंश बन गई है।

वर्ष 1967 और 1969 के बीच इतालवी, फ्रेंच और अमेरिकी भूवैज्ञानिकों के दल ने जगतप्रसिद्ध ज्वालामुखी-विशेषज्ञ हारूं ताजीएफ (Haroun Tazieff) के नेतृत्व में 'एफार त्रिभुज' का गहन अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला था कि यह क्षेत्र वास्तव में कभी समुद्री तली था जो अस्थायी तौर पर सागर सतह से ऊपर उठ गया है। इसके गर्भ में ऐसे पर्वत हैं जिनके शिखर सपाट हैं जो एकदम गाईऑट जैसे प्रतीत होते हैं। इनमें से एक माऊंट आसमारा (ऊंचाई लगभग 400 मीटर) स्पष्ट रूप से ज्वालामुखी के बार-बार विस्फोटित होने और इन विस्फोटों के मलबों के सागर के जल से प्रतिक्रिया करने के फलस्वरूप बने पदार्थों के जमा होने से बना है।

गाईऑट ऐसे कोरल द्वीप हैं जो सागर तल पर स्थित परंतु धीरे-धीरे डूबते हुए, ज्वालामुखियों के मुख पर स्थित, होते हैं। ऐसे ज्वालामुखियों के डूबने और उनके मुख पर कोरलों द्वारा द्वीपों के निर्माण की गतियाँ ऐसी होती हैं कि ज्वालामुखी सदैव सागर सतह से थोड़ा-सा नीचा ही रहा आता है।

सूर्य का प्रकाश सागर में केवल कुछ मीटर की गहराई तक ही पहुंच पाता है। इसलिए जैसे-जैसे हम गहराई में जाते हैं पानी का ताप कम होता जाता है। पर इस सिलसिले में लाल सागर अपवाद पाया गया है। सबसे पहले सन् 1948 में स्वीडन के अनुसंधान पोत **अल्बाट्रास** ने इसकी तली के पानी का ताप 24.5° सै. पाया था जबकि उसे 10° सै. से भी नीचा होना चाहिए था। उसके बाद, विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान, सागरवैज्ञानिकों के लिए लाल सागर का अध्ययन करना एक प्रिय विषय हो गया। इस अभियान के दौरान वर्ष 1960 में, रूसी अनुसंधान पोत **विताआज़** ने अपने अध्ययनों के दौरान यह घोषणा की कि लाल सागर की तली के पानी का ताप ही नहीं उसकी लवणता भी असामान्य रूप से उच्च है। जब रूसी पोत अपने अध्ययन कर रहे थे तब ब्रिटिश और अमेरिकी जलयान पीछे कैसे

रहते? इसलिए 1960 के दशक के मध्य में, पहले ब्रिटिश पोत, **डिस्कवरी**, ने और बाद में अमेरिका के वुड्स होल इंस्टीट्यूट ऑफ ओशनोग्राफी के पोत **अटलांटिस-द्वितीय** तथा अन्य अमेरिकी पोतों यथा **शैकलटन, चैन, वाल्दीविआ** ने लाल सागर की तली के अध्ययन आरंभ कर दिए। लाल सागर में भिन्न-भिन्न स्थलों पर परीक्षण करने से **डिस्कवरी** को तली के पानी का ताप 44° सै. और लवणता 256 भाग प्रति एक हजार भाग मिली (सामान्यतः इतने गहराई पर सागर के पानी की लवणता 35 भाग प्रति एक हजार भाग होती है)। **अटलांटिस** के वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों में ताप को 56.5° सै. जैसा उच्च पाया। उन्हें लाल सागर के एक क्षेत्र में तली के पानी का ताप 62.5° सै. जैसा ऊंचा भी मिला। साथ ही उस पानी में अनेक धातुओं, मुख्य रूप से लोहा, मैंग्नीज़, जस्त और तांबे, के ऑक्साइड और सल्फाइड भी काफी मात्रा में मौजूद पाए गए।

बाद में, वर्ष 1966 में अनुसंधान पोत **चैन** ने, पानी के जो नमूने लिए उनका ताप 104° सै. जैसा अत्यधिक उच्च पाया गया। दूसरे शब्दों में, लाल सागर की तली में 'उबलता हुआ' पानी मौजूद है (अगर उस पानी पर ऊपरी परतों का भारी दाब नहीं होता तब वह वास्तव में उबल रहा होता)।

लाल सागर की तली पर इतने गर्म पानी के पाए जाने से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि वहाँ विभंगों में से बड़ी मात्रा में भूतापीय ऊर्जा निकलती रहती है। इस ऊर्जा से पानी गर्म होकर अवसादी जमावटों में से धात्विक लवण और भूपर्पटी की ज्वालामुखी-चट्टानों में से भारी धातुओं को घोल लेता है। इसीलिए तली के अत्यंत खारी पानी में धातुओं की इतनी अधिक मात्रा मौजूद है। जब यह धातुमय पानी ठंडा होता है तब सीसे और जस्त के सल्फाइड और लोहे के कार्बोनेट मुक्त हो जाते हैं।

यद्यपि अधिकांश सागरवैज्ञानिक उक्त मत से सहमत हैं परंतु कुछ लोगों का यह मत भी है कि प्राचीन काल में शायद लाल सागर के स्थान पर खारी पानी की झील रही होगी।

---

5 – मानसून का जन्मदाता

प्रकृति की विलक्षण देन, मानसून, का जन्मदाता है हिंद महासागर। इसीलिए भूगोलवेत्ता इसे 'मानसून सागर' भी कहते हैं। 'मानसून' अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'मौसम'। परंतु आज मानसून का अभिप्राय "उन पवनों से है जो मौसम (ऋतु) बदलने के साथ अपने बहने की दिशा भी बदल देती हैं।" वैसे आम आदमी के अनुसार 'मानसून' का आशय है 'वर्षा', क्योंकि ये पवन, विशेष रूप से गर्मी की ऋतु में दक्षिण-पश्चिम से या दक्षिण से आने वाली मानसून पवन, अपने साथ बड़ी मात्रा में जलवाष्प भी लाती है जो अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर वर्षा के रूप में बरस जाती है। इसीलिए आम आदमी के लिए, विशेष रूप से किसान के लिए, मानसून 'वर्षा' का पर्याय बन गई है।

हमारे पूर्वजों को प्राचीन काल में ही पता चल गया था कि हमारे देश में अधिकांश वर्षा गर्मी की मानसून से होती है और मानसून पवन ऋतुओं के अनुसार अपने बहने की दिशा बदल देती हैं। वे मानसून पवनों के दिशा-परिवर्तन के गुण का लाभ अपनी समुद्री यात्राओं के दौरान उठाते भी थे। वैसे प्राचीन रोमवासी, अरब, फिनीशियन, पार्थियन, यूनानी आदि भी समुद्री मार्ग से भारत की यात्रा करते समय ऐसा ही करते थे।

मानसून विश्व के अनेक भागों में उत्पन्न होती हैं यथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया, उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया, पश्चिमी और पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्राजिल, परंतु दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया में ही वे सबसे प्रबल होती हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया में, विशेष रूप से, भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका और मलेशिया में होने वाली संपूर्ण वर्षा मानसून पवनों से ही होती हैं। वैसे चीन और जापान पर भी इन पवनों के प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ते हैं।

मानसून पवन की उत्पत्ति के लिए, मोटे तौर पर, वे ही कारक उत्तरदायी हैं जो जल समीर और थल समीर उत्पन्न करते हैं अर्थात् थल और जल (सागर) के गर्म होने के तरीकों में अंतर। परंतु मानसूनों की उत्पत्ति के लिए इन कारकों के पैमानों का अत्यधिक विशाल होना जरूरी है। उनकी उत्पत्ति में महाद्वीप तटीय थल का स्थान ले लेते हैं और महासागर तटीय सागर का।

यद्यपि मानसूनों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण थल और जल के गर्म होने की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएँ हैं, परंतु कुछ अन्य कारक भी मानसूनों की गतिविधियों को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख हैं : पृथ्वी का घूर्णन, पर्वतों का अवरोध, थल पर बहते समय घर्षण के फलस्वरूप पवनों की गति का मंद हो जाना आदि। इनके अतिरिक्त उच्च अक्षांशों में मानसून अन्य पवनों के साथ अंतःक्रियाएँ भी करती हैं। इसी प्रकार कम ऊंचाई पर बहने वाली मानसून की उच्च वायुमंडल की पवनों के साथ भी अंतःक्रियाएँ होती हैं। वैसे मानसूनों में निहित वाष्प के जल में बदलने की क्रिया के दौरान बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा भी मुक्त होती है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया की मानसून

दक्षिण-पूर्वी एशिया और उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया में मानसून पवनों के प्रबल होने का प्रमुख कारण है इस क्षेत्र में थल और सागर के वितरण का विशिष्ट पैटर्न। इस क्षेत्र के उत्तर में अफ्रीका-यूरोप-एशिया के विशाल भूखंड हैं जबकि दक्षिण में हिंद महासागर है जो अंटार्कटिक महाद्वीप तक निर्विघ्न फैला हुआ है। यह महासागर ही मानसूनों को वह जल वाष्प प्रदान करता है जो बाद में वर्षा के रूप में बरसती है।

गर्मी (उत्तरी गर्मी) की ऋतु आरंभ होते ही, दोनों गोलार्द्धों में उपोष्ण उच्च दाब क्षेत्र उत्तर की ओर सरकने लगता है। पृथ्वी की धुरी का झुकाव इस प्रकार परिवर्तित होने लगता है कि उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य के अधिक निकट आ जाता है। उस समय तापीय भूमध्यरेखा (अधिकतम सूर्यातप की पट्टी) कर्क रेखा के निकट सरक आती है। परिणामस्वरूप उत्तरी ग्रीष्म ऋतु में

एशिया के दक्षिणी क्षेत्र, विशेष रूप से भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र और पाकिस्तान से लेकर साऊदी अरब तक के क्षेत्र, बहुत अधिक गर्म हो जाते हैं। इससे वहाँ वायु का दाब 994 मिलीबार जैसा कम हो जाता है परंतु हिंद महासागर के दक्षिणी भाग के ऊपर वायु दाब 1025 मिलीबार जैसा उच्च रहा आता है।

गर्मी में वायुमंडल का ताप बढ़ने के साथ-साथ कम दाब वाला क्षेत्र गंगा के कछार से फैलकर, बंगाल की खाड़ी तक पहुंच जाता है। मौसमवैज्ञानिक इस कम दाब वाले क्षेत्र को 'मानसून द्रोणी' (मानसून ट्रफ) कहते हैं।

भारत में गर्मी की ऋतु आरंभ होने से पहले भूमध्यरेखा के आस-पास के क्षेत्र — 5° दक्षिण से 5° उत्तर अक्षांशों के बीच के क्षेत्र — में कुछ ऐसी घटनाएँ घटती हैं जो मानसूनों की उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण योग देती हैं। इस क्षेत्र में वायु का दाब काफी कम हो जाता है। मौसमवैज्ञानिक इस कम दाब वाले क्षेत्र को 'भूमध्यरैखिक दुहरी द्रोणी (इक्वीटोरियल डबल ट्रफ) कहते हैं। गर्मी की मानसून आरंभ होने से पहले 5° उत्तर अक्षांश के उत्तर में स्थित यह कम दाब वाला क्षेत्र उत्तर की ओर सरकने लगता है और अंत में मानसून द्रोणी में मिल जाता है।

उसी समय मालागासी द्वीप के निकट हिंद महासागर पर स्थित उच्च दाब वाले क्षेत्र से पवन भारत की ओर बहने लगती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में हिंद महासागर के ऊपर स्थित इस क्षेत्र में, जो इसे सर्वप्रथम खोजने वाले पोर्तगाली अन्वेषक के नाम पर 'मैस्कारनेज उच्च दाब क्षेत्र' (मैस्कारनेज हाई) कहलाता है, उस समय प्रतिचक्रवात की स्थिति होती है।

गर्मी की मानसून के आगमन के साथ ही भारत के ऊपर, वायुमंडल में दो अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भी घटती हैं। उत्तरी भारत के ऊपर पश्चिम से पूर्व की ओर बहने वाली पवन का संकरा प्रवाह — उपोष्ण पश्चिमी जेट (सबट्रॉपिकल वैस्टरली जेट) — एकाएक कमजोर पड़ने लगता है। साथ ही वह उत्तर की ओर सरकने भी लगता है। धीरे-धीरे वह हिमालय के उत्तर में पहुंच जाता है। इस प्रवाह में पवन की अधिकतम गति 300 मिलीबार (लगभग 9 किमी.) ऊंचाई पर होती है।

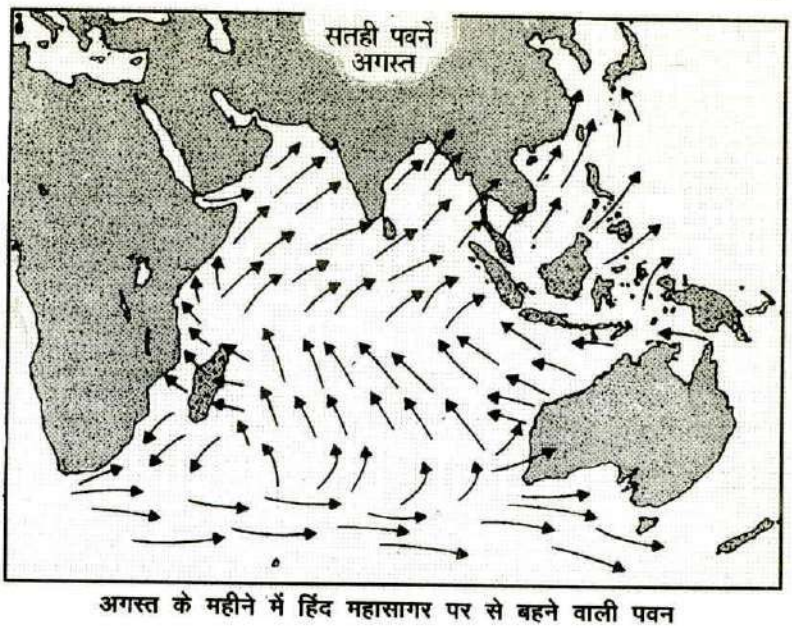

अगस्त के महीने में हिंद महासागर पर से बहने वाली पवन

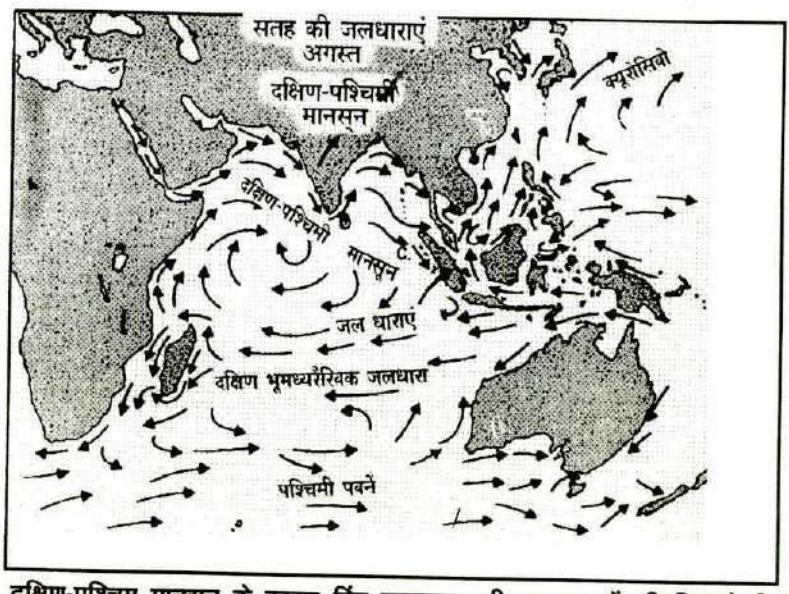

दक्षिण-पश्चिम मानसून के कारण हिंद महासागर की जलधाराओं की दिशाएं भी बदल जाती हैं

उसी समय दक्षिणी भारत के ऊपर एक जेट प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर बहना आरंभ हो जाता है। 'उष्ण कटिबंधीय पूर्वी जेट' (ट्रॉपिकल ईस्टरली जेट) नाम से प्रसिद्ध यह जेट कभी उत्तर की ओर सरक जाता है और कभी दक्षिण की ओर चला जाता है। इस जेट प्रवाह की सबसे अधिक गति 150 मिलीबार ऊंचाई पर होती है और इसका विस्तार अफ्रीका के पश्चिमी तट तक होता है।

गतिज ऊर्जा में परिवर्तन – अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान किए गए अध्ययनों तथा उसके बाद आयोजित विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय अभियानों, विशेष रूप से मोनैक्स (1979) के दौरान किए गए प्रयोगों से मानसूनों की उत्पत्ति, प्रसार, समाप्ति आदि के बारे में अनेक रहस्यों का उद्घाटन हुआ है। इन अध्ययनों से यह पता चला है कि मानसूनों के आगमन के एकदम पहले अरब सागर के ऊपर स्थित वायु की गतिज ऊर्जा में एकाएक और बहुत शीघ्रता से वृद्धि हो जाती है। इस वृद्धि के साथ कभी-कभी दक्षिण भारत के तट के निकट भ्रमिल बन जाता है। यद्यपि यह भ्रमिल हर वर्ष नहीं बनता परंतु वायु की गतिज ऊर्जा में वृद्धि हर वर्ष होती है।

गर्मी की मानसून का आगमन – अप्रैल-मई मास में दक्षिण-पूर्वी एशिया में कम दाब वाले क्षेत्र के स्थापित हो जाने के फलस्वरूप मैस्कारनेज उच्च क्षेत्र से पवन इस क्षेत्र की ओर बहने लगती है। वास्तव में यह दक्षिण-पूर्व की व्यापारी पवन है जो अंतःउष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (इंटरट्रॉपिकल कंनवरजन ज़ोन) की ओर बहतो है। उत्तरी गर्मी में इस क्षेत्र के कर्क रेखा के निकट सरक आने से यह पवन भूमध्यरेखा तक ही सीमित न रहकर, उसको पार करके, कर्क रेखा की ओर बढ़ती चली जाती है। कम दाब वाले क्षेत्र की स्थिति और कारिऑलिस बल इसे पूर्व की ओर मोड़ देता है। फलस्वरूप यह अरब सागर को पार करके भारत के दक्षिण-पश्चिमी तट पर मानसून के रूप में आ पहुंचती है। यह सागर पर से आती हैं। इसलिए अपने साथ बड़ी मात्रा में जल वाष्प भी लाती है और अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने पर वर्षा करती हैं।

आमतौर पर गर्मी की मानसून श्रीलंका, अंडमान द्वीपसमूह और म्यांमार के दक्षिणी भाग में मई के तीसरे सप्ताह में ही पहुंच जाती हैं। उस समय मानसून की प्रगति अरब सागर की तुलना में बंगाल की खाड़ी में अधिक तेजी से होती है। मई के तीसरे सप्ताह तक बंगाल की खाड़ी की मानसून 20° उत्तर अक्षांश तक पहुंच जाती है जबकि अरब सागर की मानसून उस समय तक केरल भी नहीं पहुंच पाती।

मानसून पवन केवल दक्षिण-पश्चिम दिशा से ही भारत में प्रवेश नहीं करती वरन् बंगाल की खाड़ी पर से आने वाली मानसून दक्षिण दिशा से आती है और गंगा-ब्रह्मपुत्र के डेल्टा और बांग्ला देश से भारत की सीमा में प्रवेश करती है। वह बहुत तेजी से आगे बढ़ती है और जून के प्रथम सप्ताह में ही कोलकाता शहर पर से गुजरती हुई असम में जा पहुंचती है। यहाँ से वह उत्तर की ओर बढ़ना चाहती है पर हिमालय पर्वत श्रृंखलाएँ इसका मार्ग रोक देती हैं। अतएव इसे अपना रुख पश्चिम की ओर करना पड़ता है। पर ऐसा करते समय वह भारत के उत्तर-पूर्वी इलाकों में भारी वर्षा कर जाती है। अब वह गंगा के कछार पर से, गंगा के बहाव की उल्टी दिशा में — पश्चिम की ओर — चल पड़ती है। बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश पर वर्षा करती हुई जुलाई के मध्य तक दिल्ली जा पहुंचती है। पर इसी बीच अरब सागर पर से आने वाली मानसून पवन भी इससे मिल जाती है। इसीलिए उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग पर दोनों मानसूनों से वर्षा होती है।

जुलाई के मध्य तक दोनों, (अरब सागर की और बंगाल की खाड़ी की,) मानसून क्षीण पड़ने लगती हैं। सितंबर के मध्य तक अपने बचे-खुचे जल वाष्प भंडार को भी समाप्त कर वे 'लौटने' की तैयारी करने लगती हैं। समझा जाता है कि गर्मी की मानसून पवन का कार्यकाल पहली जून से लेकर मध्य सितंबर तक, मात्र लगभग 100 दिनों का, होता है। अक्तूबर के अंत तक वे पंजाब, राजस्थान तथा मध्य भारत से भी वापस हो जाती हैं।

अक्तूबर के मध्य से शीतकाल की मानसून पवन का कार्यकाल आरंभ हो जाता है। वह थल पर से आती है। इसलिए उसमें जल वाष्प नहीं होती।

पर इसे जब जल (सागर) पर से गुजरने का अवसर मिल जाता है, तब वह भी जल वाष्प ले लेती हैं और उपयुक्त अवसर पाकर वर्षा करती है। पर ठंड की मानसून इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी गर्मी की मानसून।

देश में अधिकांश, लगभग 75 प्रतिशत, वर्षा गर्मी की मानसून से, जून से सितंबर के मध्य तक की अवधि में, होती है। इसीलिए यह अवधि 'वर्षा ऋतु' कहलाती है। इस दौरान देश के मैदानी भागों में औसतन 925 मिमी. पानी बरस जाता है जबकि वर्ष के बाकी आठ महीनों में औसतन 145 मिमी. पानी ही बरसता है।

भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में वर्षा बंगाल की खाड़ी पर से आने वाली मानसून पवन से होती है। उस क्षेत्र में हिमालय पर्वत तथा खासी, लुशई, जंतिया, आदि पर्वतों की स्थिति ऐसी है कि मानसून पवन वहां घिर जाती है। जब तक वह उस घिराव से निकलने में सफल होती है और अपनी दिशा उत्तर से बदलकर पश्चिम की ओर कर पाती है तब तक उसकी जल वाष्प की काफी मात्रा वर्षा के रूप में बरस चुकी होती है।

गर्मी की मानसून दक्षिणी राज्यों — कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल राज्यों — में भी वर्षा करती हैं परंतु वहां अधिक वर्षा ठंड की मानसून से ही होती है। तमिलनाडु के अधिकांश भागों में गर्मी की मानसून से केवल 48 प्रतिशत वर्षा ही होती है बाकी 52 प्रतिशत ठंड की मानसून से, नवंबर-दिसंबर महीनों में, होती है।

इस संबंध में सर्वाधिक सनसनीखेज तथ्य है चेरापूंजी में होने वाली वर्षा। चेरापूंजी (25°15' उत्तर और 91°44' पूर्व) मेघालय राज्य में स्थित एक छोटा-सा शहर है। यहां देश में सबसे अधिक वर्षा — औसतन 1087 सेमी. प्रतिवर्ष — होती है। अधिकांश वर्षा जून, जुलाई और अगस्त में होती है। दिसंबर-जनवरी महीनों में वहां इतना कम पानी बरसता है कि नदी-नाले भी सूखने लगते हैं।

कुछ लोगों का यह भी मत है कि विश्व में सबसे अधिक वर्षा प्राप्त करने का श्रेय चेरापूंजी के स्थान पर, उसके निकट स्थित मावसीनारम को मिलना

चाहिए। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार मावसीनारम (25° 18' उत्तर, 91° 35' पूर्व) की औसत वार्षिक वर्षा 1141 सेमी. है जो निश्चय ही चेरापूंजी से अधिक है।

इस संबंध में एक विचित्र तथ्य यह है कि चेरापूंजी में अधिकांश वर्षा दिन में, सुबह के समय ही, होती है। समझा जाता है कि इसका मुख्य कारण दो भिन्न-भिन्न वायु राशियों का एक साथ आ जाना है। वर्षा ऋतु में मानसून ब्रह्मपुत्र घाटी में, आमतौर से दो अलग-अलग दिशाओं से, पूर्व (या उत्तर-पूर्व) और दक्षिण से, आती हैं। ये दोनों पवन खासी पर्वत के निकट आकर आपस में मिल जाती हैं। पवनों का यह मिश्रण रात के समय घाटी में घिरा रहता है पर सुबह होते ही वह पर्वत पर ऊपर की ओर चढ़ने लगता है। इससे अक्सर सुबह के समय भारी वर्षा होती है।

यद्यपि भारत के अनेक क्षेत्रों में हर वर्ष समान मात्रा में वर्षा नहीं होती — किसी वर्ष बहुत अधिक वर्षा हो जाती है तो किसी वर्ष बहुत कम — परंतु कुछ क्षेत्रों में वर्षा की यह घट-बढ़ 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होती। इस बारे में विचित्र तथ्य यह है देश के उत्तर-पूर्वी भागों में जहाँ सामान्यतः काफी अधिक वर्षा होती है, यह घट-बढ़ बहुत कम होती है। इसके विपरीत कम वर्षा पाने वाले भाग यथा देश के उत्तर-पश्चिमी भाग, राजस्थान, तमिलनाडु आमतौर से वर्षा की घट-बढ़ से त्रस्त रहते हैं।

अवदाब (डिप्रैशन) — वर्षा ऋतु में, विशेष रूप से जुलाई और अगस्त के महीनों में, बंगाल की खाड़ी में औसतन दो-तीन अवदाब पैदा हो जाते हैं। इन महिनों में इन अवदाबों से भी वर्षा होती है। इनका विस्तार लगभग 500 किमी. होता है।

इन अवदाबों में से अधिकांश पूर्व से आने वाले विक्षोभों द्वारा सक्रियत होते हैं। पर कुछ लोगों का मत है कि बंगाल की खाड़ी में उस समय अवदाब पैदा होते हैं जब पवन का बहाव और ताप वायुमंडल में अस्थिरता उत्पन्न कर देते हैं। अवदाब "वायुमंडल की अस्थिरता की अभिव्यक्ति" होते हैं और उष्ण कटिबंधों के वायुमंडल में अनेक प्रकार की अस्थिरता पैदा होती ही रहती

है।

प्रयोगों में पाया गया है कि वायुमंडल में प्रति 100 मीटर ऊंचाई पर 1° सै. से अधिक की दर से ताप गिरने पर वायुमंडल, विक्षोभों की उपस्थिति में, 'अस्थिर' हो जाता है। यह ताप-ह्रास दर बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। तड़ित झंझा, टोरनेडो और चक्रवात आदि उस समय उत्पन्न होते हैं जब ताप-ह्रास दर 1° सै. प्रति 100 मीटर से अधिक हो जाती है।

अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान किए गए अध्ययनों में यह पाया गया कि पश्चिमी भारत में विशेष रूप से महाराष्ट्र के उत्तरी भाग और सौराष्ट्र-कच्छ, में होने वाली भारी वर्षा का संबंध मध्य वायुमंडल तक सीमित चक्रवातीय भ्रमिलों से है। ये वृत्ताकार भ्रमिलों के रूप में, धरती की सतह से 3 से 6 किमी. की ऊंचाई पर, प्रगट होते हैं। वैसे इनकी सबसे अधिक संख्या 4 किमी. ऊंचाई पर होती है। क्षैतिज रूप से इनका विस्तार लगभग 300 किमी. होता है। इन भ्रमिलों के बारे में विचित्र बात यह है कि ये धरती से दिखाई नहीं देते।

बंगाल की खाड़ी में पैदा होने वाले अवदाबों के विपरीत ये भ्रमिल आगे नहीं बढ़ते — कई दिनों तक एक ही स्थान पर स्थित रहे आते हैं। ये भ्रमिल हमारे पश्चिमी तट के उत्तरी भाग पर भारी वर्षा करते हैं। इनके परिणामस्वरूप 24 घंटों में 20 सेमी. तक पानी बरस जाना कोई अनोखी बात नहीं होती।

ठंड की मानसून

ठंड (उत्तरी गोलार्द्ध की शीत ऋतु) में सूर्य की किरणें मकर रेखा के आसपास के क्षेत्र में सीधी पड़ती हैं। इसलिए उस समय अंतःउष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र दक्षिणी गोलार्द्ध में, मकर रेखा के पास, सरक जाता है। इसके प्रभाव वायुमंडल के ताप और दाब पर भी पड़ते हैं। वास्तव में ये प्रभाव सितंबर माह में ही प्रकट होने लगते हैं। उस समय आस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग और इंडोनेशिया के दक्षिणी भाग काफी गर्म हो जाते हैं। इससे वहां वायु दाब कम, 1007 मिलीबार जैसा कम, हो जाता है। पर साइबेरिया और मध्य एशिया

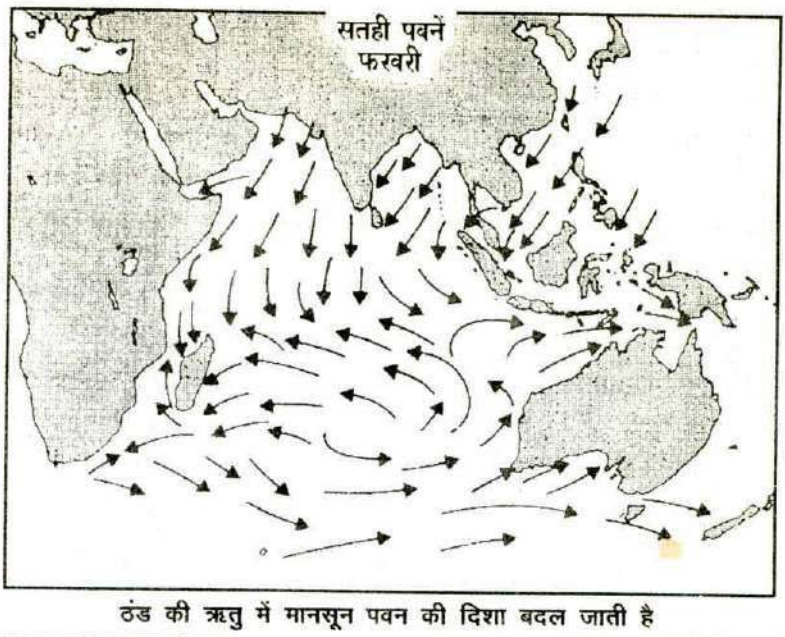

ठंड की ऋतु में मानसून पवन की दिशा बदल जाती है

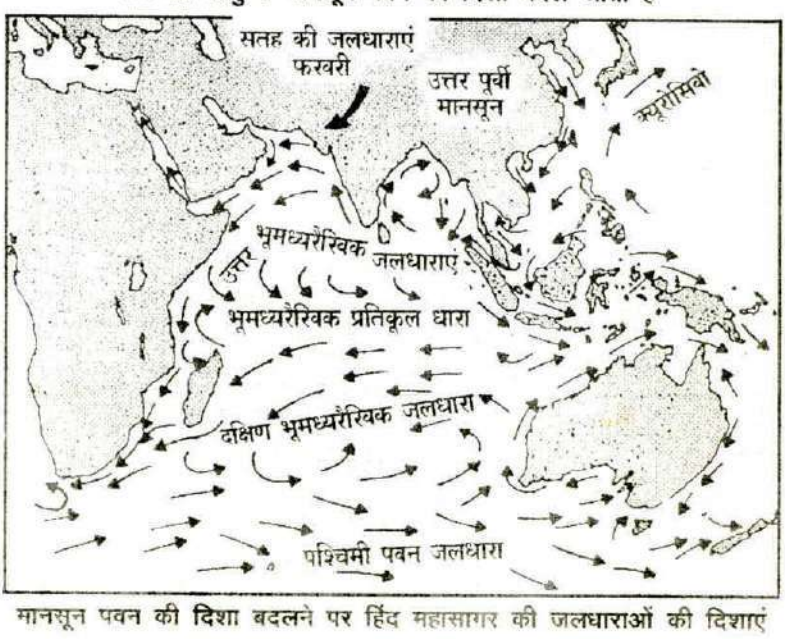

मानसून पवन की दिशा बदलने पर हिंद महासागर की जलधाराओं की दिशाएं भी बदल जाती हैं

में वायु ताप गिरने लगता है और दाब बढ़ने लगता है। बेकल झील (साइबेरिया) के निकट के क्षेत्र में दिसंबर-जनवरी में वायु दाब 1035 मिलीबार, जैसा ऊंचा हो जाता है। इससे वायु साइबेरियाई उच्च दाब वाले क्षेत्र से दक्षिण की ओर बहने लगती है। यह ही 'ठंड की मानसून' कहलाती है। भारत में यह आमतौर से यह उत्तर-पूर्व दिशा से आती है। इसलिए 'उत्तर-पूर्व की मानसून' भी कहलाती है।

यह थल पर से जल (सागर) की ओर बहती है। इसलिए इसमें जल वाष्प की बहुत कम मात्रा मौजूद होती है पर जब इसे सागर पर से बहने का अवसर मिल जाता है तब यह भी जल वाष्प भंडारित कर लेती है और अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हो जाने पर वर्षा कर देती है। तमिलनाडु तथा श्रीलंका, मलेशिया, इंडोनेशिया और आस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग में ठंड (उत्तरी ठंड) में होने वाली वर्षा इसी प्रकार से होती है।

तमिलनाडु में वर्षा – उत्तर-पूर्व से आने वाली मानसून पवन का एक भाग बंगाल की खाड़ी को पार करने के बाद तमिलनाडु तट की ओर मुड़ जाता है। वह बंगाल की खाड़ी के ऊपर से बहता हुआ आता है। इसलिए उसमें जल वाष्प काफी मात्रा में मौजूद होती है और तमिलनाडु में अनुकूल परिस्थितियाँ मिल जाने से वहां पर्याप्त वर्षा करता है। समझा जाता है कि तमिलनाडु में औसतन 52 प्रतिशत वर्षा ठंड की मानसून से ही होती है। यह वर्षा मुख्यतः नवंबर-दिसंबर में होती है।

उक्त अवधि में लगभग एक सप्ताह का समय ऐसा होता है जब तमिलनाडु में गर्मी और सर्दी, दोनों की, मानसून पवन सक्रिय होती हैं। धीरे-धीरे गर्मी की मानसून निर्बल होती जाती है और ठंड की मानसून सक्रिय होने लगती हैं। वैसे ठंड की मानसून का आगमन इतना सुस्पष्ट नहीं होता जितना गर्मी की मानसून का। इसलिए तमिलनाडु के विभिन्न भागों में ठंड की मानसून की आगमन तिथियों का सही पूर्वानुमान लगाना कठिन होता है।

उष्णकटिबंधीय चक्रवात

अनेक बार वायुमंडल का दाब अवदाब में होने वाले निम्न दाब से भी

कम हो जाता है। साथ ही निम्न दाब वाले क्षेत्र का विस्तार भी बहुत कम होता है तथा वायु बहुत अधिक घूर्णन करने लगती है। ये परिस्थितियाँ उष्ण कटिबंधीय तूफान या चक्रवात को जन्म देती हैं। यदि ये चक्रवात थल पर पहुंच जाते हैं तब धन और जन की बहुत हानि होती है। उनके बारे में अच्छी बात यह है कि इस प्रकार के चक्रवात मानसून की ऋतु में कम पैदा होते हैं। अक्तूबर-नवंबर में इनकी संख्या सबसे अधिक और जनवरी-फरवरी में सबसे कम होती है।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात अरब सागर की तुलना में बंगाल की खाड़ी में अधिक पैदा होते हैं। मौसमवैज्ञानिकों द्वारा एकत्रित आकड़ों के अनुसार वर्ष 1891 से 1960 की अवधि में बंगाल की खाड़ी में 314 चक्रवात पैदा हुए थे और अरब सागर में 82, इनमें से बंगाल की खाड़ी के 100 और अरब सागर के 48 चक्रवात ही तीव्र थे।

बंगाल की खाड़ी में मई के महीने में चक्रवातों की संख्या में वृद्धि होने लगती है। उनमें से अधिकांश 10 से 15° उत्तर अक्षाशों के बीच के क्षेत्र में पैदा होते हैं। मानसून आरंभ हो जाने पर उनका निर्माण-क्षेत्र उत्तर की ओर सरकता जाता है। जुलाई के महीने में वह 18° उत्तर से ऊपर पहुंच जाता है। उस महीने में उत्पन्न होने वाले अधिकांश चक्रवात पश्चिम की ओर मुड़ जाते हैं।

जब तक ये चक्रवात सागर पर रहते हैं इनकी प्रबल पवन जल-जहाजों के लिए खतरा बनी रहती हैं। इनके तट के निकट आ जाने पर सागर में बहुत ऊंची-ऊंची लहरें और महोर्मि उत्पन्न होने लगते हैं। इससे तट के अंदर काफी दूर तक पानी भर जाता है। इसके साथ ही भारी वर्षा होती है। फलस्वरूप धन और जन की भारी हानि होती है।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में बहुत विशाल मात्रा में ऊर्जा भरी होती है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि एक ऐसा चक्रवात जिसकी त्रिज्या 660 किमी. हो, प्रति दिन लगभग 0.36×10^{12} किलोवाट — अवर ऊर्जा खर्च करता है। यह मानव निर्मित अस्त्र-शस्त्रों से मुक्त होने वाली ऊर्जा से कई-सौ गुना अधिक है। एक मेगाटन के परमाणु बम (10 लाख टन टी.एन.टी. के तुल्य) के विस्फोट

के दौरान लगभग 10^9 किलोवाट — अवर ऊर्जा ही मुक्त होती है। इस प्रकार 660 किमी. त्रिज्या वाले चक्रवातीय तूफान में 360 मेगाटन के बमों के तुल्य ऊर्जा मुक्त होती है।

जलधाराओं पर प्रभाव

मानसून पवन के ऋतु के अनुसार बहने की दिशाओं में परिवर्तन कर लेने के सबसे अधिक प्रभाव अरब सागर और बंगाल की खाड़ी की जलधाराओं पर पड़ते हैं। मानसून पवन की दिशा बदलने के फलस्वरूप अरब सागर की जलधाराओं की दिशा भी बदल जाती है। अप्रैल के महीने में भूमध्यरेखा के उत्तर में मानसून पवन के दक्षिण-पश्चिम दिशा से तेज गति से, आने के फलस्वरूप दक्षिणी भूमध्यरैखिक जलधारा की एक शाखा भूमध्यरेखा और 5° दक्षिण अक्षांश के बीच के क्षेत्र में अपनी दिशा बदलकर, उत्तर की ओर बहने लगती है। वह अरब सागर के तट के निकट प्रबल सोमाली जलधारा में बदल जाती है और लगभग 7 नॉट की गति से बहने लगती है। सकोतरा के बाद वह प्रतिचक्रवाती परिवहन का एक भाग बनकर उत्तर-पूर्व की ओर, अरब प्रायःद्वीप के तट के सहारे, उस समय तक बढ़ती रहती है जब तक भारत के पश्चिमी तट पर, 10° उत्तर अक्षांश के निकट, नहीं पहुंच जाती। वहाँ इसे दक्षिण-पश्चिम मानसून ड्रिफ्ट जलधारा मिल जाती है। उसके साथ वह दक्षिण-पूर्व की ओर, श्रीलंका की ओर, मुड़ जाती है।

गर्मी में अफ्रीका और अरब प्रायःद्वीप के तटों के निकट प्रबल उत्स्रवण होने लगता है। ऐसा अक्तूबर-नवंबर तक होता रहता है। उस समय ऋतु बदलने के परोक्ष परिणामस्वरूप मानसून पवन भी अपनी दिशा बदल देती है। वह उत्तर-पूर्व दिशा से बहने लगती है। वह उतनी तेजी से नहीं बहती जितनी तेजी से गर्मी की मानसून परंतु उसके फलस्वरूप लगभग 10° उत्तर अक्षांश के निकट उत्तर-पूर्व दिशा से आने वाली जलधारा की दिशा बदल जाती है। अब जलधारा पश्चिम की ओर बहने लगती है। वह दो भागों में विभक्त भी हो जाती है। उनमें से एक भाग अदन की खाड़ी की ओर और दूसरा भाग दक्षिण की ओर झुक कर सोमाली के निकट तक पहुंच जाता है।

बंगाल की खाड़ी भी मानसून पवन से अत्यंत प्रभावित होती है। उत्तरी गर्मी में उत्तर-पश्चिम भारत, पाकिस्तान, ईरान आदि के अत्यधिक गर्म हो जाने के कारण हिंद महासागर के उच्च दाब वाले क्षेत्र से जो पवन, मानसून पवन, बहना आरंभ करती है, वह बंगाल की खाड़ी में लगभग दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम दिशा से आती हैं। यह प्रबल पवन बंगाल की खाड़ी की जलधाराओं के बहने की दिशा भी बदल देती है।

हिमालय पर्वत शृंखला और जंतिया, खासी, लुशई पर्वतों की स्थितियाँ उन्हें भारी वर्षा — कदाचित् संसार में सबसे अधिक वर्षा — करने के लिए मजबूर कर देती हैं। इससे बंगाल की खाड़ी पर भी भारी वर्षा होती है। साथ ही भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में होने वाली वर्षा का भी अधिकांश पानी गंगा, ब्रह्मपुत्र आदि नदियों के माध्यम से अथवा अन्य प्रकार से बहकर बंगाल की खाड़ी में ही आ मिलता है।

3 से 5 नॉट की गति से बहने वाली गर्मी की मानसून पवन बंगाल की खाड़ी की जलधाराओं को पूर्व की ओर बहने वाले उत्तरी भूमध्यरैखिक जलधारा से मिलाकर दक्षिणावर्त दिशा में बहने के लिए प्रेरित कर देती हैं।

अक्तूबर माह में गर्मी की मानसून समाप्त हो जाती है। नवंबर मास में सर्दी की मानसून पवन उत्तर-पूर्व दिशा से दक्षिण-पश्चिम की ओर बहने लगती हैं। इससे बंगाल की खाड़ी की जलधाराओं की दिशा एक बार फिर बदल जाती है। अब वे वामावर्त हो जाती हैं पर इस समय उनकी गति अपेक्षाकृत कम होती है।

गर्मी की मानसून प्रबल पवन है और वह अपने साथ सागर के पानी को भी बड़ी मात्रा में बहा ले जाती है। इससे हमारे पूर्वी तट के साथ सागर के पानी का स्तर गिर जाता है। इसलिए तली का पानी सतह पर जल्दी-जल्दी आने लगता है — उत्स्रवण होने लगता है। उस समय विशाखापत्तनम के तट पर पानी का स्तर लगभग आधा मीटर और चटगाँव के निकट एक मीटर से भी अधिक नीचा हो जाता है।

अधिक जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न

दक्षिण-पूर्व एशिया, विशेष रूप से भारत, के लिए मानसून पवन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। आपको यह जानकर शायद आश्चर्य हो कि एक सामान्य 'मानसून वाले' (वर्षा वाले) दिन में (दक्षिण-पश्चिम) मानसून जल वाष्प की 7500 करोड़ टन जैसी अत्यंत विशाल मात्रा पश्चिमी तट के पार ले जाती है। जल वाष्प की यह मात्रा अत्यंत विशाल है। इसका अनुमान इस कथन से हो सकता है कि पूरे भारत के मैदानी इलाकों, (क्षेत्रफल 15 लाख वर्ग किमी.), पर 0.7 इंच (1.7 सेमी.) वर्षा होने में केवल 2500 करोड़ टन वाष्प ही (अर्थात् उक्त मात्रा का एक-तिहाई भाग ही) जल में परिवर्तित होती है, दो-तिहाई वाष्प पवन में ही रही आती है।

मौसमवैज्ञानिकों ने 1962 में अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान, हिंद महासागर के ऊपरी वायुमंडल के अध्ययन करने के भी कार्यक्रम बनाए थे।

उन्नीस सौ सत्तर के दशक का आरंभ होने तक मौसमवैज्ञानिकों को यह भली-भांति स्पष्ट हो चुका था कि मानसून पवनों की गतिविधियों की, अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्हें सागरों पर भी प्रयोग करने होंगे। इस दृष्टि से वर्ष 1973 और 1977 में दो प्रयोग किए गए। ये थे --

(i) संयुक्त भारत–सोवियत मानसून प्रयोग — आई.एस.एम.ई.एक्स. — आइसमैक्स — 1973; और

(ii) मानसून–77

इन प्रयोगों में पता चला कि भूतल पर वास्तव में एक ऐसा क्षेत्र है जहां दक्षिणी गोलार्द्ध की मानसून पवन उत्तर की ओर — भारत की ओर — आती हुई भूमध्यरेखा को पार करती हैं। यह क्षेत्र केन्या के पूर्वी तट के निकट, सागर पर, स्थित है। इस क्षेत्र में मानसून पवन का प्रवाह काफी प्रबल होता है पर वह धरती से 1.5 से 2.0 किमी. ऊंचाई तक ही स्थित होती है। इस प्रवाह के प्रभाव महाराष्ट्र में होने वाली वर्षा पर भी पड़ते हैं।

मानसून-77 प्रयोग में बंगाल की खाड़ी के वायुमंडल के ऊपरी भागों में वायु की गतिविधि के अध्ययन किए गए थे।

विश्वव्यापी वायुमंडलीय अनुसंधान कार्यक्रम (जी.ए.आर.पी–ग्राप) कार्यक्रम के अंतर्गत 1 दिसंबर, 1978 से पूरे एक वर्ष तक विश्वव्यापी स्तर पर वायुमंडल के अध्ययन किए गए। उस समय तक आयोजित इस सबसे बड़े कार्यक्रम में अनेक देशों ने सक्रिय भाग लिया था और थल तथा सागर पर स्थापित विभिन्न केंद्रों से और मौसम उपग्रहों की मदद से वायुमंडल के विभिन्न पहलुओं के गहन अध्ययन किए थे। 1979 में इस कार्यक्रम में सिर्फ 10° दक्षिण से 10° उत्तर अक्षांशों के बीच के क्षेत्र में ही 52 अनुसंधान पोत अध्ययनरत थे तथा प्रशांत, अंध और हिंद महासागर पर वायुयानों द्वारा 104 सफल उड़ानें भरी गईं थीं। इसी कार्यक्रम का एक भाग था 'मानसून प्रयोग' – एम.ओ.एन.ई.एक्स. (मोनैक्स) – जो भारत के लिए विशेष रूप से उपयोगी था। मोनैक्स का वास्तविक उद्देश्य था : "वायुमंडल के व्यापक परिसंचरण पर मानसून पवनों के प्रभाव ज्ञात करना।" इस प्रकार के कार्यक्रम में भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा सक्रिय रूप से भाग लेना स्वाभाविक ही था।

मोनैक्स – मोनैक्स तीन चरणों में आयोजित किया गया (i) शीत मोनैक्स – 1 दिसंबर, 1978 से 5 मार्च, 1979 तक – जिसमें पूर्वी हिंद और प्रशांत महासागरों तथा मलेशिया और इंडोनेशिया के ऊपरी वायुमंडल के अध्ययन किए गए, (ii) ग्रीष्म मोनैक्स – 1 मई से 31 अगस्त, 1979 तक – जिसका क्षेत्र अफ्रीका के पूर्वी तट से बंगाल की खाड़ी तक था। इसमें अरब सागर तथा आस-पास के थलीय क्षेत्रों के, तथा हिंद महासागर की 10° दक्षिण और 10° उत्तर अक्षांशों के बीच की पट्टी के ऊपर के वायुमंडल के अध्ययन किए गए और (iii) पश्चिमी अफ्रीकी मानसून प्रयोग – (डब्ल्यू.ए.एम.ई.एक्स. – वेमैक्स) 1 मई से 31 अगस्त, 1979 तक। इसके अंतर्गत अफ्रीका के पश्चिमी और मध्य भागों के वायुमंडल के अध्ययन किए गए। इस अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम में अनेक देशों के वैज्ञानिकों, अनुसंधान पोतों और अनुसंधान वायुयानों ने भाग लिया था। उसमें अपसौंडे, डाउनसौंडे और ओमेगासौंडे जैसे आधुनिकतम

उपकरणों तथा दो भूतल्यकालिक उपग्रहों – 'गोज इंडियन ओशन' (GOES Indian Ocean) और 'मेटेओसैट' का भरपूर उपयोग किया गया। इसमें भारत के चार अनुसंधान पोतों और एक वायुयान ने भाग लिया था।

मोनैक्स के दौरान भारतीय अनुसंधान पोतों का मुख्य कार्य क्षेत्र भारत के निकटवर्ती इलाकों तक सीमित था। इस कार्यक्रम के अंतर्गत भारतीय वैज्ञानिकों ने ऊपरी वायुमंडल की पवनों के बारे में अध्ययन किए। इन अध्ययनों में गुब्बारों की मदद से ओमेगासौंडे छोड़े गए और नई नौचालन तकनीकों से उनके उड़ान के प्रेक्षण किए गए। मौसमवैज्ञानिक प्रेक्षणों की रिकार्डिंग के लिए एक भारतीय वायुयान (एवरो-747) का भी उपयोग किया गया।

मोनैक्स कार्यक्रम के दौरान भारतीय मौसमविज्ञान विभाग ने न केवल नए प्रेक्षण केंद्र स्थापित किए वरन् उन्हें आधुनिकतम उपकरणों से लैस भी किया। गुब्बारों में छोड़े गए उपकरणों से प्राप्त संकेतों को ग्रहण करने हेतु आठ प्रेक्षण केंद्रों का एक नेटवर्क स्थापित किया गया। इसके साथ ही मौसम-विज्ञान विभाग, अंतरिक्ष विभाग और राष्ट्रीय दूरसंवेदी एजेंसी ने अनेक उपकरणों का निर्माण भी किया।

इस कार्यक्रम के दौरान अनुसंधान पोतों ने सागर की जलधाराओं और अन्य तत्वों के अध्ययन किए। इनसे मौसमवैज्ञानिकों को सागर और वायुमंडल की अंतःक्रियाओं के बारे में अधिक सही अनुमान लगाने में मदद मिली।

उपलब्धियाँ – मोनैक्स कार्यक्रम में किए गए अध्ययनों और प्रयोगों से अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलीं। इनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं –

केन्या (अफ्रीका) के पूर्वी तट पर, धरती की सतह के नजदीक, एक प्रबल जेट प्रवाह बहता है जो भूमध्यरेखा के उत्तर और दक्षिण, दोनों ओर, स्थित होता है। इसकी तीव्रता में दैनिक परिवर्तन होते रहते हैं। संवहन क्रियाओं के कारण यह रात की अपेक्षा दिन में क्षीण हो जाता है। अध्ययनों में पाया गया कि इस जेट प्रवाह की तीव्रता में परिवर्तन मोंजाबिक चैनल के झौंकों (सर्ज) से संबंधित होते हैं। कुछ झौंके निम्न दाब प्रणालियों से भी संबद्ध होते हैं।

साथ ही उक्त जेट प्रवाह सोमाली जलधारा और सोमाली तट पर, सागर में होने वाले उत्स्रवण से भी, घनिष्ठ रूप से संबंधित होता है। मानसून (गर्मी

की मानसून) की प्रगति के साथ उत्स्रवण का क्षेत्र भी, थोड़ा-सा उत्तर की ओर सरक जाता है।

सोमाली जलधारा के मुख्य प्रवाह में छोटे-छोटे भंवर उपस्थित होते हैं। इन भवरों की गतिविधियों तथा जलधाराओं पर उनके प्रभावों के अध्ययनों से सागर की सतह पर पवनों के प्रतिबलों को समझने में बहुत सहायता मिली है।

मोनैक्स कार्यक्रम के दौरान पता चला कि जब कभी अरब सागर के उत्तरी भाग में कोई बड़ा प्रतिचक्रवात उपस्थित होता है तब गर्मी की मानसून के आने में देर हो जाती है।

दक्षिणी गोलार्द्ध की पवन प्रणालियों के फलस्वरूप अफ्रीका के पूर्वी तट के निकट प्रबल वायु प्रवाह उत्पन्न हो जाते हैं। भूमध्यरेखा से उत्तर की ओर जाने वाले ये प्रवाह मानसून प्रारंभ करते हैं।

भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र और पश्चिमी एशियाई देशों के सूखे और अर्द्ध-सूखे क्षेत्रों के वायुमंडल में धूल कणों की काफी अधिक मात्रा मौजूद रहती है। प्रयोगों में यह पाया गया कि उत्तर भारत के वायुमंडल के एक वर्ग मील क्षेत्र में औसतन 5.5 टन बारीक धूल कण छितराए रहते हैं।

मोनैक्स कार्यक्रम में पृथ्वी की ओर जाने वाले सौर विकिरणों तथा पृथ्वी से परावर्तित होने वाले विकिरणों के बीच के संतुलन के बारे में अनेक नई जानकारियाँ प्राप्त हुईं। इनके अनुसार भारत के पश्चिमी तट पर मानसून पवन की प्रबलता और दक्षिणी गोलार्द्ध में मैस्कारने उच्च दाब की घट-बढ़ के बीच घनिष्ठ संबंध है। जब मैस्कारने उच्च दाब में वृद्धि हो जाती है तब बंगाल की खाड़ी में दाब कम हो जाता है तथा मध्य भारत में मानसून अधिक सक्रिय हो जाती है। मैस्कारने क्षेत्र में दाब कम हो जाने से भारतीय मानसून कमजोर पड़ने लगती है।

मानसून का दीर्घकालीन पूर्वानुमान

आधुनिक युग में मानसून का पूर्वानुमान लगाने के कार्य का आरंभ सर गिलबर्ट वाकर ने किया, जो 1904 से लेकर 1921 तक, भारतीय मौसमविज्ञान

विभाग के अध्यक्ष थे। इस पद को ग्रहण करने के लिए वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कॉलेज की फैलोशिप छोड़कर आए थे। भारतीय मौसमविज्ञान विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत रहने के दौरान ही, 1920 में, उन्होंने पवनों के उस अत्यंत विशाल परिसंचरण चक्र की खोज की थी, जो बाद में 'वाकर चक्र' (वाकर साइकिल) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह चक्र एल–नीनो की घटना का परोक्ष कारण है।

गिलबर्ट वाकर के बाद भी भारतीय मौसमवैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में अध्ययन जारी रखे। इनके फलस्वरूप अब मानसूनों के बारे में अधिक सही पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। आजकल भारतीय मौसमवैज्ञानिक देश के दक्षिणतम भाग में गर्मी की मानसून पवन के आगमन और संपूर्ण देश में जून के आरंभ से लेकर मध्य सितंबर तक होने वाली वर्षा की मात्रा का अनुमान लगाने हेतु सामश्रयण समीकरणों (रिग्रेशन इक्वेशन्स) का उपयोग करते हैं।

6 – हिंद महासागर की जैव संपदा

हिंद महासागर में भी वे सब जीव-जंतु निवास करते हैं जो अन्य महासागरों में पाए जाते हैं। वैसे समुद्री जीवों की कुछ ऐसी प्रजातियाँ भी हैं जो मुख्यतः हिंद महासागर में ही पाई जाती हैं। परंतु पहले सागर के सामान्य जीव-जंतुओं की चर्चा कर लें।

यदि कार्बन के प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र, प्रति वर्ष, उत्पादन के अनुसार महासागरों की उत्पादन क्षमता ज्ञात की जाए तब हिंद महासागर को हम प्रशांत और अंध महासागरों की तुलना में कहीं अधिक 'उपजाऊ' पाते हैं। प्रशांत महासागर की उत्पादन क्षमता 46.4, अंध महासागर की 69.4 और हिंद महासागर की 81 ग्राम कार्बन प्रति वर्ग मीटर प्रति वर्ष है।

उत्पादन की दृष्टि से अरब सागर और बंगाल की खाड़ी हिंद महासागर के सर्वोत्तम भाग हैं। इन सागरों में सूर्य का प्रकाश 40 से 60 मीटर गहराई तक प्रवेश कर जाता है। वैसे अरब सागर बंगाल की खाड़ी की तुलना में अधिक उपजाऊ है। उसका पानी बंगाल की खाड़ी की तुलना में अधिक स्वच्छ है। इसलिए उसमें प्रकाश अधिक गहराई तक प्रवेश कर जाता है।

पादप प्लांक्टन

सागर में जो जीव सबसे अधिक संख्या में पाया जाता है वह है सूक्ष्मजीव (0.025 मिमी. जैसा सूक्ष्म), एककोशिक, जीव, जो पौधों की भांति प्रकाश-संश्लेषण की मदद से अपना भोजन बनाता है। यह है पादप प्लांक्टन। 'सागर की घास' के रूप में प्रसिद्ध पादप प्लांक्टन सागर का प्राथमिक उत्पादन है। यह जंतु प्लांक्टनों, शाकाहारी मछलियों, मोलास्कों, क्रस्टेशियनों आदि का मुख्य भोजन है।

पृथ्वी के वायुमंडल में मौजूद ऑक्सीजन की अधिकांश मात्रा, पादप प्लांक्टनों द्वारा, प्रकाशसंश्लेषण के दौरान, उत्पन्न होती है।

अनुकूल परिस्थितियाँ – पर्याप्त मात्रा में प्रकाश, नाइट्रोजन (नाइट्रेट, नाइट्राइट और अमोनिया के रूप में), फॉस्फोरस (फॉस्फेट के रूप में), सिलिका (सिलीकेट के रूप में), मेटाबोलाइट तथा पानी का उपयुक्त ताप आदि – मिल जाने पर पादप प्लांक्टन बहुत तेजी से वंशवृद्धि करते हैं। इसीलिए वसंत ऋतु के आते ही संपूर्ण सागर सतह इनसे ढंक जाती है। साथ ही ये उन क्षेत्रों में अधिक मात्रा में पैदा होते हैं जहाँ सागर में उत्स्रवण होता रहता है।

पादप प्लांक्टनों को आमतौर से पाँच वर्गों – डायएटम, डाइनोफ्लेजलेट, कोकोलिथोफोर, नील-हरित शैवाल और हरी शैवाल – में बाँटा जाता है।

पादप प्लांक्टनों का सागर में उत्पादन मुख्य रूप से चार कारकों पर निर्भर होता है। ये हैं प्रकाश, पोषक पदार्थ, ताप और जलधाराएँ।

प्रकाश – पादप प्लांक्टन भी थलीय पौधों की भांति सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में ही कार्बन डाइऑक्साइड और पानी से अपना भोजन बनाते हैं। इसलिए वे सागर के सुप्रकाशित क्षेत्र में ही अधिक पनपते हैं। सौर प्रकाश के सागर में प्रवेश कर सकने की क्षमता उसकी तीव्रता और पानी के गंदलेपन पर निर्भर होती है। बहुत गंदले समुद्री जल में सूर्य का प्रकाश केवल 5-6 मीटर तक, स्वच्छ तटीय जल में 40 से 50 मीटर तक और खुले सागरों में 140 मीटर गहराई तक प्रवेश कर जाता है।

पोषक पदार्थ – यह प्राकृतिक नियम है कि जहाँ पोषक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मौजूद होते हैं वहाँ जीवों की आबादी बहुत सघन हो जाती है। उन्हें अपने विकास के लिए अकार्बनिक रूप में नाइट्रोजन (नाइट्रेट, नाइट्राइट और अमोनिया के रूप में) फास्फोरस (फास्फेट के रूप में), सिलिका (सिलिकेट के रूप में) कुछ अन्य तत्व और मेटाबोलाइट चाहिए। सागर में पोषक पदार्थ उस क्षेत्र में अधिक मात्रा में मौजूद होते हैं जहाँ उत्स्रवण होता रहता है।

सुप्रकाशित क्षेत्र में आरंभ में पोषक पदार्थ काफी मात्रा में मौजूद होते हैं पर वहाँ जीवों की संख्या भी काफी अधिक हो जाती है। परिणामस्वरूप वे जल्दी ही समाप्त हो जाते हैं। इसलिए बार-बार इनकी पूर्ति होते रहना जरूरी होता है। ऐसा होने के लिए तली के पानी का बार-बार ऊपर आना (उत्स्रवण क्रिया का होना) बहुत जरूरी होता है। तली में जीवों की संख्या

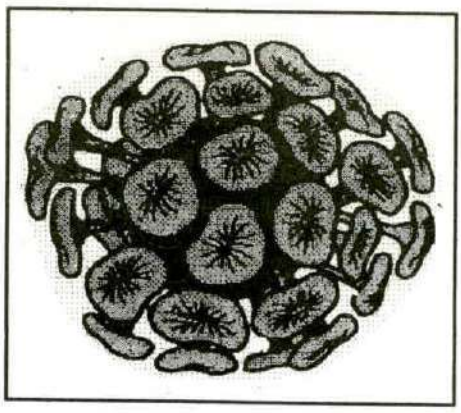

विभिन्न प्रकार के कोकोलिथोफोर। ये अत्यंत सूक्ष्म पादप प्लांक्टन हैं जिनका आकार 10 से 20 म्यू मीटर होता है। इनका शरीर बहुत क्षुद्र कैल्साइट (कैल्शियम कार्बोनेट) प्लेटों से बना होता है। ये कोष्ण जल में रहना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि कैल्शियम कार्बोनेट ठंडे पानी की अपेक्षा कोष्ण पानी में कम घुलता है (ऊपरः डिस्कुस्फैइरा ट्यूबीफेन (नीचे बांए) *कोकोस्फैइरा अटलांटिका,* (नीचे दाहिने) *सायरोकौस्पफैरस ब्रासीलीएंसिस*

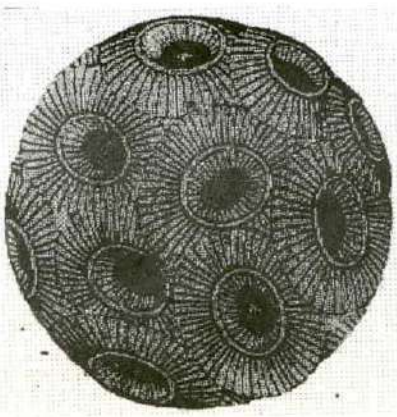

सुप्रकाशित क्षेत्र की तुलना में काफी कम होती है। इसलिए वहां पोषक पदार्थ बहुत कम गति से खर्च होते हैं। दूसरे शब्दों में वहाँ पोषक पदार्थ अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में बचे रह आते हैं। तली के पानी के साथ वे भी सतह पर आते रहते हैं।

ताप – पानी का ताप भी एक ऐसा कारक है जो पादप प्लांक्टनों की वृद्धि को प्रभावित करता है। कोष्ण पानी में रहने वाले पादप प्लांक्टन सामान्यतः आकार में छोटे होते हैं। इसलिए कोष्ण जलों में उनका घनत्व भी अधिक हो जाता है।

इस संबंध में महत्त्वपूर्ण बात यह है भिन्न-भिन्न वंशों के पादप प्लांक्टन अलग-अलग तापों के जलों में पनपते हैं और अनेक वंश तो किसी खास भौगोलिक क्षेत्र को ही अधिक पसंद करते हैं।

जलधाराएँ – पादप प्लांक्टन इतने सूक्ष्म होते हैं कि वे लहरों और जलधाराओं के साथ हिचकोले खाते रहते हैं और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाते रहते हैं। इस कारण वे कभी गहराई में चले जाते हैं तो कभी सतह पर आ जाते हैं।

पुष्प पुंजन – कभी-कभी कुछ विशेष कारणों से पादप प्लांक्टनों की कोई विशेष किस्म एकाएक बहुत अधिक वृद्धि करने लगती है। ऐसा करते समय अनेक बार वह पादप प्लांक्टनों की अन्य किस्मों पर हाबी हो जाती है। उस समय वह किस्म सागर की संपूर्ण सतह को पूरी तरह ढंक देती है। उसकी वजह से सागर का रंग तक बदल जाता है। इस स्थिति को "पुष्प पुंजन" (ब्लूमिंग) कहते हैं।

आप पढ़ चुके हैं कि अरब प्रायःद्वीप और अफ्रीका महाद्वीप के बीच में स्थित सागर का नाम 'लाल सागर' पड़ने का कारण भी उसमें लाल रंग के पादप प्लांक्टन *ट्राइकोडेस्मियम* का बहुत अधिक मात्रा में पैदा होना हे। अनेक बार *ट्राइकोडेस्मियम* उस सागर की संपूर्ण सतह को ढंक लेता है। शायद किसी नाविक ने प्लांक्टन के पुष्प पुंजन की स्थिति में उस सागर को 'लाल सागर' का नाम दे दिया होगा जो आज भी प्रचलित है।

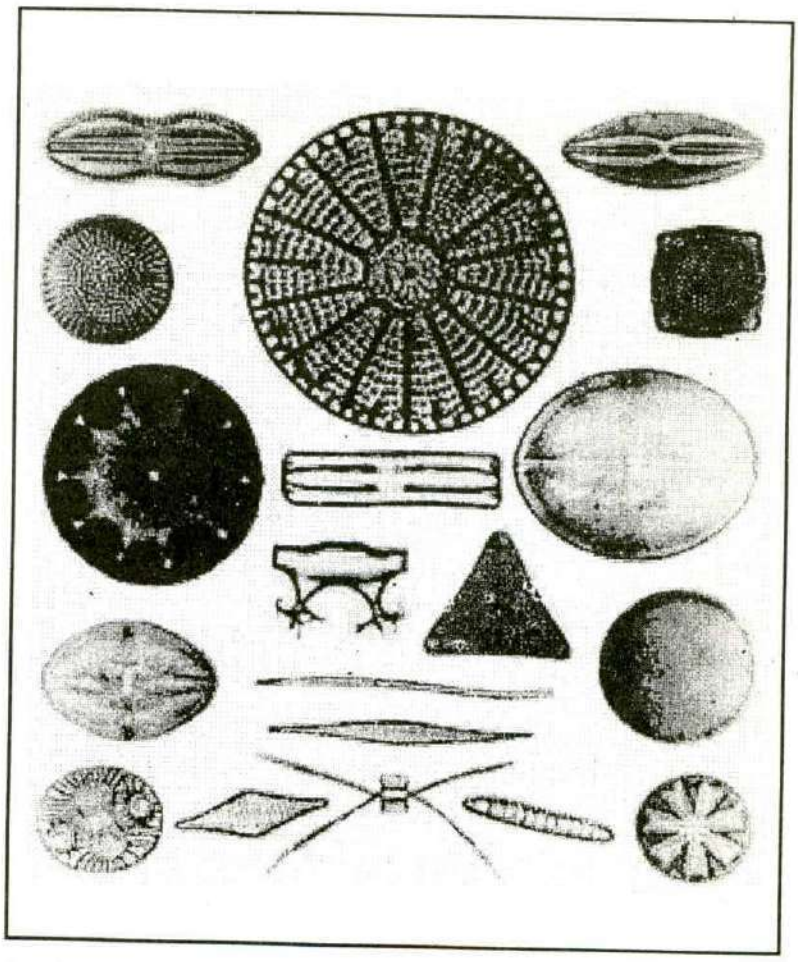

विभिन्न आकृतियों और आकार के डायएटम। डायएटम एककोशिक जीव हैं जिनका आकार 20 से 80 म्यू मीटर के बीच होता है। इनका बाह्य खोल सिलिका का बना होता है जिसमें एक छिद्र होता है। इस छिद्र के रास्ते ही डायएटम सागर के पानी से पोषक पदार्थ प्राप्त करते हैं।

डायएटम का सिलिका खोल न केवल शत्रुओं से उसकी रक्षा करता है वरन् पानी के साथ घर्षण भी बढ़ाता है जिससे पानी से भारी होने के बाद भी डायएटम उसमें डूबता नहीं।

डायएटम अपेक्षाकृत ठंडे पानी में निवास करना पसंद करता है क्योंकि सिलिका ठंडे पानी में कम घुलता है।

पादप प्लांक्टन समय-समय पर, विशेष कारणों से, पुष्प पुंजन करते रहते हैं और वे सागर की सतह को लाल ही नहीं वरन् ब्राउन, पीला, नारंगी और हरा तक रंग देते हैं। इस प्रकार के कार्य डाइनोफ्लेजलेट, डायएटम और नील-हरित शैवाल अक्सर करते रहते हैं।

पुष्प पुंजन करने वाले डाइनोफ्लेजलेटों में *गोनीआउलैक्स, गिमनोडाइनियम* और *नॉक्टीलुका* प्रमुख हैं। इनमें प्रथम दो किस्में जहरीली भी हो जाती हैं। इस कारण समुद्री जीव उनसे दूर ही रहने की कोशिश करते हैं। *नॉक्टीलुका* रात को चमकता भी है। यह जीवसंदीप्ति दर्शाता है।

जंतु प्लांक्टन

यदि पादप प्लांक्टनों को सागर का प्राथमिक उत्पादन कहा जाता है तब जंतु प्लांक्टनों को सागर का 'द्वियीतक उत्पादन' कहना उपयुक्त होगा। वास्तव में वे पादप प्लांक्टनों का भक्षण करके उनमें निहित ऊर्जा को मछलियों तथा अन्य जंतुओं तक उसी प्रकार पहुंचाते हैं जैसे थल के शाकाहारी जीव स्वयं मांसाहारी जीवों का शिकार बन कर उन तक वनस्पति में निहित ऊर्जा पहुंचाते हैं। इनमें सबसे अधिक संख्या क्रस्टेशियनों की होती है और जंतु प्लांक्टनों में विभिन्न किस्मों के क्रस्टेशियनों यथा कॉपिपॉड और यूफेसिड, के अतिरिक्त जैलीफिश, कुछ प्रोटोजोआ, कृमि, मोलस्क तथा कुछ नितलस्थ और तरणक जीव भी शामिल होते हैं।

क्रस्टेशियन आर्थोपोडा का ऐसा वर्ग है जो गलफडों या क्लोमों में सांस लेता है। सामान्यतः उसका शरीर कठोर खोल से ढंका रहता है। इस वर्ग में बर्नाकल, श्रिंप, लोब्स्टर आदि शामिल होते हैं। कॉपिपॉड भी श्रिंप सदृश्य जीव होते हैं जो 0.5 से लेकर 10 मिमी. तक लंबे हो जाते हैं। इनकी अनेक प्रजातियाँ जीवसंदीप्ति दर्शाती हैं। ये समशीतोषण और अधोध्रुवीय सागरों की सतहों पर अधिक पाए जाते हैं।

कॉपिपॉडों की भांति यूफेसिड भी श्रिंप सदृश्य, 8 से 10 सेमी. तक लंबे, जीव होते हैं जो ठंडे सागरों में अधिक पाए जाते हैं। वे खुले सागरों में भी पाए जाते हैं और तटीय सागरों में भी। उनमें भी जीवसंदीप्ति होती है।

अधिकांश यूफेसिड रात के समय सतह पर आ जाते हैं पर दिन में गहराई में चले जाते हैं। सागरवैज्ञानिकों का यह मत है कि कदाचित् वे भी ध्वनि तरंगों को प्रकीर्णित करते हैं और इस प्रकार "झूठी तली" का भ्रम उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। पर कुछ यूफेसिड एक खास ऋतु में ही सागर की सतह पर रहना पसंद करते हैं और इस प्रकार अनेक बलीन व्हेलों (ऐसी व्हेल जिनके मुँह में छन्ने सदृश्य अंग होते हैं), का मुख्य भोजन बन जाते हैं।

पादप प्लांक्टनों के विपरीत जंतु प्लांक्टनों में स्वयं तैरने की क्षमता होती है, यद्यपि यह क्षमता उनके वंशों के अनुसार "बहुत क्षीण" से "काफी अधिक" तक हो सकती है। वैसे तैरने की क्षमता के बहुत क्षीण होने पर भी वे लहरों और जलधाराओं के साथ उस प्रकार नहीं बहते जैसे पादप प्लांक्टन बह जाते हैं। इसके फलस्वरूप उसी जल क्षेत्र में रहे जाते हैं जिसका प्रकाश, लवणता, ताप आदि उनके अनुकूल होते हैं।

विश्व के अन्य सागरों की भांति हिंद महासागर में भी जंतु प्लांक्टनों का वितरण हर क्षेत्र में एकसमान नहीं है। साथ ही भिन्न-भिन्न क्षेत्रों यथा ज्वारनदमुख, तटीय सागर, खुले सागर आदि में पाए जाने वाले जंतु प्लांक्टनों के अभिलक्षण भिन्न-भिन्न हैं।

सागरवैज्ञानिकों के अनुसार हिंद महासागर के कुल जंतु प्लांक्टनों का बायोमास लगभग 5.19×10^8 टन है। अन्य महासागरों की तुलना में उनकी विविधता बहुत अधिक है परंतु आकार में वे अपेक्षाकृत छोटे हैं और मौसम के अनुसार उनकी पैदावार में घट-बढ़ अपेक्षाकृत कम होती है परंतु मानसून चक्र और तटीय उत्स्रवण उन्हें अधिक प्रभावित करते हैं।

भारत के पश्चिमी तट के निकट के सागर में जंतु प्लांक्टमों की मात्रा वर्षा ऋतु के अंत में अथवा उसके कुछ बाद, सबसे अधिक हो जाती है और ठंड की मानसून के दौरान बहुत कम। वास्तव में वहाँ जंतु प्लांक्टनों की बहुतायत दो शीर्ष अवधियों, फरवरी–अप्रैल तथा सितंबर-अक्तूबर, में होती है। पश्चिमी तट के निकटवर्ती सागर में दो कारक जंतु प्लांक्टनों की मात्रा को प्रभावित करते हैं। ये हैं महाद्वीपीय शेल्फ की काफी अधिक चौड़ाई और

काफी तीव्र उत्स्रवणता। उत्स्रवणता का एक प्रमुख कारण है मानसून पवन के चक्र का उलट जाना। इसके फलस्वरूप वहाँ 8°30' और 17°30' उत्तर अक्षांशों के बीच जंतु प्लांक्टनों का औसत दैनिक उत्पादन 125 मिग्रा. प्रति वर्ग सेमी. तक हो जाता है।

यह उत्पादन पूरे पश्चिमी तट पर एकसमान नहीं होता। उत्तरी भाग में, कच्छ की खाड़ी में, मुंबई तक, यह उत्पादन सबसे अधिक है पर दक्षिण की ओर घटता जाता है। वैसे जंतु प्लांक्टनों की दृष्टि से अरब सागर के सबसे उपजाऊ भाग हैं, ओमन की खाड़ी, सिंधु नदी का मुख तथा सोमाली, मोजांबिक और भारत के पश्चिमी तट के निकट के सागर। वहाँ शाकाहारी जंतु प्लांक्टनों — कॉपिपॉड, क्लैडोसेरान, एम्फीपॉड, टेरेपॉड, ट्यूनीकेट आदि — के बड़े-बड़े समूह पाए जाते हैं। वहाँ इनका शिकार करने के लिए सारडीन, मैकरल, ,dlohvkn dsHk>Mh vkt kr sgSA Hkkjrh; eSdjy *(स्ट्रेलिजर कनामुर्टा)* को क्लैडोसेरान प्लांक्टन बहुत पसंद है। अतएव जहाँ क्लैडोसेरानों की बहुतायत होती है वहाँ भारतीय मैकरल के बड़े-बड़े झुंड पहुंच जाते हैं। जंतु प्लांक्टनों के बृहत उत्पादन के फलस्वरूप ही हमारे पश्चिमी तट से कुल समुद्री मछली उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है।

भारत की दृष्टि से हिंद महासागर के सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं अरब सागर और बंगाल की खाड़ी। इन दोनों सागरों में मानसून पवनों का जंतु प्लांक्टनों की पैदावार पर जितना प्रभाव पड़ता है उतना हिंद महासागर के अन्य क्षेत्रों में नहीं। इन सागरों में, मानसून पवनों के बहने के फलस्वरूप जंतु प्लांक्टनों की सघनता के क्षेत्र भी बदलते रहते हैं। मोटे तौर पर गर्मी की मानसून के दौरान सघनता के क्षेत्र पश्चिम की ओर सरक जाते हैं और ठंड की मानसून के दौरान पूर्व की ओर।

देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और अनुसंधान केंद्रों द्वारा तथा अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान तथा अनुसंधान पोत **गवेषणी, सागर कन्या** और **सागर संपदा** द्वारा किए अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि अरब सागर में जंतु प्लांक्टनों की सबसे अधिक पैदावार 10 से 25° उत्तर

अक्षांशों के निकट के क्षेत्र में होती है।

तट से दूर, खुले सागर में, जंतु प्लांक्टनों के उत्पादन का खाद्य पदाथों की उपलब्धि से सीधा संबंध होता है। हिंद महासागर के सब खुले क्षेत्रों में जंतु प्लांक्टनों का उत्पादन एकसमान नहीं है।

समुद्री खरपतवार

यद्यपि सागर में सबसे अधिक मात्रा में पैदा होने वाले जीव के रूप में पादप प्लांक्टनों का मुकाबला नहीं है – वे इतने अधिक मात्रा में पैदा हाते कि उनसे संपूर्ण सागर ही ढक जाता है – परंतु सागर में कुछ ऐसे पौधे भी उगते हैं जो सूक्ष्मदर्शी, एककोशिक, न होकर बड़े होते हैं। सागर में ये उथले, ज्वारीय क्षेत्र में, डूबी हुई चट्टानों, कोरल या अन्य वस्तुओं से चिपके रहते हैं। वस्तुतः ये पौधे भी शैवाल होते हैं यानि इनकी जड़, तना और पत्तियों के ऊतक भिन्न-भिन्न किस्मों के नहीं होते। इनमें केवल पत्तियों के सदृश ही अंग होते हैं। मोटे तौर से ऐसे पौधों को "समुद्री खरपतवार" नाम से पुकारा जाता है।

थल पर उगने वाली खरपतवारों को आमतौर से बेकार समझकर उखाड़कर फेंक दिया जाता है क्योंकि वे फसलों आदि के पोषकों में अनाधिकार हिस्सा बांटती है। परंतु समुद्र में उगने वाले इन पौधों में से अनेक में विटामिन, खनिज लवण, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट आदि की माात्रा काफी अधिक होती है। इसलिए उन्हें खाद्य, पशुचारा और खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। साथ ही कुछ समुद्री खरपतवारों से उपयोगी रासायनिक पदार्थ भी प्राप्त किए जाते हैं तथा उनमें उपस्थित रचकों से अनेक औषधियाँ भी बनाई जाती हैं।

समझा जाता है कि पूरे विश्व में लगभग 20,000 प्रजातियों की समुद्री खरपतवार पैदा होती है। उसका वार्षिक उत्पादन लगभग 1,82,10,000 टन (गीले वजन के अनुसार), है जिसमें से हिंद महासागर का अंश 22,000 टन है। हिंद महासागर में मुख्य रूप से लाल और ब्राउन रंग की खरपतवार ही पैदा होती हैं।

गहरे पानी में उगने वाली शैवाल, *गिगारटाइन*

हमारे देश के तटों के निकट 624 प्रजातियों की खरपतवार उगती हैं। इनमें सबसे अधिक, 302 प्रजातियों की, खरपतवार तमिलनाडु के तटों पर, उगती हैं।

यद्यपि हमारे देश में केवल तमिलनाडु के तटीय इलाकों में ही

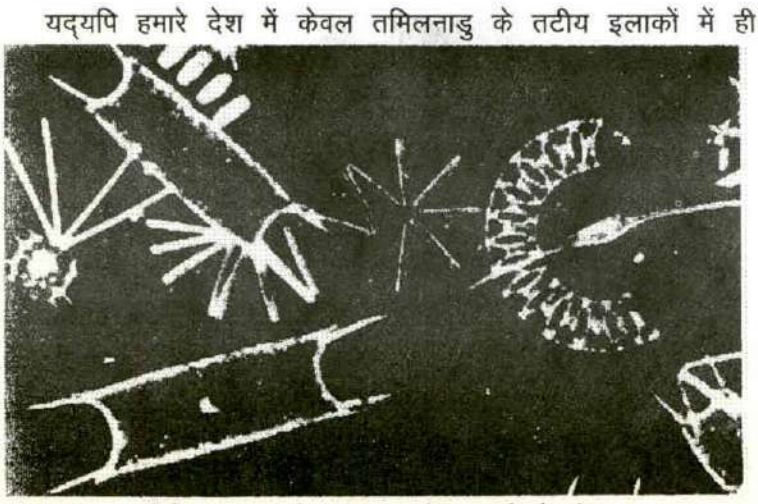

विभिन्न प्रकार के डायएटम और डाइनोफ्लैजलेट

ग्रासीलारिया प्रजाति की समुद्री खरतवार को पोरिज बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है परंतु मलेशिया, इंडोनेशिया, कोरिया, आस्ट्रेलिया आदि देशों में इसे सलाद, सूप, जैली, आदि व्यंजनों में प्रयुक्त किया जाता है। खाद्य के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली प्रजातियों में *काऊलेरपा, कॉडिएम, हाइड्रोक्लैथ्रम, सारगोसम, प्रोफायरा, ग्रासीलारिया* और *लॉरेशिया* शामिल हैं। इनमें विटामिन ए, बी, और बी-12 की मात्राएँ अधिकांश थलीय पौधों और सब्जियों से अधिक होती हैं।

इन खरपतवारों की अनेक प्रजातियों में मौजूद आयोडीन उन्हें एक बढ़िया खाद्य का दर्जा प्रदान कर सकती है। ये प्रजातियाँ उन क्षेत्रों के लोगों के लिए वरदान साबित हो सकती हैं, जिनमें लोग अक्सर ही गलगंड से पीड़ित होते हैं। आयोडीनयुक्त प्रजातियों को मुर्गियों के चारे के रूप में उपयोग करने से अंडों में केवल आयोडीन की मात्रा ही नहीं बढ़ जाती है वरन् उनके योक का रंग भी सुधर जाता है।

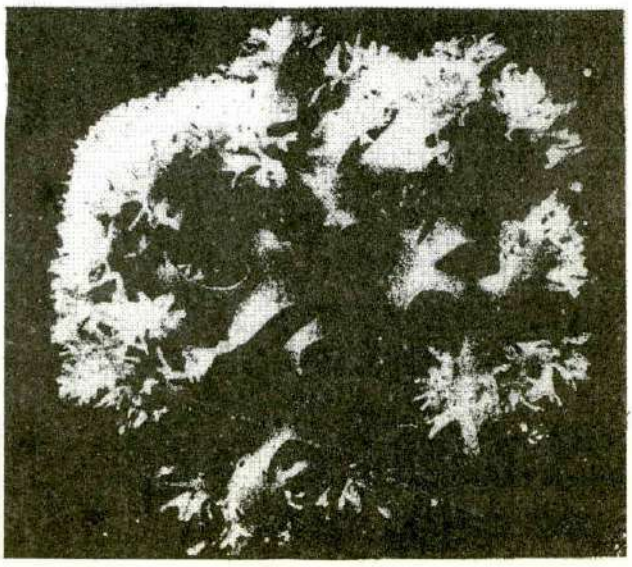

लाल शैवाल (*कोनड्रस क्रिस्पस*)

पशु चारे के रूप में समुद्री खरपतवारों का महत्त्व उनमें उपस्थित रंच तत्वों के कारण है। जहाँ तक कोबाल्ट का प्रश्न है वह इनमें थलीय घास की तुलना में 10 गुना अधिक होता है। कदाचित् इसीलिए पशु और मुर्गी चारों के रूप में समुद्री खरपतवारों का उपयोग काफी पहले ही आरंभ हो गया था।

पशु चारे के रूप में आमतौर से इस्तेमाल की जाने वाली प्रजातियाँ हैं *उल्वा, एंटेरोमोरफा, हायप्नीआ, ग्रासीलारिया, सारगासम, पडीना, डिक्टयोटा* आदि।

हमारे देश में नारियल के पेड़ों को खाद देने के लिए *सारगासम* प्रजाति के समुद्री खरपतवार का उपयोग किया जाता है।

जापान और चीन में पिछले लगभग 5 हजार वर्षों से समुद्री खरपतवारों को औषधियों की भांति इस्तेमाल किया जा रहा है। वहाँ इनका उपयोग गलगंड तथा अन्य ग्रंथिल व्याधियों के उपचार में किया जाता है। पाचन पथ में कृमियों को नियंत्रित करने के लिए मरीज को *कोराल्लिना आफीसिनेलिस* और *कोराल्लिना रूबेंस* जैसी लाल खरपतवार का, पेट और अंतड़ियों की बीमारियों के उपचार के लिए *कॉंड्रस क्रिस्पस, ग्रासीलारिया* और *जेलीडियम* प्रजातियों का उपयोग किया जाता रहा है। *कैरागीनान* व्रणों के उपचार में, और एल्जीनेट कुछ औषधियों की क्रियाशीलता की अवधि को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त की जाती है।

समुद्री खरपतवारों से अगार-अगार और एल्जीनेट जैसे पदार्थ भी तैयार किए जाते हैं। अगार-अगार जिलेटनी, कोलायडी कार्बोहाइड्रेट है जो *जिलीडिएल्ला एकेरोजा, जिलीडिएल्ला क्रासा, ग्रासीलारिया एडुलिरा, ग्रासीलारिया वेरूकोसा* और *ग्रासीलारिया कोर्टीकाटा* जैसी लाल शैवालों की कोशिका भित्तियों में मौजूद होता है। हमारे देश में अगार-अगार का उपयोग आइसक्रीम, जैली, डेसर्ट, सलाद आदि में तथा जीवाणुविज्ञान प्रयोगशालाओं में नमूने तैयार करने और रक्त के थक्के बनाने हेतु इस्तेमाल किया जाता है।

एल्जीनेटों का उपयोग औषधियों, सौंदर्य प्रसाधनों, कागज निर्माण तथा पेंट, कपड़ा आदि उद्योगों में किया जाता है। घोलकों में निलंबित रहे आने

के कारण उनका उपयोग एंटीबायोटिकों और कीटनाशियों में भी किया जाता है।

मैंग्रोव

सागर के तट पर जंगली रूप से उग आने वाले वृक्षों में मैंग्रोव का विशेष स्थान है। यह ज्वारनदमुखों, लैंगूनों के तटों तथा नदियों के किनारों पर, — उस स्थल तक जहाँ पानी में खारीपन रहा आता है — उगता है। यह उष्ण-कटिबंधीय वृक्ष है जिसे वायुमंडल और पानी, दोनों, के उच्च ताप चाहिए। वनस्पतिशास्त्रियों के अनुसार मैंग्रोव 60 प्रजातियों के होते हैं।

मैंग्रोव बहुत उपयोगी वृक्ष हैं। वे तटों पर होने वाले भूमिकटावों को रोकते हैं और चक्रवातों और ज्वारों के वेग को धीमा कर देते हैं। उनके झुंड अनेक वंशों के जीव-जंतुओं को आश्रय देते हैं और उन्हें प्रजनन स्थल प्रदान करते हैं।

प्राचीन काल से ही तट पर रहने वाले लोग इन्हें घरेलू ईंधन के रूप में इस्तेमाल करते आ रहे हैं। वैसे उनसे ईंधन के साथ-साथ इमारती लकड़ी चारा, टैनिन, मोम और अनेक औषध पदार्थ भी प्राप्त होते हैं।

हिंद महासागर का अधिकांश भाग भूमध्यरेखा और अंटार्कटिक के बीच स्थित है। इसलिए उसके तटों पर मैंग्रोव बहुतायत से उगते हैं। आस्ट्रेलिया के उत्तरी तट पर 27 प्रज़ातियों के मैंग्रोव पाए जाते हैं। साउदी अरब, ईरान की खाड़ी, अदन की खाड़ी, सोमालिया, और पूर्वी अफ्रीका के तटों पर ये कम पाए जाते हैं। हमारे देश के तटों और हमारे द्वीप समूहों — अंडमान-निकोबार तथा लक्षद्वीप समूहों — के तटों पर ये लगभग 3560 वर्ग किमी. के क्षेत्र में पैदा होते हैं परंतु इस क्षेत्र का लगभग 88 प्रतिशत भाग अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में स्थित है। बाकी क्षेत्र का अधिकांश भाग पश्चिमी तट पर है। वैसे हमारे पूर्वी तट पर भी गोदावरी और महानदी के डेल्टाओं और सुंदरबन में मैंग्रोव के बड़े-बड़े झुंड हैं।

हमारे देश में मैंग्रोव की 59 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनमें *राइजोफोरा म्युक्रोनाटा, राइजोफोरा एपीकुलाटा, एवीसेनिआ आफीसिलेनिस एवीसेन्निआ मैरीना* और *सेरीओप्स, एक्सोएसेरिआ* तथा *एक्रीस्टूसिन* प्रजातियाँ प्रमुख हैं।

तटीय प्रदेशों की बढ़ती हुई आबादी और उसके फलस्वरूप मैंग्रोवों के

वनों की कटाई में हो रही वृद्धि के कुप्रभाव मैंग्रोवों पर स्पष्ट होने लगे हैं। साथ ही सागर के तटों पर घरेलू कचरे, सीवर और औद्योगिक व्यर्थ पदार्थों के बढ़ते हुए ढेरों तथा थल पर से बह आने वाले पीड़कनाशी, कीटनाशी रसायन भी मैंग्रोव वनों को नष्ट कर रहे हैं।

कोरल और कोरल भित्तियाँ

कोरल भित्ति के निर्माता, कोरल क्षुद्र समुद्री जीव हैं जिसके दो भाग होते हैं — एक जंतु और एक पादप। दोनों सहजीविता के आधार पर एक दूसरे को मदद देते रहते हैं। जंतु भाग (पॉलिप) मांसाहारी होता है, जंतु प्लांक्टनों का भक्षण करता है और पादप (शैवाल) भाग को आश्रय देता है। शैवाल अंश (ज़ूजैंथेल्ले) प्रकाशसंश्लेषण क्रिया से ग्लूकोज़ और माल्टोज़ जैसे पदार्थों का निर्माण करके जंतु भाग को पोषण प्रदान करता है, उसकी वृद्धि में और कैल्शियम की जमावटों के निर्माण में मदद देता है। शैवाल अंश को प्रकाशसंश्लेषण क्रिया के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। इसलिए कोरल उष्ण कटिबंधीय, पारदर्शी, सागर के सुप्रकाशित क्षेत्र में ही रहते हैं।

कोरल बड़े-बड़े झुंडों में रहते हैं और अपने शरीर पर कैल्शियम कार्बोनेट की परत चढ़ाते रहते हैं। परत चढ़ाने की दर काफी धीमी, लगभग एक सेमी. प्रतिवर्ष जैसी धीमी होती है। परत के ऊपर परत चढ़ने से बने खोल बहुत कठोर होते हैं और उनके भीतर के जीव के मर आने के बहुत बाद भी वे कठोर बने रहते हैं। इन खोलों की बहुत विशाल मात्रा के जमा होते रहने से ही कोरल भित्तियाँ, कोरल द्वीप (अटॉल) तटीय पट्टियाँ, उत्थित (एलीवेटड) तट आदि बनते हैं। हिंद महासागर में ये सब संरचनाएँ पाई जाती हैं। समझा जाता है कि इनकी रचना में पांच हजार वर्षों से भी अधिक समय लगा होगा।

हिंद महासागर में ही आस्ट्रेलिया के उत्तर में स्थित बेरियर रीफ — कोरल के खोलों से बनी पहाड़ी जैसी संरचना — एक प्राकृतिक अजूबा है। वह सैंकड़ों किलोमीटर लंबी पहाड़ी है। उसमें अनेक वंशों और प्रजातियों के

जीव-जंतु स्थायी रूप से निवास करते हैं। ये जीव अपनी विविधता, सुंदरता और आकर्षण में अद्वितीय हैं। इसलिए कोरल भित्तियां तथा अन्य कोरल संरचनाएँ दर्शनीय स्थल बन गए हैं।

हिंद महासागर में 439 प्रजातियों के पथरीले (स्टोनी), 199 प्रजातियों के स्कैलेरैटिनिअन और 155 प्रजातियों के हरमाटाइपिक कोरल पाए जाते हैं।

कोरल निर्मित द्वीप किसी जलमग्न पहाड़ी के शीर्ष पर कोरल खोलों की, लाखों-करोड़ों वर्षों तक बनती रहने वाली जमावटों, के परिणाम होते हैं। जमावटों की ऊंचाई बढ़ जाने से वे सागर सतह के ऊपर आ जाती हैं। पर जमावटें उसके बाद भी उन क्षेत्रों में बनती रहती हैं जो सागर के संपर्क में रहते हैं। इस प्रकार इन द्वीपों के मध्य में झील जैसी संरचना बन जाती है। इन झीलों को 'लैगून' कहा जाता है।

चार्ल्स डारविन ने अपनी ऐतिहासिक यात्रा के दौरान (1831-1836) अटॉलों के निर्माण के बारे में सबसे पहले अपना सिद्धांत प्रस्तुत किया था।

हमारा लक्षद्वीप समूह (द्वीपों की कुल संख्या 36) अटॉल हैं। इनके बीच में स्थित लैंगूनों में खारी पानी, (ताप 32-38° सै. और लवणता 36 से 39.4 भाग प्रति एक हजार भाग) भरा हुआ है।

अंडमान-निकोबार द्वीप समूहों (द्वीपों की कुल संख्या 325) के भी अनेक द्वीप अटॉल ही हैं। लक्षद्वीप समूह के सब द्वीप पूर्णतः कोरल उद्गम के हैं जबकि इन समूहों के द्वीप ज्वालामुखियों की चोटियों पर कोरल-निर्मित द्वीप हैं। सामान्यतः उनके पूर्वी तट पर भित्तियाँ हैं और पश्चिमी तट के निकट बैरियर रीफ हैं तथा 40 मीटर तक गहरे लैगून हैं। अधिकांश फ्रिंजिंग रीफ उथले सागर (5 से 7 मीटर गहरे) में स्थित हैं।

मालदीव द्वीप समूह (द्वीपों की कुलसंख्या 1190) के निकट के सागर में लगभग 250 प्रजातियों के कोरल रहते हैं। वहाँ के अटॉलों के लैंगूनों में समुद्री घास तथा मैंग्रोव भी मौजूद हैं।

इनके अतिरिक्त मन्नार की खाड़ी, पाक खाड़ी और पम्बन पास में मंडपम के निकट, कच्छ की खाड़ी से मुंबई तक तथा विशाखापत्तनम के निकट भी तटीय कोरल भित्तियाँ हैं।

7—414 M/o HRD/2003

तटीय कोरल भित्तियाँ अन्य अनेक देशों यथा श्रीलंका, चैगोस द्वीप समूह, मॉरीशस, सेशल्स, म्यांमार, थाईलैंड, मलेशिया, मालागासी तथा इंडोनेशिया के तटवर्ती सागरों में भी पाई जाती है।

कोरल भित्तियों में पादप प्लांक्टन, जंतु प्लांक्टन, कीड़े, मछलियाँ, शैवाल मैंग्रोव आदि भी बहुतायत से मौजूद होते हैं।

मछली

यद्यपि सागर में असंख्य प्रजातियों के जीव निवास करते हैं परंतु सागर की (अथवा किसी भी अन्य जल राशि की) चर्चा करते समय जिस जीव का नाम सहज ही हर व्यक्ति की जबान पर आ जाता है वह है मछली। वास्तव में मछली ही "जल की रानी" है।

वैज्ञानिकों के अनुसार जीवन के विकासक्रम के आरंभिक युगों में जीव या तो सागर की सतह पर विचरण करते रहते थे अथवा उसकी तली पर चिपके रहते थे। बीच के खुले सागर में — जो कुछ क्षेत्रों में कई किलोमीटर गहरा है — वे जीवन यापन नहीं कर सकते थे। यह परिस्थिति अब से लगभग 45 करोड़ वर्ष पूर्व तक रही जब तक एक नई प्रजाति का जीव विकसित नहीं हो गया। वह जीव अपेक्षाकृत बड़ा और मजबूत था तथा लहरों, ज्वार-भाटाओं और जलधाराओं का डटकर मुकाबला कर सकता था। आज खुला विस्तृत, गहरा सागर, इसी जल में सांस लेने वाले, रीढ़धारी, चपल जीव का है। यह जीव है मछली। आज भी सागर में मछलियों की संख्या उन जीवों की तुलना में कहीं अधिक है जिनके कंकाल, हड्डियों की बजाय कार्टिलेज से बने होते हैं।

यद्यपि आज सागर की और ताजे पानी की अस्थियुक्त मछलियों की कुल ज्ञात प्रजातियों की संख्या 20,000 से भी अधिक है पर उनकी शारीरिक आकृति मूलतः वही है जो उनके विकास के समय थी क्योंकि जल में जीवन-यापन के लिए वह ही सर्वोत्तम है।

हमारे तटीय सागरों में मुख्य रूप से पाए जाने वाली मछलियाँ हैं सारडीन, मैकरल, एंकोवी, बाम्बे डक, कैट फिश, रिबन फिश, पोमफ्रेट, हिलसा

आदि।

भारतीय तटीय सागरों से जितनी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं उनमें से लगभग एक तिहाई सारडीन (*सार्डीनेला* प्रजाति की) मछलियाँ होती हैं। इनमें नौ किस्मों की मछलियाँ शामिल हैं परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण है ऑयल सारडीन (*सार्डीनेल्ला लांजीसेप्स*)। यह खादय मछली है। इसे ताजी और उपचारित, दोनों रूप में, खाया जाता है। इसके तेल को जूट, चमड़ा, साबुन और अन्य उद्योगों में इस्तेमाल किया जाता है और इसकी विष्ठा (ग्वानों) को तंबाखू, कॉफी, चाय आदि की खेती में उर्वरक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है क्योंकि उसमें नाइट्रोजन और फास्फोरस की मात्रा काफी होती है।

ऑयल सारडीन मुख्य रूप से पश्चिमी तट पर, विशेष रूप से मलाबार क्षेत्र में, पाई जाती है। वहां अगस्त से लेकर मार्च तक, विशेष रूप से सितंबर से जनवरी तक, इसके बड़े-बड़े झुंड आते हैं। इसका, खास तौर से इसके बच्चों का, प्रिय भोजन है डायएटम *फ्रैजिलारिया ओशिआनिका*।

प्लांक्टनभक्षी एक अन्य मछली, गिजार्ड शाड भी स्वादिष्ट खादय मछली

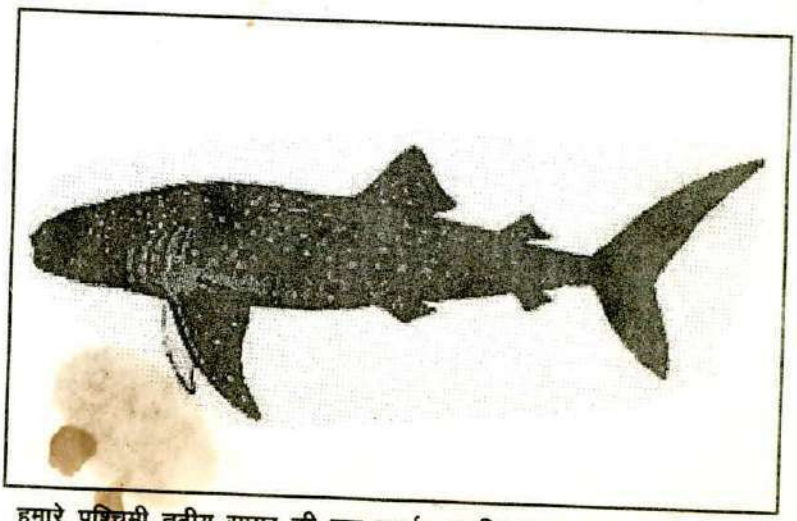

हमारे पश्चिमी तटीय सागर की एक शार्क। यद्यपि इसका नाम "व्हेल शार्क" (रिंकोडोन टाइपस) है परंतु यह बहुत डरपोक होती है और मुख्य रूप से प्लांक्टन ही खाती है

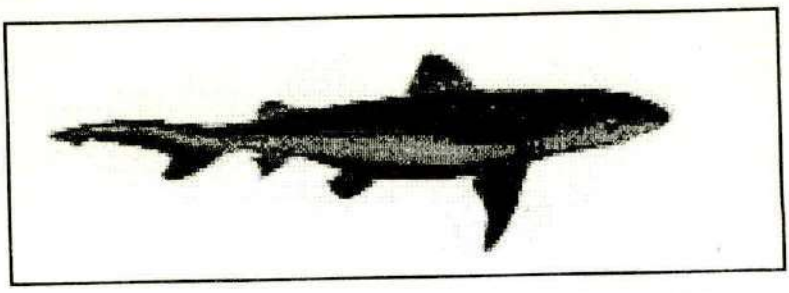

"गांगेय शार्क" (काचरिइनस गैंजेटिकस) जो नदियों में भी आ जाती है। यह सर्वभक्षी होती है और मनुष्यों पर भी आक्रमण करने में नहीं हिचकिचाती

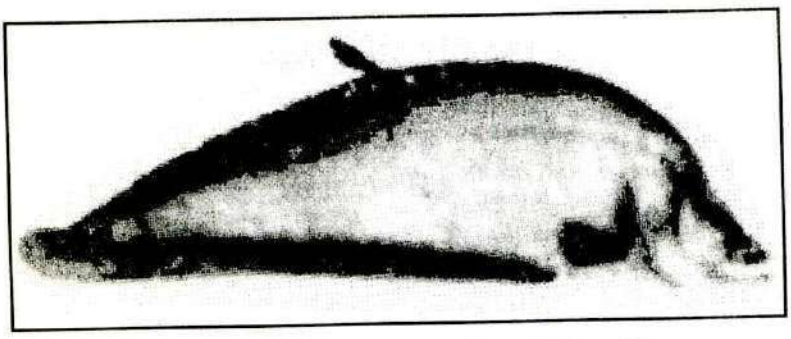

विचित्र आकार की, कूबड वाली, मछली, *नोटोप्टेरस चिराला*

है। यद्यपि यह मानसून ऋतु के अतिरिक्त वर्ष भर पकड़ी जाती है परंतु अपने प्रजनन काल में, नवंबर से फरवरी तक, इसका स्वाद बहुत बढ़िया होता है।

हमारे तटीय सागरों में भारतीय मैकरल (*रैस्ट्रेलिजर कनागुर्टा*) भी बहुत बड़ी मात्रा में पकड़ी जाती हैं परंतु उनमें से 95 प्रतिशत मात्रा पश्चिमी तट से, विशेष रूप से क्विलोन और रत्नागिरी के बीच के क्षेत्र से, पकड़ी जाती है। यह पादप और जंतु, दोनों प्रकार के, प्लांक्टनों का भक्षण करती है और पश्चिमी तट की ओर उसका आगमन प्लांक्टनों के झुंडों के आने के फलस्वरूप होता है। यह भी एक खादय मछली है और इसे आमतौर से ताजी खाया जाता है।

कहा जाता है कि जिस वर्ष हमारे तटीय सागरों से सारडीन और मैकरल कम आती हैं उस वर्ष एंकोवी मछलियों की बहुतायत हो जाती है। इसका

आगमन आमतौर से अगस्त से दिसंबर तक होता है। यह बृहत् (मैक्रो) प्लांक्टनों भक्षी है यद्यपि इसका मुख्य भोजन श्रिंप है। वैसे यह छोटी मछलियों को भी खा जाती है।

बांबे डक (*हार्पोडॉन नेहेरियस*) नाम से प्रसिद्ध मछली मुंबई के आस-पास के सागर में ही मुख्य रूप से पाई जाती है। यह एक खाद्य मछली है जिसे आमतौर से धूप में सुखा कर पैक भी किया जा सकता है।

भारतीय सामन (*इल्यूथीरोनीमा ट्रेटाडेक्टाइलस*) साल में दो बार, जनवरी से मार्च तक और जुलाई से सितंबर तक, अंडे देती है। यह अंडे तो सागर में देती है पर उनसे निकलने वाले बच्चे वयस्क होकर ज्वार के साथ नदियों में चले जाते हैं। वे विशेष रूप से, हुगली तथा भारतीय प्रायःद्वीप की नदियों में निवास करते हैं।

सागर में अंडे देने परंतु बाद में नदियों के मुखों – ज्वारनदमुखों – की ओर आ जाने वाली एक अन्य मछली है सफेद पांफ्रेट (*कॉड्रोप्लाइटीज* प्रजाति)। इसके बच्चे ज्वारनदमुखों में अधिक पाए जाते हैं। खाद्य मछलियों में पांफ्रेट का विशेष स्थान है। यह बंगाल की खाड़ी में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में मिलती है।

हमारे देश में सागर से प्रति वर्ष लगभग 25 लाख टन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, परंतु सागरवैज्ञानिकों का अनुमान है कि हमारे अनन्य आर्थिक क्षेत्र से लगभग 39 लाख टन मछलियाँ (22 लाख टन 50 मीटर तक के गहरे भागों से और 17 लाख टन उससे अधिक गहराई से) पकड़ी जा सकती हैं।

हमारे निकटवर्ती सागरों में मछली-बहुल क्षेत्रों का पता लगाने में हमारे जलपोत ***सागर संपदा*** ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

झींगे, चिंगट, लोब्स्टर

हमारे तटीय सागरों से मछलियों के अतिरिक्त झींगे, चिंगट, लोब्स्टर आदि भी बड़ी मात्रा में पकड़े जाते हैं। आमतौर से ये 50 मीटर गहरे सागर से ही पकड़े जाते हैं। ये बढ़िया किस्म के होते हैं, इसलिए विदेशों में उनकी बहुत मांग है। समझा जाता है कि इनका वार्षिक उत्पादन लगभग 1,23,000

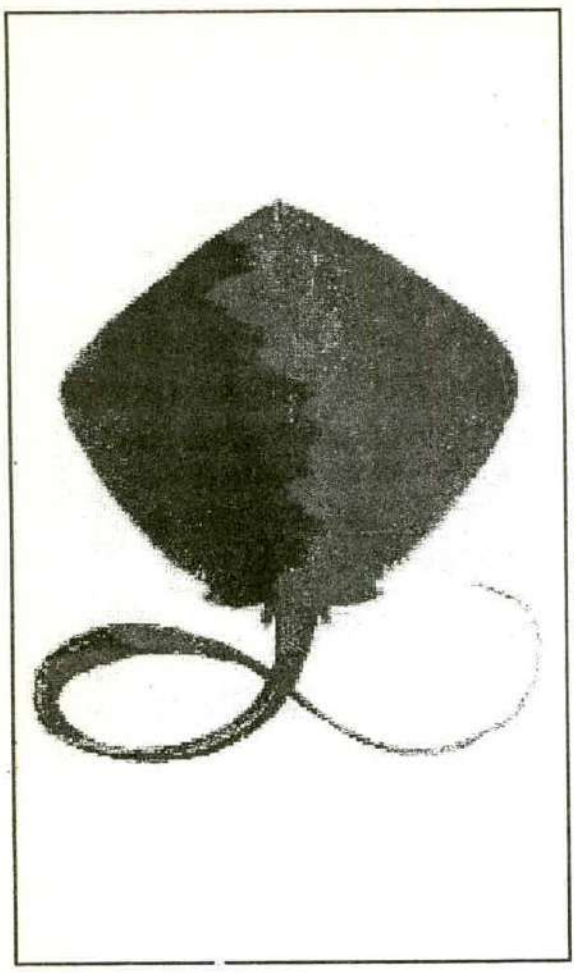

भारतीय तटों पर पायी जाने वाली एक रे मछली (*डेजीयेटिस पास्टीनेकस सेफेन*)। यद्यपि इसका आकार अन्य मछलियों से भिन्न है परंतु यह भी एक खाद्य मछली है

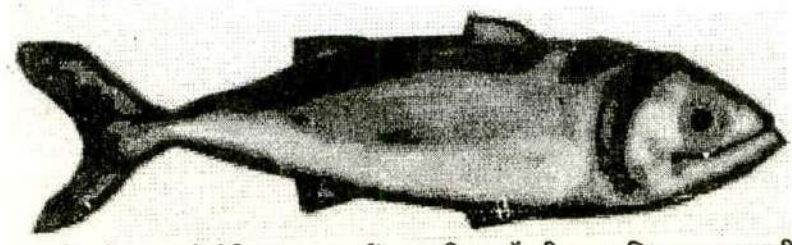

भारतीय मैकरल (*रैस्ट्रेलिजर कनागुर्टा*): भारतीय तटों की एक प्रसिद्ध खाद्य मछली

टन है, परंतु इनको पकड़ने के बारे में पर्याप्त सावधानियां नहीं बरती जातीं। अनेक बार ऐसे जीवों को भी पकड़ लिया जाता है जिनका जीवित रहना भविष्य में उत्पादन के लिए, जरूरी होता है। अतएव उनका उत्पादन घट रहा है और उन्हें पकड़ने के लिए और अधिक गहरे सागरों में जाना पड़ता है।

भारतीय तटों से पकड़े जाने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण लोब्स्टर है *पेनुलीरस होमारस*। यह कोरल भित्तियों के आस-पास, चट्टानी तटों पर, पाया जाता है। यह मांसाहारी प्राणी है और एक बार में 2 से 4 लाख तक अंडे दे देता है। यह कोलाचेल से कन्याकुमारी के बीच के क्षेत्र में सबसे अधिक मात्रा में पकड़ा जाता है।

जलकृषि

सागर का सबसे उपजाऊ क्षेत्र तट के निकट का उथला सागर होता है और उस क्षेत्र से पिछले कुछ दशकों में इस प्रकार से और इतनी मात्रा में मछलियाँ आदि पकड़ी गई हैं कि वहाँ उनका उत्पादन घटने लगा है। परंतु मछलियों की तलाश में खुले (तट से दूर के) और गहरे सागर में जाना लाभदायक नहीं होता क्योंकि वहाँ उनकी मात्रा अपेक्षाकृत बहुत कम होती है।

ऐसी स्थिति में मछलियाँ या अन्य जीवों को पकड़ना बहुत लाभदायक व्यवसाय नहीं रहा है। इसीलिए, अंशतः मजबूरी के फलस्वरूप और अंशतः सुविधा के कारण, लोगों का ध्यान सागर में खेती (जलकृषि) करने की ओर गया। इस संबंध में किए गए आरंभिक प्रयासों में मिली सफलता ने लोगों को ज्वारनद-मुखों में जलकृषि करने के लिए प्रेरित किया। इस दौरान प्रौद्योगिकी में हुई प्रगति के परिणामस्वरूप सागर में मछली तथा अन्य जीवों को 'पालने' में सफलता भी मिली। अतएव अब जलकृषि की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है।

अब यह प्रमाणित हो चुका है कि अस्सी के दशक में सागर से पकड़ी जाने वाली मछलियों और अन्य जीवों में 3.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जबकि

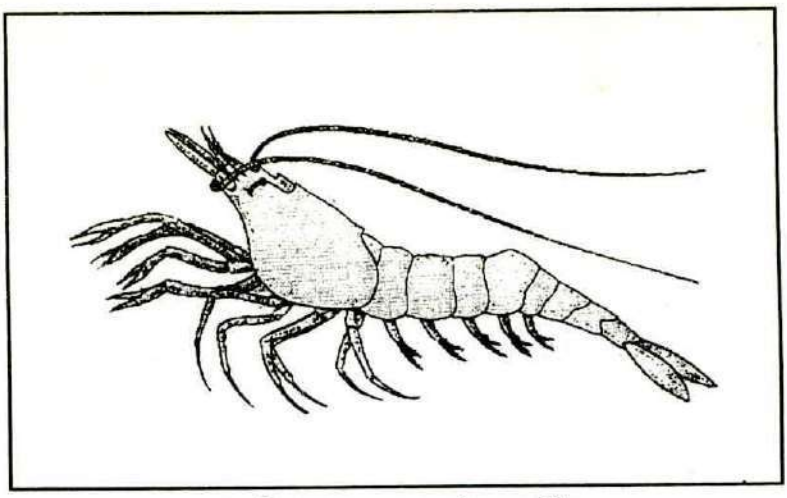

भारतीय तट पर पाए जाने वाला श्रिंप

जलकृषि की मदद से उनका उत्पादन 10 प्रतिशत बढ़ा है। आज संसार के अनेक देशों में, जिनमें हमारा देश भी शामिल है, समुद्री में "खेती" करके मछलियाँ, क्रस्टेशियन, मोलस्क, समुद्री खरपतवार आदि बड़े पैमाने पर प्राप्त की जा रही है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार वर्तमान में जलकृषि से मछलियों के कुल उत्पादन का लगभग 16 प्रतिशत भाग प्राप्त हो रहा है।

हमारे देश में लगभग 12 लाख हैक्टेयर तटीय क्षेत्र ऐसा है जहाँ जलकृषि की जा सकती है। भविष्य में इसमें तेजी से प्रगति होने की आशा है। इसलिए सागर में खेती करने की तकनीक की जरा विस्तार से चर्चा कर लें।

आज सागर में विशेष रूप से हिंद महासागर में जिन मछलियों को पालने के प्रयत्न किए जा रहे हैं उनमें प्रमुख हैं मिल्कफिश (*चेनॉस चेनॉस*), मुल्लेट (*म्यूजिल* प्रजातियाँ), टिलेपिया (*टिलेपिया मोसाम्बिका*), ईल (*ऐंग्विला* प्रजातियाँ) आदि।

मिल्कफिश – मिल्कफिश हिंद और प्रशांत महासागरों में बहुतायत से पाई जाने वाली, लवणता की घट-बढ़ को आसानी से सहन कर लेने वाली, खारी और ताजे, दोनों, जलों में पनप सकने वाली एक स्वादिष्ट खाद्य मछली

है। मादा मिल्कफिश की प्रजनन क्षमता बहुत अधिक होती है। वह अपने जीवनकाल में 50 लाख से भी अधिक अंडे दे देती है – शिशु मिल्कफिश सागर में ही यौन प्रौढ़ता प्राप्त कर लेती हैं और वहीं अंडे देती है – किसी घिरी जलराशि में नहीं। अंडों से बच्चे निकलने के बाद वे उथले सागरों, लेगूनों, संकरी खाड़ियों आदि में आ जाते हैं। वहाँ से ही उन्हें इकट्ठा करके "तालाबों" में पाला जाता है।

मिल्कफिश साल में दो बार अंडे देती है और बहुत तेजी से वृद्धि करती है। इसका प्रिय भोजन है नील-हरित शैवाल, डायएटम, कॉपिपॉड, फॉरमिनीफेरा आदि।

आजकल इसकी खेती इंडोनेशिया, फिलपीन, मलेशिया, थाईलैंड, वियतनाम और भारत में की जा रही है। इसको पालने के लिए ताजे पानी के तालाब तैयार किए जाते हैं। पहले तालाबों में से पानी निकाल लिया जाता है और उनमें उपस्थित परजीवियों और हानिकारी कीटों को मार दिया जाता है। फिर उन्हें अंशतः पानी से भरकर उसमें उर्वरक डाला जाता है तथा नील-हरित शैवाल या अन्य (मछलियों के) खाद्य मिलाए जाते हैं। मछलियों को भरपूर पौष्टिक भोजन देने के लिए इन तालाबों के पानी में धान की भूसी, खल आदि भी मिलाए जाते हैं। फिर सागर, लैगून, उथली खाड़ियों आदि से मिल्कफिश के शिशुओं को पकड़ कर उन्हें इन तालाबों में छोड़ दिया जाता है। यहाँ ये तेजी से वृद्धि करते हैं और शीघ्र ही इतने बड़े हो जाते हैं कि इन्हें पकड़ा जा सके।

इंडोनेशिया में इनका पालन खारी पानी के तालाबों में किया जाता है। इसके लिए वहाँ लगभग 1,20,000 हैक्टेयर क्षेत्र में तालाब बनाए गए हैं। वहाँ इनकी पैदावार की दर 250-1000 किग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष है। फिलीपीन में 1,60,000 हैक्टेयर क्षेत्र में मिल्कफिश पाली जाती है। वहाँ इसका उत्पादन 200-250 किग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष है। यद्यपि ताइवान में यह केवल 16,000 हैक्टेयर में ही पाली जाती है परंतु वहाँ इसका उत्पादन 1000-2500 किग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष है।

मल्लेट – मल्लेट विशेष रूप से ग्रे मुल्लेट, मिल्कफिश की तुलना में,

अधिक बड़े क्षेत्र में पाए जाने वाली एक शाकाहारी मछली है। यह सागरों के अतिरिक्त पश्च जलों और ज्वारनदमुखों में भी पाई जाती है। इसके अंडे और लार्वे वेलापवर्ती होते हैं। शिशु मुल्लेट नील.हरित शैवाल, हरी शैवाल और डायएटम आदि खाते हैं जबकि वयस्क मुल्लेट अपरद, डायएटम, शैवाल आदि खाना पसंद करती है।

मुल्लेट मिल्कफिश की तुलना में अधिक "सहनशील" होती है। यह 0 से लेकर 38 भाग प्रति एक हजार भाग तक लवणता और 3 से लेकर 35° सै. तक ताप सहन कर सकती है। इसलिए इसे हिंद और प्रशांत महासागरों के तटीय देशों में ही नहीं वरन् इस्राइल, इटली तथा अन्य भूमध्यसागरीय देशों में भी पाला जाता है। हमारे देश में इसे पश्चिम बंगाल, केरल और तमिलनाडु के तटों पर, खारी पानी के तालाबों में, पाला जाता है।

इसके लिए मानसून के बाद *म्यूजिल* प्रजातियों, विशेष रूप से *म्यूजिल मैक्रोलेपिस* और *म्यूजिल ट्रॉस्केलाई* के शिशुओं को संकरी खाड़ियाँ, लैगूनों और ज्वारनदमुखों से पकड़कर खारी पानी के तालाबों में छोड़ दिया जाता है। वहाँ ये तेजी से वृद्धि करते हैं और एक वर्ष के भीतर ही इतने बड़े हो जाते हैं कि इन्हें भक्षण के लिए पकड़ा जा सके।

टिलेपिया – *टिलेपिया मोसाम्बिका* पूर्वी अफ्रीका की देशज मछली है पर 1950 के दशक में इसे इंडोनेशिया ले जाया गया था जहाँ इसका उत्पादन तेजी से बढ़ा। वहाँ से ही यह भारत लाई गई। कुछ लोगों का मत है कि बड़े पैमाने पर पालने के लिए यह मछली सर्वोत्तम है। साथ ही यह एशियाई देशों के निवासियों के भोजन में प्रोटीन की कमी को पूरा करने का बढ़िया साधन भी हो सकती है।

यद्यपि मुख्य रूप से यह ताजे पानी की मछली है परंतु यह खारी पानी में न केवल रह सकती है वरन् अंडे भी दे सकती है। पानी की लवणता 30 भाग प्रति एक हजार भाग से ज्यादा हो जाने पर इसकी बढ़त रुक जाती है और 40 भाग प्रति एक हजार भाग से अधिक हो जाने पर इसका प्रजनन रुक जाता है। जहाँ तक पानी के ताप का प्रश्न है वह 20 से 35° सै. तक सर्वोत्तम होता है। टिलेपिया पौधों और छोटे जंतुओं को खाती है।

टिलेपिया के बारे में एक विलक्षण बात यह है कि यह अपनी आबादी बहुत तेजी से बढ़ाती है और शीघ्र वे तालाब जिनमें इसे पाला जाता है छोटे पड़ने लगते हैं। ऐसा हो जाने पर टिलेपिया की प्रजनन क्षमता पर प्रभाव नहीं पड़ता परंतु उसका आकार छोटा होता जाता है।

हमारे देश में गंगा के डेल्टा में बनाए गए खारी पानी के तालाबों में, कार्प मछली के साथ पाले जाने पर टिलेपिया की आबादी में बहुत तेजी से वृद्धि होती पाई गई है।

ईल — *ऐंग्विला* प्रजाति की ईल बहुत स्वादिष्ट खाद्य मछली है। इसीलिए जापान, इटली, इस्राइल, मिश्र, रूस, जर्मनी आदि में बड़े पैमाने पर पाली जाती है।

ईल समुद्राभिगामी मछली है। वह रहती तो नदी में है परतु अंडे देने सागर में जाती है। अंडों में से लार्वे निकलने के बाद वे सागर में वेलापवर्ती जीवन बिताते हैं पर "ईलेवर" (शिशु) में विकसित होते-होते वे ज्वारनदमुखों में आ जाते हैं और कालांतर में वयस्क हो जाने पर वहाँ से नदियों में चले जाते हैं। पर अंडे देने के लिए वे फिर सागर में आते हैं।

जलकृषि के लिए प्रतिवर्ष ज्वारनदमुखों से ईलेवरों को पकड़ कर उन्हें तालाबों में पाला जाता है। वहाँ उन्हें बूचड़खाने के मछलियों आदि के टुकड़े खाने को दिए जाते हैं। इनकी खुराक बहुत अधिक होती है। ये एक दिन में अपने वजन का 30 प्रतिशत तक भोजन खा लेते हैं। एक वर्ष में वे काफी बड़े हो जाते हैं। उस समय उन्हें पकड़कर बाजार में भेज दिया जाता है। जापान में तालाबों से 6,000 से 10,000 किग्रा. और बहते पानी से 26,000 से 46,000 किग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष तक ईल प्राप्त की जाती है।

हमारे देश में इलों की दो प्रजातियों, *ऐंग्विला बेंगालेंसिस* और *ऐंग्विला बाइकलर*, को ही पालने के प्रयोग किए गए हैं। ईलेवर हुगली, गोदावरी और तरमापारणी नदियों के डेल्टाओं से पकड़े गए थे। इन प्रयोगों में काफी सफलता मिली है परंतु अभी तक ईलों का व्यावसायिक पैमाने पर उत्पादन आरंभ नहीं हुआ है।

उपर्युक्त मछलियों के अतिरिक्त अन्य प्रजातियों की मछलियों को भी ज्वारनदमुखों और समुद्र में पाला जाता है। यद्यपि इन का उत्पादन इतनी मात्रा में नहीं होता जितना उपरोक्त मछलियों का परंतु इनमें से कुछ मछलियाँ बहुत स्वादिष्ट होती हैं। ऐसी कुछ मछलियाँ हैं — *लेटीज कैलकारीफर, एलोप्स सॉरस, एलोप्स मैचांटा*, भारतीय सामन आदि।

इनमें से *लेटीज कैलकारीफर* भारत के दोनों तटों तथा हुगली नदी के ज्वारनदमुख में और भारतीय सामन चिल्का झील में पाई जाती हैं। इनमें से पहली बहुत स्वादिष्ट होती है और उसकी मांग उत्पादन की तुलना में सदैव अधिक रहती है।

श्रिंप — पिछले दो दशकों में विदेशों में भारतीय श्रिंपों की मांग बहुत तेजी से बढ़ी है। इसलिए उन्हें, बिना समुचित सावधानियाँ बरते, बहुत बड़ी मात्रा में पकड़ा जाने लगा। परिणामस्वरूप उनके स्वाभाविक उत्पादन की दर काफी घट गई। इसलिए उनकी "खेती" करना जरूरी हो गया। वैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, जापान, ताइवान, बांग्लादेश, इंडोनेशिया, थाईलैंड, चीन आदि अनेक देशों में उनकी खेती की भी जा रही है। अब हमारे देश में भी श्रिंपों की खेती की जाती है।

इसकी खेती की परंपरागत तकनीक में सागर में पलने वाले श्रिंपों को, समुद्री पानी के साथ, ज्वारनदमुखों से अथवा पश्च जलों से पास की निचली धरती से खेतों में घुस आने दिया जाता है और वहाँ उन्हें पाला जाता है। परंतु समुद्री पानी में श्रिंपों के साथ परभक्षी मछलियाँ भी खेतों में घुस आती हैं और बड़ी मात्रा में उनका भक्षण कर लेती हैं।

नई तकनीक में ज्वारनदमुखों, ज्वारीय नहरों और मैंग्रोव वनों में से, विशेष जालों की मदद से, श्रिंपों के बीज पकड़कर, उनमें से बढ़िया जीवनक्षम बीजों को खारी पानी के तालाबों में पाला जाता है। जापान, ताइवान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि में श्रिंप पालन हेतु बेहतर तकनीकें इस्तेमाल की जाती हैं।

भारत में आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा और महाराष्ट्र के तटीय क्षेत्रों में, लगभग एक लाख हैक्टेयर क्षेत्र में, श्रिंप पाले जाते हैं। उनका वार्षिक

उत्पादन लगभग 700 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है। यह बड़ा लाभदायक व्यवसाय है। इसलिए अनेक व्यावसायिक फर्में इस व्यवसाय में पूरे जोरशोर से भाग लेना चाहती हैं। समझा जाता है कि अगले कुछ वर्षों में श्रिंपों के पाले जाने वाले क्षेत्र में 10,000 हैक्टेयर तक की वृद्धि हो सकती है।

यद्यपि लोब्स्टर और समुद्री केकड़े बहुत स्वादिष्ट होते हैं परंतु आजकल, विशेष रूप से हमारे तटीय क्षेत्रों में, उनकी खेती नहीं की जा रही है।

मसल – अन्य शैलफिशों की तुलना में मसल को पालना आसान होता है। भारतीय तटीय सागरों में जो मसल पाए जाते हैं उनको पालना, समशीतोष्ण कटिबंधीय मसलों की तुलना में, बहुत लाभदायक होता है। वे तेजी से वृद्धि करते हैं, अपेक्षाकृत जल्दी वयस्क हो जाते हैं और लगभग लगातार प्रजनन करते रहते हैं। यद्यपि आजकल प्राकृतिक स्रोतों से प्रतिवर्ष लगभग 12,000 टन हरे और ब्राऊन मसल पकड़े जाते हैं परंतु कलचर और प्रबंधन की आधुनिक तकनीकों का उपयोग करके इनका उत्पादन बहुत बढ़ाया जा सकता है।

पहले केंद्रीय समुद्री मत्स्यपालन अनुसंधान संस्थान द्वारा और बाद में राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान द्वारा मसल पालने के बारे में किए गए प्रयोगों से बढ़िया नतीजे प्राप्त हुए हैं। इन संस्थानों द्वारा विकसित तकनीकों से लगभग 480 टन मसल प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष प्राप्त हो जाते हैं।

मसलों के बारे में विलक्षण तथ्य यह है कि सागरों से पकड़े जाने वाले मसलों की तुलना में पाले जाने वाले मसल अधिक पोषक होते हैं।

खाद्य सीपी – हमारे तटीय सागरों में आठ *क्रैसोस्ट्रिया* प्रजातियों की खाद्य सीपियाँ बहुतायत से मिलती हैं। इनमें *क्रैसोस्ट्रिया ग्रिफॉयटीज* को गोवा और महाराष्ट्र के तटों पर और *क्रैसोस्ट्रिया मद्रासेन्सिरा* को तमिलनाडु के तट पर पाला जाता है। समझा जाता है कि गोवा के तट से प्रति वर्ष 200 टन और महाराष्ट्र के तट से 300 टन *क्रैसोस्ट्रिया ग्रिफॉयटीज* प्राप्त हो जाती है।

उड़ीसा के तट पर भी सोनापुर पश्च जलों में खाद्य सीपियाँ पाली जाती

हैं। वहाँ से 500 टन सीपियाँ प्रति वर्ष प्राप्त हो जाती हैं। भारतीय तटीय सागरों में खाद्य सीपियों के पाए जाने के फलस्वरूप निश्चय ही यह बात सामने आती है, यदि वहाँ इनकी समुचित तकनीकों से खेती की जाए तो बहुत लाभ हो सकता है।

मोती सीप – हमारे देश में कच्छ की खाड़ी (गुजरात) और मन्नार की खाड़ी (तमिलनाडु) में मोती सीपी पाई जाती है। इन दोनों स्थलों पर *पिंक्टाडा फुकैटा* प्रजातियाँ की सीपियाँ पाई जाती हैं। इनसे अधिकाधिक मात्रा में प्राकृतिक मोती प्राप्त करने की होड़ में, पर्याप्त सावधानियाँ न बरतने के फलस्वरूप, इनके स्रोत लगभग संपूर्ण रूप से नष्ट हो गए थे। इसलिए वर्ष 1971 में केंद्रीय समुद्री मत्स्यपालन अनुसंधान संस्थान ने कलचर्ड मोती प्राप्त करने के बारे में प्रयोग आरंभ किए। इन प्रयोगों में काफी सफलता मिली है। अब देश में व्यावसायिक पैमाने पर कलचर्ड मोती तैयार किए जा रहे हैं।

7 – खनिज संपदा

सागर में कई छोटी-बड़ी नदियाँ मिलती हैं। वे अपने साथ बड़ी मात्रा में पानी ही नहीं अवसाद भी लाती हैं, जिसका कुछ भाग पानी में घुला रहता है और कुछ उसमें छितराया हुआ रहता है। सागर में पहुँचने पर इनमें से अधिकांश पदार्थ विभिन्न भौतिक-रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप तली पर बैठने लगते हैं और धीरे-धीरे, लाखों-करोड़ों वर्षों में कई-कई किलोमीटर मोटी जमावटें बना लेते हैं। इन जमावटों में सागर के जीव-जंतुओं के अवशेष भी मिल जाते हैं। सागर के पानी के लगभग अथाह बोझ के नीचे दबे रहने से भी इनमें अनेक रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं।

यद्यपि सागर की तली की संरचना महाद्वीपीय तली से भिन्न है, परंतु उसमें भी अनेक खनिज मौजूद हैं। सागर के पानी में भी 60 से अधिक रासायनिक तत्वों के लवण घुले हुए हैं। इनके अतिरिक्त समुद्री जंतुओं के शरीर में भी खनिज उपस्थित होते हैं यद्यपि वहाँ उनकी सांद्रता बहुत कम होती है।

हिंद महासागर में गिरनेवाली नदियाँ प्रतिवर्ष लगभग 3,40,00,00,000 टन अवसाद अपने साथ लाती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप की 46 छोटी-बड़ी नदियाँ प्रतिवर्ष 1675 करोड़ घन मीटर पानी और 160 करोड़ टन अवसाद अपने साथ लाकर बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में डालती हैं। पानी और अवसाद की इन मात्राओं में प्रमुख योग गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियों का होता है। वे लगभग 1560 करोड़ घन मीटर पानी और 262 करोड़ किग्रा. अवसाद प्रतिवर्ष मिलाती हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप की अधिकांश नदियों के बंगाल की खाड़ी में गिरने के फलस्वरूप उनके द्वारा लाए जाने वाले पानी का तीन-चौथाई भाग और अवसाद का अधिकांश भाग बंगाल की खाड़ी में ही गिरता है।

भारतीय उपमहाद्वीप की अधिकांश नदियाँ संसार की अन्य नदियों की तुलना में कहीं अधिक मिट्टी और पत्थर आदि बहाकर लाती हैं। वे इस मिट्टी और पत्थर का अधिकांश भाग हिमालय को काटकर लाती हैं। वास्तव में वे हिमालय को जितनी तेजी से काट रही हैं, उतनी तेजी से कोई और नदी किसी अन्य पर्वत को नहीं काट रही है।

प्लेसर खनिज

सागर के तटों की रेत और रोड़ियों की जमावटों में अनेक खनिज भी मौजूद होते हैं। ये 'प्लेसर खनिज' कहलाते हैं। हिंद महासागर के प्लेसर खनिजों में दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी तट और मोजांबिक तथा तंजानिया के तटों पर मिलने वाले इल्मेनाइट, ज़िरकोन, मोनाज़ाइट, श्रीलंका के तट पर मिलने वाले इल्मेनाइट, रूटाइल, मोनाज़ाइट और गार्नेट शामिल हैं। म्यांमार, मलेशिया और इंडोनेशिया के ज्वारनदमुखों और पुलिनों पर टिन के खनिजों की बहुत विशाल जमावटें हैं जो सागर में काफी दूर तक फैली हुई हैं। इन जमावटों से ही विश्व के कुल टिन उत्पादन का बहुत बड़ा अंश प्राप्त होता है। आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट पर रूटाइल, इल्मेनाइट, ज़िरकोन और मोनाज़ाइट की जमावटें हैं।

हमारे तटों के प्लेसर खनिजों की मात्राओं का अनुमान इस प्रकार लगाया गया है : इल्मेनाइट 16 करोड़ टन; गार्नेट 3 करोड़ 63 लाख टन, ज़िरकोन 2 करोड़ 20 लाख टन, रूटाइल 78 लाख टन और मोनाज़ाइट एक लाख टन। इन प्लेसर खनिजों की जमावटें केवल केरल और तमिलनाडु के तटों पर ही नहीं वरन् आंध्र तथा उड़ीसा के तटों पर भी मौजूद हैं। मोनाज़ाइट में ही थोरियम के खनिज पाए जाते हैं। केरल की मोनाज़ाइट जमावटों में चेरालाइट खनिज भी मौजूद है, जिसमें थोरियम ऑक्साइड की काफी मात्रा (19 से 33 प्रतिशत तक) के अतिरिक्त यूरेनियम ऑक्साइड भी (4 से 6 प्रतिशत तक) मौजूद होता है। कहा जाता है कि हमारे देश में थोरियम खनिज के संसार के सबसे बड़े भंडार हैं।

हमारे तटों के प्लेसर खनिजों के भंडारों की खोज में राष्ट्रीय सागर-विज्ञान संस्थान और भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण ने बहुत योग दिया है।

पेट्रोलियम – यद्यपि सागर की तली में उपस्थित पेट्रोलियम को प्लेसर खनिज नहीं माना जाता परंतु हिंद महासागर में तटीय सागर से ही पेट्रोलियम प्राप्त किया जा रहा है। सागर से पेट्रोलियम निकालने के प्रयत्न अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही बाकू (तत्कालीन रूस) के निकट आरंभ किए गए थे और आज 80 से भी अधिक देश अपने निकट के सागरों से तेल (पेट्रोलियम) निकाल रहे हैं परंतु इनमें ईरान की खाड़ी के इर्दगिर्द स्थित देश (खाड़ी के देश – गल्फ कंट्रीज़) और सऊदी अरब के स्थान प्रमुख हैं। ईरान की खाड़ी में तेल के बहुत बड़े-बड़े भंडार हैं। इनसे निकाले जा रहे तेल से ही संसार के अधिकांश देश अपनी तेल-जरूरतों को पूरा कर पाते हैं। इसलिए जब खाड़ी के देशों में राजनैतिक उथल-पुथल होती है तब संसार भर में चिंता पैदा हो जाती है।

यद्यपि हमारे देश के निकटवर्ती दोनों सागरों, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी, में तेल के बड़े-बड़े भंडार हैं पर अभी तक अरब सागर, विशेष रूप से खंभात की खाड़ी और बॉम्बे हाई, से ही तेल और प्राकृतिक गैस निकाली जा रही है। हमारे देश में तेल और प्राकृतिक गैस आयोग की "ऑपरेशन लीप फ्रॉग" परियोजना के अंतर्गत अलियाबेट द्वीप के तट पर, 19 मार्च, 1970 को, पहला तेल कुँआ खोदा गया था। उसके ठीक एक वर्ष बाद उससे तेल निकलना शुरु हुआ था। यद्यपि उससे इतना तेल नहीं निकला जितनी आशा की जाती थी पर देश के इतिहास में यह एक अविस्मरणीय घटना थी।

बाद में तेल और प्राकृतिक गैस आयोग को मुंबई के निकटवर्ती सागर में तेल और गैस के भंडारों का पता लगाने में बहुत सफलता मिली। इसके लिए ***सागर सम्राट*** जैसे कुएँ खोदनेवाले जल-जहाजों की मदद ली गई। तट से लगभग 160 किमी. दूर और 'बॉम्बे हाई' के नाम से प्रसिद्ध इस समुद्री क्षेत्र में इतना तेल और गैस मिली कि हमारे वैज्ञानिक इसे देश को तेल के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के दिशा में बहुत बड़ा कदम समझने लगे। बॉम्बे हाई क्षेत्र में 1974 में कुएँ-खुदाई का काम आरंभ हुआ और अप्रैल, 1976 में पहले कुएँ से तेल निकाला जाने लगा। अब देश में तेल और गैस की अधिकांश मात्रा बॉम्बे हाई से ही प्राप्त हो रही हैं।

8—414 M/o HRD/2003

यद्यपि अभी तक देश के पूर्वी तट से पेट्रोलियम अथवा प्राकृतिक गैस नहीं निकाली जा रही है पर वहाँ से बड़ी मात्रा में पेट्रोलियम और गैस प्राप्त होने की पूरी आशा है तथा इस बारे में गंभीर प्रयास भी किए जा रहे हैं।

उथला सागर

फास्फोराइट जमावटें – हिंद महासागर में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जो फास्फोराइट खनिजों के निर्माण हेतु उपयुक्त हैं। अफ्रीका का पूर्वी तट, अरब प्रायःद्वीप का दक्षिणी तट, भारत का पश्चिमी तट, और अंडमान की महाद्वीपीय मार्जिनों में उत्स्रवण होता रहता है। इनमें से कुछ क्षेत्रों में फास्फोराइट का निर्माण भी हो सकता है।

हमारे देश की पश्चिमी महाद्वीपीय मार्जिन की तली पर लगभग 2.5 मीटर ऊँची कोरल और शैवाल-निर्मित छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं जो लगभग 150 किमी. दूरी तक फैली हुई हैं। इनमें 5-6 प्रतिशत तक फास्फेट मौजूद हैं। समझा जाता है कि 200 मीटर से अधिक की गहराई पर स्थित फास्फोराइट जमावटों में फास्फेट की मात्रा और अधिक हो सकती है।

चूनामय जमावटें – भारत के निकट के सागरों की तली की जमावटों में चूनामय पदार्थों की मात्रा 50-70 प्रतिशत तक है। कहीं-कहीं तो यह मात्रा बढ़कर 90 प्रतिशत तक हो गई है। लक्षद्वीप और अंडमान द्वीप समूहों के इर्दगिर्द के सागरों में तथा मन्नार की खाड़ी, पाक खाड़ी, कच्छ खाड़ी और गुजरात के तट पर इन जमावटों की मात्रा बहुत अधिक है।

गहरा सागर

बहुधात्विक पिंड – सागर, विशेष रूप से तट से दूर के गहरे सागर, की तली की ज़मावटों में कदाचित् सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे अधिक जमावट है बहुधात्विक पिंडों की। तली पर बहुधात्विक पिंडों की परतें नहीं हैं वरन् वे उस पर बिखरे पड़े हैं। इन छोटे-छोटे, आलू जैसे, अनियमित आकार के, पर अधिकांशतः गोलाकार, पिंडों से गहरे सागरों की तली का लगभग 4.7 करोड़ वर्ग किमी. क्षेत्र ढका हुआ है।

इन पिंड़ों की खोज सबसे पहले **चैलेंजर** अभियान के दौरान हुई थी। उसके बाद अनेक सागरों में बहुत बड़ी मात्रा में इनकी उपस्थिति का पता चला। इन बहुधात्विक पिंडों में आमतौर से मैंग्नीज की मात्रा सबसे अधिक, 25 से 50 प्रतिशत तक, होती है। इसलिए पहले इन्हें 'मैंग्नीज पिंड' ही कहा जाता था। वैसे इनमें लोहा, तांबा, कोबाल्ट, निकिल, क्रोमियम, जस्त आदि के लवण भी मौजूद होते हैं। ये धातुएँ मैंग्नीज की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए आजकल इन्हें 'बहुधात्विक पिंड' कहा जाने लगा है। यें पिंड किसी समुद्री जंतु के अवशेषों पर विभिन्न धातु लवणों की परतों के जमने से बनते हैं। ये लवण सागर के पानी में से अवक्षेपित होकर जमते रहते हैं। इनके जमने की गति काफी धीमी, 1-2 मिमी. प्रति 1,000 वर्ष जैसी धीमी, होती है।

अनुमान है कि विभिन्न सागरों की तली पर लगभग 1,70,000 करोड़ टन बहुधात्विक पिंड बिखरे पड़े हैं। यद्यपि प्रशांत महासागर की तली पर इनकी सांद्रता सबसे अधिक, 1.45 ग्राम प्रति वर्ग सेमी. तक है, पर हिंद महासागर में भी इनकी सांद्रता काफी अधिक है।

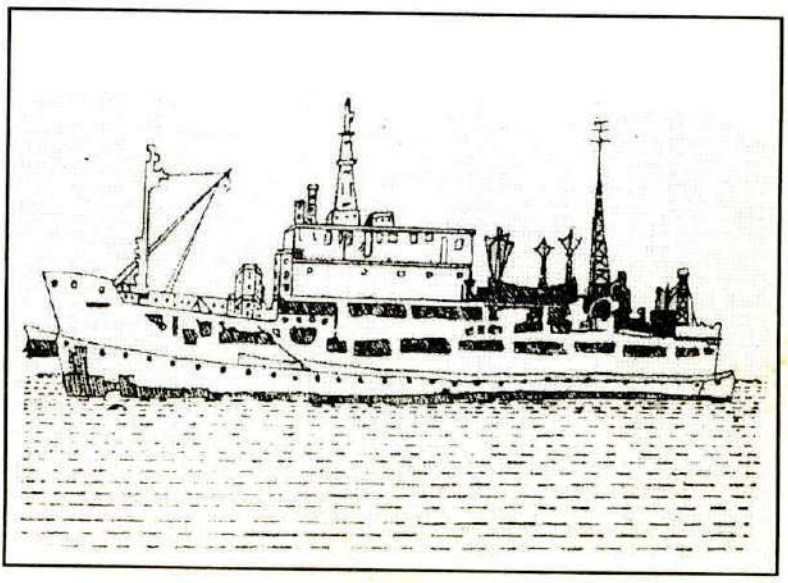

हमारा अनुसंधान पोत ''गवेषणी''

ये हिंद महासागर की तली पर सतह से 3.5 से 6 किमी. नीचे, एक करोड़ पचास लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं और लगभग एक करोड़ टन प्रति वर्ष की दर से बन रहे हैं।

लगभग 22 वर्ष पहले हमारे समाचारपत्रों में इन पिंडों के बारे में बड़े जोरदार समाचार प्रकाशित हुए थे। हमारे वैज्ञानिकों ने अपने ही अनुसंधान पोत ***गवेषणी*** का उपयोग करके प्रसिद्ध सागरवैज्ञानिक और राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान के तत्कालीन निदेशक, डॉ. एस. जैड. कासिम के नेतृत्व में, बिना किसी विदेशी सहायता के, 26 जनवरी, 1981 को मध्य हिंद महासागर बेसिन से बहुधात्विक पिंड निकाले थे। यह पहला अवसर था जब किसी विकासशील देश के वैज्ञानिकों ने ऐसा करिश्मा कर दिखाया था।

हिंद महासागर में पाए जाने वाले बहुधात्विक पिंड काले, गहरे भूरे रंग के, औसतन 8 सेमी. तक लंबे और 200 ग्राम तक भारी हैं। ये सागर में 3.5 से 6 किमी. तक की गहराई पर पड़े हैं। वहाँ इनकी सांद्रता 5 किग्रा. प्रति वर्ग मीटर तक है। हमारे वैज्ञानिकों द्वारा निकाले गए बहुधात्विक पिंडों में मैंग्नीज की मात्रा लगभग 15.5 प्रतिशत और लोहे की 13.7 प्रतिशत पाई गई है। उनमें सूक्ष्म मात्राओं में निकिल, तांबा, कोबाल्ट आदि धातुएँ भी मौजूद हैं।

अधिकांश पिंडों की भौतिक बनावट परतदार है। ये परतें कठोर क्ले, डायएटमी या रेडियोलारीन निपंक अथवा बेसाल्टी ज्वालामुखी चट्टानों के टुकड़ों पर धातु लवणों के जमने से बनी हैं। कुछ हालातों में ये परतें धातु लवणों के शार्क के दांत या व्हेल के कान की हड्डी जैसी वस्तुओं पर भी जमने से बनीं हैं। इनकी आंतरिक संरचना वृक्ष के तने के वार्षिक वलयों के लगभग सदृश्य है। इससे पिंडों के निर्माण का इतिहास ज्ञात किया जा सकता है।

पिंडों का निर्माण करने वाले धातु लवण सागर के उस पानी से ही आते हैं जिसमें वे कोलायडी रूप में अथवा घुली हुई अवस्था में मौजूद होते हैं। वैसे सागर के पानी में ये लवण नदियों के पानी से या ज्वालामुखी विस्फोटों अथवा खनिजों के विघटन से आते हैं। अनेक बार सागर के जीव भी लवणों को अपने शरीर में संचित कर लेते हैं। उन जीवों की मृत्यु के बाद, उनके शरीर के विघटन से भी ये लवण सागर में फैल जाते हैं। वास्तव में समुद्री जल इन लवणों से 'संतृप्त' रहता है।

जब मैंग्नीज और लौह लवणों के कोलायडी कण सागर की तली पर परिसंचरित होते हैं वे अपने वैद्युत आवेश के फलस्वरूप कठोर वस्तुओं, विशेष रूप से धात्विक पिंडों तथा जीवों के दांत, चोंच, नाखून जैसे अवशेषों, द्वारा आकर्षित हो जाते हैं और उन पर जमने लगते हैं। अनुमान है कि इस क्रिया में बैक्टीरिया भी योग देते हैं।

भारत सरकार द्वारा जुलाई, 1981 में, महासागर विकास विभाग की स्थापना के बाद, इन बहुधात्विक पिंडों के सर्वेक्षण, खोजबीन तथा नमूना लेने आदि के संबंध में किए जा रहे कार्यक्रम में बहुत तेजी आई। राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान उक्त विभाग की वित्तीय सहायता से यह कार्यक्रम कार्यन्वित कर रहा है।

तृतीय संयुक्त राष्ट्र सागर कानून सम्मेलन (अनक्लॉस-III) ने 30 अप्रैल, 1982 को एक प्रस्ताव पारित किया था। इसके अनुसार चार देशों नामतः भारत, फ्रांस, जापान और रूस तथा चार बहुराष्ट्रीय कंपनी संगठनों (संयुक्त राज्य अमेरिका में गठित) को गहरे सागर से बहुधात्विक पिंड निकालने के संदर्भ में 'पायोनियर इनवेस्टर' (अग्रणी निवेशक) के रूप में मान्यता दी गई। वास्तव में भारत ही ऐसा विकासशील देश है जिसे यह गौरव प्राप्त हुआ।

वर्ष 1986 तक उपलब्ध जानकारियों के आधार पर मध्य हिंद महासागर बेसिन में, 1,50,000 वर्ग किमी. के दो क्षेत्र छांटे गए। इन क्षेत्रों को 'अग्रणी' (पायोनियर) क्षेत्र माना गया और क्षेत्र 'ए' और 'बी' नामांकित किया गया। इनमें से किसी एक क्षेत्र में से भारत को बहुधात्विक पिंड निकालने का अनन्य अधिकार है।

	क्षेत्र ए	क्षेत्र बी
क्षेत्रफल (वर्ग किमी.)	1,50,000	1,50,000
बहुधात्विक पिंडों की औसत सांद्रता (किग्रा. प्रति वर्ग मीटर)	4.39	4.45
कुल मात्रा (करोड़ टन)	67.605	65.805
तांबा + निकिल + कोबाल्ट की कुल मात्रा (करोड़ टन)	1.088	1.096

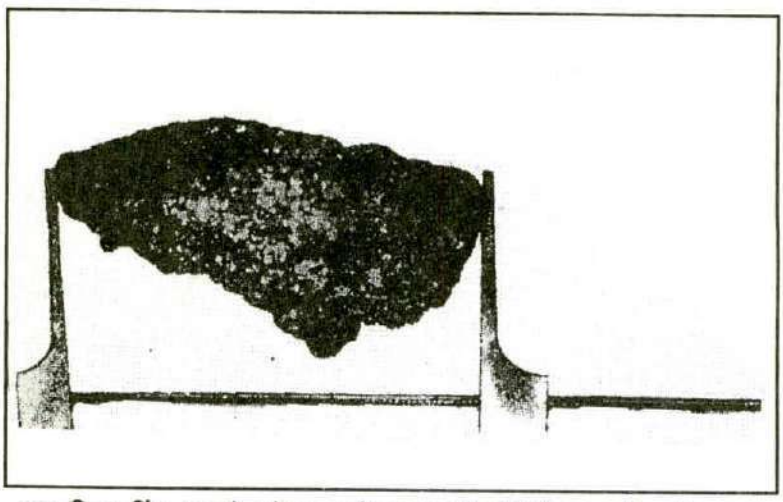

बहुधात्विक पिंड आमतौर से आलू के आकार के होते हैं पर कभी-कभी उनका आकार एक मीटर जैसा बड़ा भी हो जाता है

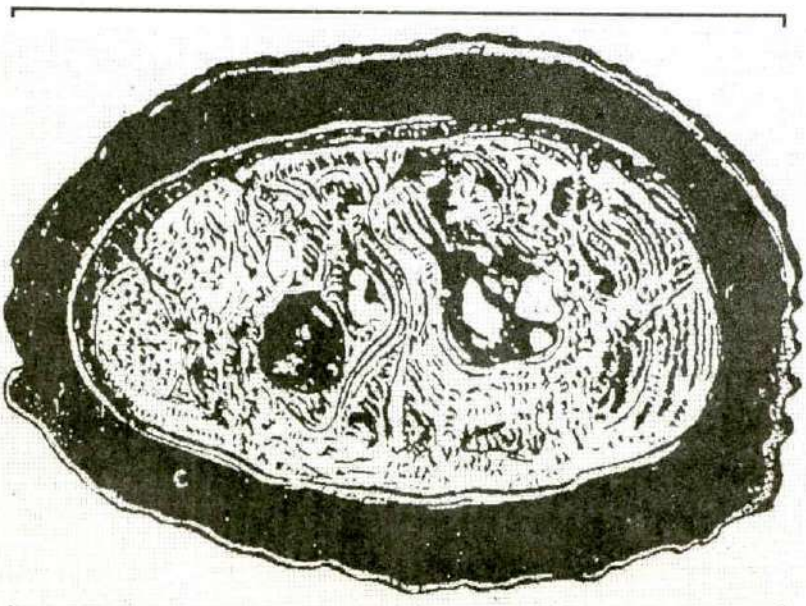

फास्फोराइट पिंड

उष्णजलीय जमावटें

उष्णजलीय जमावटें ऐसी बहुधात्विक सल्फाइड जमावटें हैं जिनमें जस्त, तांबा, कोबाल्ट, चांदी आदि जैसी महत्त्वपूर्ण धातुओं के खनिज भी मौजूद होते हैं। प्रशांत और अंध महासागरों में ऐसी जमावटें मध्य महासागरीय पर्वत श्रृंखला में पाई गई हैं। पहले हिंद महासागर की ऐसी जमावटों के बारे में जानकारी नहीं थी परंतु भारत-जर्मन संयुक्त परियोजना, 'जेमिनो' (जी.ई.एम.आई.एन. ओ.) के दौरान, 1983 में, मध्य हिंद महासागरीय पर्वत श्रृंखला में, रोडिग्ज ट्रिपिल जंक्शन के निकट, 21 और 24° दक्षिण अक्षांशों के बीच के क्षेत्र में, उष्णजलीय क्रियाओं के होने का पता चला है।

बैकआर्क बेसिनों में सागर की तली के फैलने, नीचे धंस जाने, ऊपर उठ जाने अथवा उसमें भ्रंश उत्पन्न हो जाने से ऐसी क्रियाएँ आरंभ हो जाती हैं जिनसे उष्णजलीय खनिजों का निर्माण होता है। अंडमान बेसिन एक ऐसी बैकआर्क बेसिन है जहाँ तली नीचे बैठ गई है और फैल रही है। अंडमान समूह के ही एक द्वीप, बैरन द्वीप, में कुछ वर्ष पहले हुआ ज्वालामुखी विस्फोट इस प्रकार की क्रियाओं का स्पष्ट प्रमाण है। इसके आधार पर अब अंडमान बेसिन में उष्णजलीय खनिजों की खोज की जा रही है।

लाल सागर की तली के खनिज

हिंद महासागर में लाल सागर की अपनी विशेषता है। अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान लाल सागर की तली में, सतह से लगभग 2 किमी. नीचे, जलमग्न पहाड़ी के साथ-साथ गर्म पानी के भंडारों का पता चला था। इन भंडारों में अत्यधिक गर्म (ताप 56° सै.) और अत्यधिक लवणता (250‰) वाला पानी मौजूद है। निश्चय ही इन भंडारों का संबंध पहाड़ी के पास स्थित ऊष्मा स्रोतों से है।

इन भंडारों की तली में 20 से 100 मीटर मोटी ऐसी जमावटें हैं जिनमें धातु सल्फाइडों का बाहुल्य है। जमावटों के नमूनों का विश्लेषण करने पर उनमें लोहा 20, जस्त 3.4, तांबा 1.3, और सीसा 0.1 प्रतिशत तथा निकिल,

क्रोमियम, कोबाल्ट, वैनेडियम, चांदी, सोना, मैंग्नीज आदि के रंच पाए गए हैं। इन जमावटों के निकट तांबे, वैनेडियम और जस्त खनिजों से युक्त जमावटों का भी पता चला है।

पानी में घुले खनिज

सागर के पानी में घुले लवणों में लगभग 99 प्रतिशत मात्रा छह तत्वों — क्लोरीन (55.02 प्रतिशत), सोडियम (30.60 प्रतिशत), गंधक (सल्फेट के रूप में 7.71 प्रतिशत), मैग्नीशियम (3.68 प्रतिशत), कैल्शियम (1.17 प्रतिशत) और पोटैशियम (1.13 प्रतिशत) — के लवणों की है। समुद्री पानी में आमतौर से 96.5 प्रतिशत शुद्ध पानी और 3.5 प्रतिशत लवण होते हैं। इस बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि एक घन किमी. पानी में लगभग 4 करोड़ टन लवण घुले हुए हैं। पूरे विश्व सागर के पानी में इतने लवण घुले हुए हैं अगर उन्हें पानी से बाहर निकालकर थल पर फैला दिया जाए तो पूरे थल पर उनकी 160 मीटर ऊँची तह बन जाएगी।

सागर के पानी में अनेक गैसें यथा ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइआक्साइड आदि भी घुली हुई हैं। सागर के पानी में इनकी इतनी अधिक मात्रा घुली हुई है कि उसे "वायुमंडलीय गैसों का संतृप्त घोल" कहा जा सकता है। उसमें आक्सीजन की मात्रा 7.0 भाग प्रति दस लाख भाग, नाइट्रोजन की 12 भाग प्रति दस लाख भाग और कार्बन डाइऑक्साइड की, जो पानी में बहुत घुलनशील है, 90 भाग प्रति दस लाख भाग है।

समुद्री पानी में प्राकृतिक रासायनिक तत्वों की घुली मात्रा

तत्व	मात्रा (मिग्रा. प्रति लि.)	तत्व	मात्रा (मिग्रा. प्रति लि.)
(1)	(2)	(1)	(2)
हाइड्रोजन	1,08,000	आर्सनिक	0.003
हीलियम	0.000005	सेलेनियम	0.004
लीथियम	0.17	ब्रोमीन	65

(1)	(2)	(1)	(2)
बरेलियम	0.0000006	क्रिप्टान	0.0003
बोरोन	4.6	रुबीडियम	0.12
कार्बन	28	स्ट्रांशियम	8
नाइट्रोजन	0.5	यट्रियम	0.0003
आक्सीजन	8,57,000	नियोबियम	0.00001
फ्लोरीन	1.3	मोलीब्डेनम	0.01
निओन	0.0001	चांदी	0.0003
सोडियम	10,500	कैडमियम	0.00011
मैग्नीशियम	1,350	रेडियम	<0.02
एलूमीनियम	0.01	टिन	0.003
सिलीकन	3	एंटीमनी	0.005
फास्फोरस	0.07	आयोडीन	0.06
क्लोरीन	19,000	जेनान	0.0001
आर्गोन	0.6	सीजियम	0.0005
पोटैशियम	380	बेरियम	0.03
कैल्शियम	400	लैंथानम	0.0003
स्कैंडियम	0.0004	सीरियम	0.0004
वैनेडियम	0.002	टंगस्टन	0.0001
क्रोमियम	0.00005	सोना	0.000004
मैंग्नीज	0.002	पारा	0.00003
लोहा	0.01	थैलियम	0.00001
कोबाल्ट	0.0005	बिस्मथ	0.00002
निकिल	0.002	रेडोन	0.6×10^{-15}
तांबा	0.003	रेडियम	1.0×10^{-10}
जस्त	0.01	थोरियम	0.00005
गैलियम	0.00003	पलेडियम	2.0×10^{-9}
जर्मेनियम	0.00007	यूरेनियम	0.003

नमक – सागर के पानी में जो लवण सबसे ज्यादा घुला हुआ है वह है साधारण नमक (सोडियम क्लोराइड) – वही नमक जिसके बिना हमारा स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन भी बेकार हो जाता है। वही नमक जो हमारे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

नमक ही वह पहली वस्तु थी, जिसे मनुष्य ने सागर से प्राप्त करना सीखा था। किसी रेतीले तट पर गर्मी के दिनों में सागर के पानी के उड़ जाने पर बाकी बच रहने वाले नमक को देखकर ही कदाचित् हमारे किसी पूर्वज ने नमक बनाना सीखा होगा। कहा जाता है कि चीनियों ने ईसा के जन्म से 2,200 वर्ष पूर्व ही नमक बनाना सीख लिया था। उस समय से लेकर आज तक भी, कुछ संशोधनों सहित, नमक प्राप्त करने के लिए सागर के पानी को रेत की क्यारियों में भरकर सुखाने की विधि ही इस्तेमाल की जाती है।

आज भी सागर से प्राप्त किए जाने वाले पदार्थों में नमक की मात्रा ही सबसे अधिक होती है। वैसे आजकल नमक एक अत्यंत उपयोगी औद्योगिक कच्चा माल भी बन गया है। जो देश जितना अधिक नमक खर्च करता है वह औद्योगिक रूप से उतना ही प्रगतिशील समझा जाता है।

समझा जाता है कि सागर के पानी से प्रति वर्ष प्राप्त किए जाने वाले नमक की कुल मात्रा 4 करोड़ टन है जिसमें भारत का योगदान 50 लाख टन है।

ब्रोमीन – यद्यपि सागर के पानी में ब्रोमीन की मात्रा बहुत कम, लगभग 65 भाग प्रति दस लाख भाग ही है पर उसकी सांद्रता थल की जमावटों में उपस्थित सांद्रता की तुलना में बहुत अधिक है। सागर में उपस्थित पानी की कुल मात्रा को ध्यान में रखने पर सागर से सदियों तक ब्रोमीन प्राप्त की जा सकती है।

ब्रोमीन फोटोग्राफी और औषधि-निर्माण में ही इस्तेमाल नहीं की जाती वरन् पेट्रोल उद्योग में भी उसका बहुत महत्त्व है।

पोटैशियम – सागर के पानी में घुले लवणों में पोटैशियम की औसत मात्रा लगभग 1.13 प्रतिशत है। पौधों की वृद्धि के लिए पोटैशियम के एक आवश्यक तत्व होने के नाते उसकी मांग दिन प्रति दिन बढ़ रही है।

सागर के पानी से पोटैशियम के लवण प्राप्त करने के लिए नमक बनाने की विधि के दौरान वह बिर्टन ली जाती है जिसका आपेक्षिक घनत्व 1.35 होता है। इसमें पोटैशियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के अनेक लवण मौजूद होते है।। इसे दो बार अवक्षेपित (प्रिसीपिटेट) करके 97-98 प्रतिशत शुद्धता के पोटैशियम लवण प्राप्त कर लिए जाते हैं । हमारे भावनगर स्थित केंद्रीय नमक और समुद्रीरसायन अनुसंधान संस्थान ने इस विधि में संशोधन करके इसे व्यावसायिक उत्पादन हेतु उपयुक्त बना दिया है।

भारी पानी – भारी पानी का उपयोग नाभिकीय रिएक्टरों में मंदक के रूप में किया जाता है। हिंद महासागर के भूमध्यरैखिक क्षेत्र में सतह के पानी में भारी हाइड्रोजन के अणु अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में मौजूद हैं। इसलिए उस क्षेत्र के कुछ देश उस पानी से भारी हाइड्रोजन प्राप्त कर रहे हैं।

सोना – सागर के पानी में सोना भी घुला हुआ है। यद्यपि उसकी मात्रा बहुत कम है, 0.004 मिग्रा. प्रति टन है, परंतु पिछले 100 वर्षों में सागर के पानी से सोना निकालने की पचास से भी अधिक विधियों के पेटेंट लिए जा चुके हैं। निश्चय ही इनमें से किसी भी विधि से उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली; सब विधियाँ अंततः कल्पनामात्र ही प्रमाणित हुईं। सागर के पानी से सोना निष्कर्षित करने के प्रयासों में एक ऐसी घटना भी शामिल है जिसका संबंध एक विश्वविख्यात वैज्ञानिक से था। ये वैज्ञानिक थे नोबेल पुरस्कार विजेता फ्रिट्ज़ हैबर।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पदार्थ : पेय जल

हिंद महासागर के तट पर बसे अधिकांश देश विकासशील देश हैं। उनकी पानी की वर्तमान आवश्यकता काफी कम है परंतु जैसे-जैसे वे प्रगति कर रहे हैं उनकी पानी की मांग भी तेजी से बढ़ रही है और उसकी पूर्ति वे केवल सागर से ही कर सकते हैं। वैसे आज भी ईरान की खाड़ी और लाल सागर के तट पर स्थित देश सागर के पानी को विलवणीकृत करके ही अपनी आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। वे सागर के पानी से ही पेय जल प्राप्त कर रहे हैं।

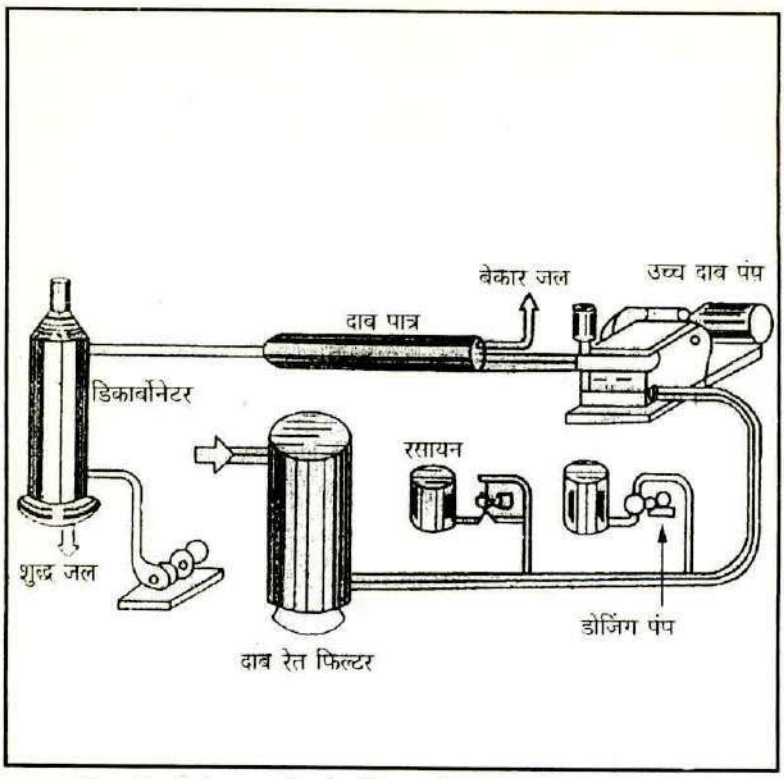

समुद्री पानी को पेयजल में परिवर्तित करने वाले एक संयंत्र का रेखाचित्र

सागर के जल में लवणों की अधिकांश मात्रा निकालने – उसे विलवणीकृत करने के लिए सिद्धांततः तीन विधियाँ इस्तेमाल की जाती हैं : आसवन (डिस्टीलेशन), इलेक्ट्रोडायलिसिस और प्रतिलोम परासरण (रिवर्स ऑसमोसिस)।

पानी को आसवित करने की विधि केवल उसी स्थान हेतु उपयुक्त होती है जहाँ ईंधन बहुत सस्ता होता है।

इलेक्ट्रोडायलिसस विधि से उसी खारी पानी को पेय जल में बदलना लाभकारी होता है, जिसकी लवणता 5% से अधिक नहीं होती।

आसवन की तुलना में प्रतिलोम परासरण विधि सस्ती और सरल है

यहाँ यह बता देना उल्लेखनीय होगा कि हमारे केंद्रीय नमक और समुद्रीरसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर, में भी सौर ऊर्जा से पानी आसवित करने के बारे में तथा प्रतिलोम परासरण झिल्ली विधि को अधिक सुचारु बनाने के बारे में महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए हैं।

इस संस्थान द्वारा विकसित विधि को बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने के लिए भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स, लिमिटेड, हैदराबाद, और ऐरो टैक्नोलॉजी, अहमदाबाद, को लायसेंस दे दिए गए हैं।

महासागर विकास विभाग की वित्तीय सहायता से 5000 लिटर प्रतिदिन की क्षमता वाले दो प्लांट स्थापित किए गए हैं। इनमें से एक आंध्र प्रदेश में टुनी के निकट गिल्लेडुपादे स्थान पर और दूसरा चेन्नई के निकट पुथागारम स्थान पर स्थापित किया गया।

---

8 – ऊर्जा का अक्षय स्रोत

सागर में ऊर्जा के भी विशाल भंडार हैं। उसमें विभिन्न रूपों में ऊर्जा भंडारित हैं। ऊर्जा उसके ज्वार-भाटों में है, उसके जल स्तरों के तापों के अंतर में है, उसकी लहरों में है, उसके पानी की लवणताओं के अंतर में है, उसकी धाराओं में है और यहाँ तक उसमें उत्पन्न होने वाली वनस्पति, उस पर बहने वाली पवन और उसकी तली के नीचे (भूतापीय ऊर्जा के रूप में) भी भंडारित है।

ओटेक

सौर ऊर्जा को भंडारित करने में पानी का एक गुण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। वह है उसकी अत्यंत उच्च ऊष्मा धारिता (थर्मल कैपेसिटी)। इसके फलस्वरूप ही सागर का पानी ऊर्जा की अत्यंत विशाल मात्रा (3×10^{24} जूल) भंडारित किए हुए है।

सूर्य की किरणें पानी में बहुत दूर तक प्रवेश नहीं कर पातीं। सौर प्रकाश की गर्मी पैदा करने वाली अवरक्त और लाल किरणों की प्रवेश क्षमता तो बहुत-ही कम है। उनका अवशोषण पानी की ऊपरी परतों में ही हो जाता है। फलस्वरूप सागर की सतह का पानी काफी गर्म हो जाता है, पर गहरे भागों का पानी ठंडा ही रहा आता है।

इससे सागर में पानी के ऐसे स्तर बन जाते हैं जिनके तापों में काफी अंतर होता है। यह अंतर अनेक बार 25° सै. से भी अधिक हो जाता है। इसी तापांतर का उपयोग किया जाता है "सागर ऊष्मा ऊर्जा रूपांतरण" (ओशन थर्मल एनर्जी कंवर्ज़न) तकनीक में (सागर ऊष्मा ऊर्जा रूपांतरण अथवा ओशन थर्मल एनर्जी कंवर्ज़न नाम काफी बड़े हैं। इसलिए इस तकनीक का संक्षिप्त नाम 'ओटेक' — ओ.टी.ई.सी. — ही अधिक प्रचलित है। हम भी इसी नाम का उपयोग करेंगे)।

भौतिकशास्त्र की दृष्टि से ओटेक तकनीक एक 'ऊष्मा इंजन' (हीट इंजन) है और उसका आधारभूत सिंद्धांत वही है जो प्रचलित ताप बिजलीघर का होता है। ओटेक तकनीक में सागर-सतह के गर्म पानी और लगभग 1,000 मीटर गहराई से निकाले गए (ठंडे) पानी के तापों के अंतर का उपयोग करके बिजली पैदा की जाती है। उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में सागर की सतह के पानी का ताप 25° सै. जैसा ऊँचा होता है और 1,000 मीटर गहरे पानी का —1° सै. जैसा नीचा। इसलिए ओटेक तकनीक के लिए वे सबसे उपयुक्त स्थल बन जाते हैं।

ओटेक संयंत्र के गर्म और ठंडे जलों के तापों में प्रचलित बिजलीघरों की अपेक्षा कम अंतर होता है। इसलिए उसकी दक्षता भी काफी कम होती है। प्रचलित ताप बिजलीघर की कार्नो दक्षता लगभग 80 प्रतिशत होती है और ओटेक तकनीक की मात्र 7 प्रतिशत (व्यवहार में दक्षता और भी घट जाती है) परंतु सागर में गर्म और ठंडे जल इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं कि अत्यंत कम दक्षता की भी पूर्ति हो जाती है।

ओटेक तकनीक का उपयोग करने का सर्वप्रथम प्रयत्न फ्रांस के वैज्ञानिक आसेन द आर्सोन्वल ने, वर्ष 1881 में, किया था। उसके बाद 1920 के दशक में उनके ही एक शिष्य, जॉर्ज क्लॉड, ने भूमध्यसागर में भारी नौका का उपयोग कर पहली बार ओटेक की व्यावहारिक सफलता प्रदर्शित की। 1930 में उन्होंने क्यूबा की मतांजस खाड़ी में एक बिजलीघर भी बनाया था। पर दुर्भाग्यवश कुछ समय बाद ही वह समुद्री तूफान में नष्ट हो गया।

ऊर्जा की तेजी से बढ़ती खपत और उससे भी तेजी से बढ़ते ईंधनों के मूल्यों ने 1970 के दशक में लोगों का ध्यान इस ओर फिर आकर्षित किया। अब दो अमेरिकी वैज्ञानिकों, जे. हिल्बर्ट एंडरसन और उनके पुत्र जेम्स एंडरसन, ने ओटेक में रुचि दिखाई और गंभीरतापूर्वक अपने प्रयोग आरंभ किए। उन्होंने पहले क्लॉड के यंत्रों में अनेक संशोधन किए, उन्हें परिमार्जित किया और उनकी क्षमता में अत्यंत वृद्धि करके उन्हें इस योग्य बनाया ताकि उनसे बिजली बनाकर लोगों को दिखाई जा सके। उन्होंने मई, 1975 में, ओटेक पर तीसरी कार्यशाला के मौके पर, ह्यूस्टन, संयुक्त राज्य अमेरिका, में ओटेक

तकनीक से बिजली पैदा करने वाले एक कार्यकारी मॉडल का प्रदर्शन करके इसकी सफलता भी प्रमाणित कर दी। उनका लगभग 200 वाट बिजली पैदा करने वाला यह मॉडल तीन मीटर ऊंचे एक बाक्स के सदृश्य था जिसमें कार्यकारी तरल के रूप में प्रोपेन (रिफ्रीजरेंट आर-11) का उपयोग किया गया था। उन्होंने अपने मॉडल को "सागर की मार्फत सौर ऊर्जा का उपयोग करने वाले यंत्र" की संज्ञा दी थी।

ओटेक तकनीक से बिजली बनाने के लिए सिद्धांततः अमोनिया अथवा प्रोपेन जैसे शीघ्र वाष्पित होने वाले किसी 'कार्यकारी तरल' को कोष्ण पानी में रखी एक लंबी नलिका में, पंप की मदद से, भर दिया जाता है। कोष्ण जल की ऊष्मा इस तरल को वाष्पित करती है। इस वाष्प से एक टरबाइन को चलाया जाता है जो जनरेटर को चलाती है। इतना कार्य करने से वाष्प ठंडी हो जाती है और उसे पुनः द्रव में बदलने के लिए ठंडे पानी में रखे पात्रों में पहुँचा दिया जाता है। फिर उस द्रव को कोष्ण पानी में रखे बॉयलर में पंप कर दिया जाता है। बॉयलर में यह द्रव भाप में बदल जाता है और इस प्रकार चक्र चलता रहता है।

पर इस सिद्धांत को कार्य रूप देना, उसके लिए यंत्र बनाना और उनकी मदद से सागर से ऊर्जा (बिजली) प्राप्त करना काफी कठिन और श्रमसाध्य काम हैं जिनमें यंत्रों के निर्माण और उनकी स्थापना में काफी समय और पूंजी की ज़रूरत होती है।

ओटेक तकनीक से बिजली बनाने के लिए सागर में बहुत मजबूत और क्षरणसह्य चबूतरे, लगभग वैसे चबूतरे की ही, जैसा सागर से तेल निकालने के लिए बनाया जाता है; लगभग 30 मीटर व्यास के एक किमी. लंबे पाइप की, एक समुचित ऊष्मा विनिमयक (हीट एक्सचेंजर) आदि की जरूरत होती। सागर के पानी की संक्षारक क्षमता (कोरोसिव केपैसिटी) बहुत अधिक है। इसलिए इन सब यंत्रों को संक्षरण से बचाने के लिए समुचित उपाय भी करने जरूरी होते हैं।

इस तरह ओटेक संयंत्र की स्थापना और उससे बिजली पैदा करने में अब भी बहुत अड़चनें हैं। इन अड़चनों में बहुत बड़ी मात्रा में धनराशि की

आवश्यकता भी शामिल हैं पर इसका अर्थ नहीं कि ओटेक तकनीक को एकदम त्याग ही दिया जाए। ऐसा बिलकुल भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि एक बार ओटेक संयंत्र के चालू हो जाने के बाद उससे इतनी अधिक मात्रा में और इतनी सस्ती बिजली मिलने लगेगी कि प्रचलित तरीके के बिजलीघरों की जरूरत ही नहीं रहेगी। ओटेक उन देशों के लिए विशेष रूप से लाभदायक है जिनके पास कोयले या पेट्रोलियम जैसे ईंधनों के पर्याप्त भंडार नहीं हैं और न ही पनबिजली उत्पन्न करने के संभाव्य स्रोत परंतु उनके पास लंबे सागर तट हैं। इस प्रकार सुदूर सागर में स्थित छोटे द्वीप-देशों के लिए ओटेक विशेष रूप से उपयोगी तकनीक है।

ओटेक तकनीक के पक्ष में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह प्रदूषणरहित है। उससे बिजली उत्पादन के दौरान कोई हानिकारी पदार्थ पैदा नहीं होता। साथ ही कोयले से चलने वाले ताप बिजलीघरों की भांति उसमें बेकार बच रहने वाली राख आदि को निपटाने की समस्या भी पैदा नहीं होती। इसलिए वह बिजली पैदा करने की नाभिकीय तकनीक की तुलना में कई गुनी बेहतर है।

मोटे तौर पर ओटेक संयंत्र की स्थापना तीन प्रकार से की जा सकती है : सागर में तिरते चबूतरे पर, चबूतरे के निकट ही तिरते जहाज पर कारखाने लगाकर तथा थल पर। पहली दशा में सागर में एक विशाल चबूतरा बनाया जाता है। यह चबूतरा सागर में तिरता रहता है और इसी पर पूरा संयंत्र, स्थापित किया जाता है। उसमें पैदा होनेवाली बिजली को जलमग्न तारों द्वारा थल पर ले जाया जाता है।

दूसरे किस्म के संयंत्र में ये काम (कारखाना चलाना आदि), जिनके लिए बिजली पैदा की जाती है, सागर पर ही, ओटेक संयंत्र स्थल के निकट ही, स्थापित करने होंगे। ये कारखाने जहाजों पर स्थापित किए जा सकते हैं और इनमें ऐसी वस्तुएँ, यथा अमोनिया, हाइड्रोजन, एलूमीनियम आदि बनाई जा सकती है जिनके उत्पादन में बड़ी मात्रा में बिजली की आवश्यकता होती है। यद्यपि इस प्रकार के ओटेक संयंत्र की स्थापना पर ही उसका आर्थिक पक्ष निर्भर होता है, पर इनमें एक बड़ा लाभ होता है — बिजली ले जाने के लिए

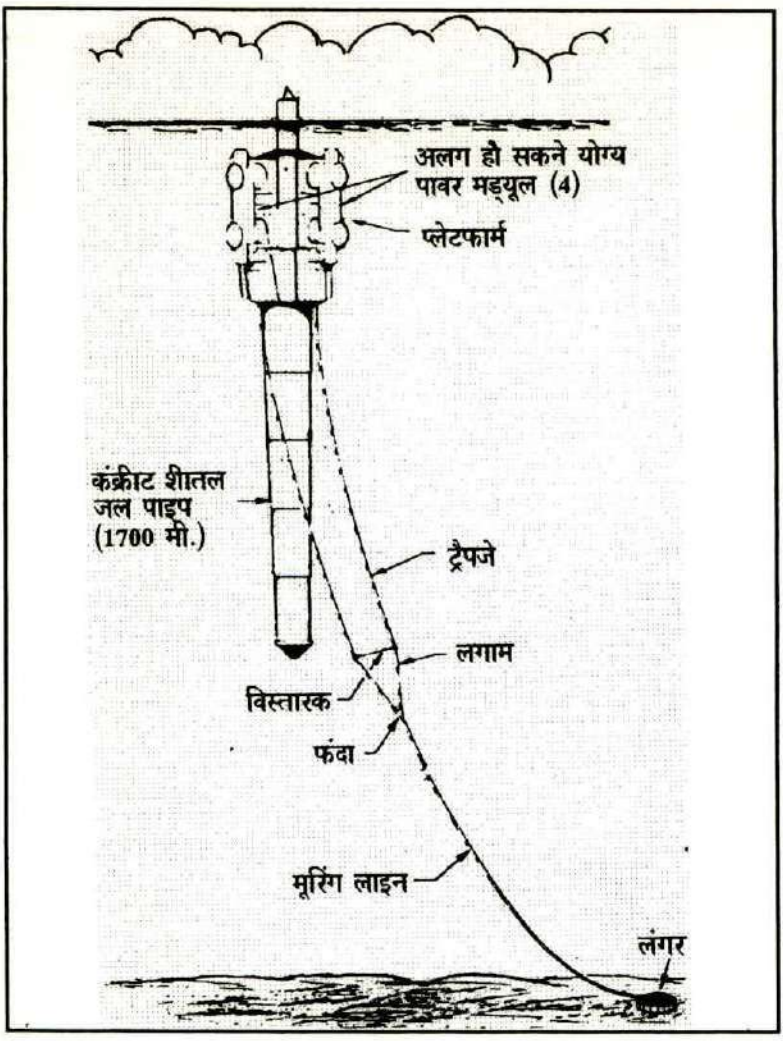

ओटेक संयंत्र की सरल रूपरेखा

सैकड़ों किलोमीटर लंबे जलमग्न तारों की बचत होती है।

तीसरे प्रकार के ओटेक संयंत्र तट पर स्थापित किए जाते हैं पर इनके लिए गुनगुने और ठंडे जलों को बड़े-बड़े पाइपों द्वारा गहरे सागर से लाना होगा। इस प्रकार के संयंत्र वर्तमान प्रौद्योगिक ज्ञान की मदद से आसानी

से बनाए और स्थापित किए जा सकते हैं। समझा जाता है कि भविष्य में इसी प्रकार के ओटेक संयंत्रों की स्थापना अधिक होगी।

ओटेक तकनीक से बिजली बनाने में संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, नारू (प्रशांत महासागर में स्थित द्वीप-देश), फ्रांस, ब्रिटेन तथा भारत आदि अनेक देशों ने बहुत रुचि दिखाई है। उन्होंने इस दिशा में काफी ठोस काम भी किया है। वैसे पहला व्यावसायिक ओटेक संयंत्र नारु में स्थापित किया गया था और उसने कुछ समय तक बिजली बनाई भी थी।

भारत में ओटेक – क्या भारत के तटों पर भी ओटेक संयंत्र लगाए जा सकते हैं ? हाँ। हमारे तटवर्ती सागरों के विभिन्न जलस्तरों में होने वाले तापांतर बिजली बनाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। यहाँ सतह के पानी का ताप लगभग 20° सै. है और 1,000 मीटर गहरे पानी का लगभग 5° सै.। विशेषज्ञों का मत है कि देश के पश्चिमी और पूर्वी तटों के निचले भागों में तथा लक्षद्वीप और अंडमान द्वीप समूहों के तटों पर छोटे-छोटे, 25 से 50 मेगावाट क्षमता तक के, अनेक ओटेक संयंत्र स्थापित किए जा सकते हैं। ये बिजली की स्थानीय कमी को आसानी से दूर कर सकते हैं।

आजकल महासागर विकास विभाग के अंतर्गत कार्यरत चैन्नई स्थित राष्ट्रीय सागर प्रौद्योगिकी संस्थान, (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओशन टैक्नोलॉजी), तमिलनाडु के तट पर, तूतीकोरन से लगभग 60 किमी. दूर एक मेगावाट क्षमता वाला एक ओटेक संयंत्र स्थापित कर रहा है। तूतीकोरन के तट पर सागर की सतह पर पानी का ताप 29° सै. है और 1000 मीटर गहराई पर 7° सै.। सतही और गहरे पानी के स्तरों के तापों का यह अंतर ओटेक संयंत्र के लिए बहुत उपयुक्त है।

यह संयंत्र 'रेंकिन चक्र' (बंद चक्र) तकनीक के अनुसार कार्य करेगा और इसमें कार्यकारी तरल के रूप में अमोनिया इस्तेमाल की जाएगी। इस संयंत्र में गुनगुना पानी 2100 किग्रा. प्रति सैकेंड; ठंडा पानी 1490 किग्रा. प्रति सैंकेंड और अमोनिया 31.6 किग्रा. प्रति सैकेंड की दर से प्रवाहित की जाएगी। इसका ऊष्मा विनिमयक (हीट एक्सचेंजर) टाइटेनियम की पतली चादरों से बना हुआ है जिन पर सरंध्र लेप चढ़ा हुआ है। इस विनिमयक के बारे में खास बात

यह है कि अब तक स्थापित किए गए टाइटेनियम ऊष्मा विनिमयकों में यह सबसे बड़ा है।

यह संयंत्र तिरने वाला (फ्लोटिंग) किस्म का है जो 69 × 16 × 4 मीटर के एक बजरे पर स्थित है जिसका वजन 500 टन है। इस बजरे को डैम्पो शिपयार्ड, गोवा, में बनाया गया था। इसका नामकरण किया गया है "सागर शक्ति"।

तूतीकोरन संयंत्र की अमोनिया टरबाइन चार स्तरीय, क्षैतिज अक्ष वाली है। इसमें ठंडे पानी के लिए उच्च घनत्व वाली पॉलीऐथलीन से बना एक मीटर व्यास का और 1100 मीटर लंबा पाइप इस्तेमाल किया गया है। इसका ठंडे पानी का पाइप अंशतः केबल का भी कार्य करेगा।

तूतीकोरन में ओटेक संयंत्र की स्थापना का कार्य तेजी से हो रहा है और कुछ महीनों में वह बिजली उत्पादन करने लगेगा।

यदि इस संयंत्र ने सही प्रकार से कार्य किया तब 25 मैगावाट का एक अन्य संयंत्र भी स्थापित किया जाएगा।

ज्वार से बिजली

सागर के ज्वार-भाटों में भी बहुत बड़ी मात्रा में, 2×10^{17} जूल जैसी विशाल मात्रा में ऊर्जा भंडारित है। सागर के पानी के दैनिक उतार-चढ़ाव में निहित ऊर्जा का उपयोग करने के लिए मनुष्य आदिकाल से ही लालायित रहा है। प्रौद्योगिकी के विकास के साथ उसे इस बारे में कुछ सफलता भी मिली। समझा जाता है कि अब से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष, पूर्व सन् 1650 में, संयुक्त राज्य अमेरिका के बोस्टन शहर में ज्वारीय ऊर्जा से चलने वाली एक चक्की स्थापित कर ली गई थी। निश्चय ही उसकी क्षमता बहुत कम थी।

आजकल फ्रांस में ला रांस के ज्वारनदमुख पर एक ज्वारीय बिजलीघर कार्य कर रहा है। सन् 1966 में चालू किया गया यह बिजलीघर 230 मेगावाट बिजली बना रहा है। चीन में तालिंग में, 1958 में स्थापित, ज्वारीय बिजलीघर भी 144 किलोवाट बिजली का उत्पादन कर रहा है। एक ऐसा ही छोटा

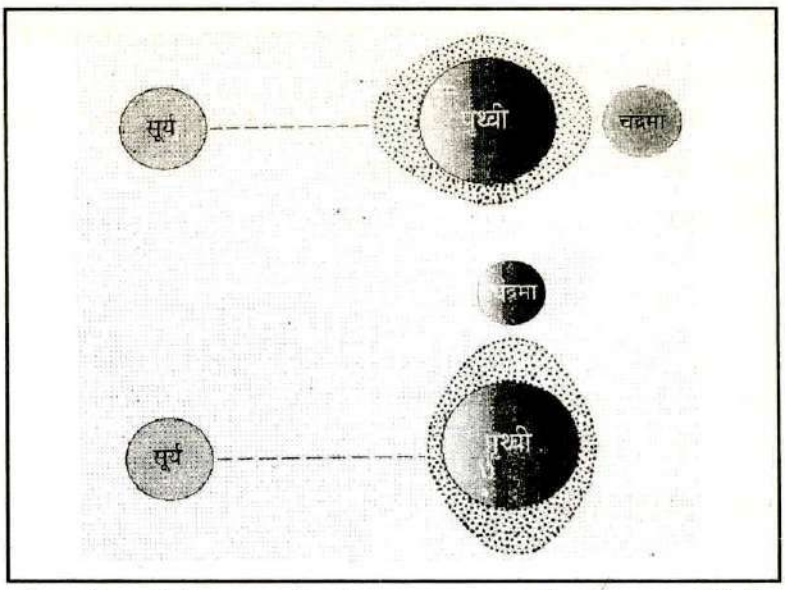

चंद्रमा और सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के फलस्वरूप सागर में ज्वार उत्पन्न होते हैं। (ऊपर) जब सूर्य और चंद्रमा एक सीध में होते हैं तब ज्वार प्रबलतम होते हैं और (नीचे) जब वे समकोण पर होते हैं तब निम्नतम

बिजलीघर किसल में बैरेंट्स सागर के तट पर स्थापित किया गया है। इनके अतिरिक्त फंडी की खाड़ी (कनाडा), सेवर्न ज्वारनदमुख (ब्रिटेन), पस्साकोमोडी (संयुक्त राज्य अमेरिका) तथा सांनजोस खाड़ी (अर्जेंटाइना) में भी ज्वारीय बिजलीघर स्थापित किए गए हैं।

हमारे देश में खंभात और कच्छ की खाड़ियों में तथा सुंदरबन में काफी ऊंचे ज्वार उठते हैं। राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान द्वारा उन्नीस सौ सत्तर और अस्सी के दशक में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि इन खाड़ियों में ज्वारों से बिजली पैदा करने हेतु बिजलीघर स्थापित किए जा सकते हैं। वैसे गुजरात और पश्चिम बंगाल (सुंदरबन) के तट भी इस कार्य के लिए उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं।

आरंभ में ज्वार से बिजली बनाने के लिए उसमें निहित गतिज ऊर्जा का रूपांतरण किया जाता था। अब ज्वार की स्थितिज ऊर्जा को भी विद्युत

में रूपांतरित करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। इस प्रकार के रूपांतरण हेतु टरबाइनों का उपयोग किया जाता है।

विद्युत उत्पन्न करने के लिए पहले ज्वार के प्रवाह को किसी खाड़ी अथवा बड़े 'जलाशय' में भर लिया जाता है। खाड़ी के द्वार पर (जहाँ वह खुले समुद्र से मिलती है) एक अवरोधक लगा दिया जाता है। यह अवरोधक बांध का कार्य करता है और इस पर से ज्वार के पानी का आधिक्य ही बहकर समुद्र में जा सकता है। इससे ज्वार के पानी का स्तर समुद्र के पानी के स्तर से काफी ऊंचा हो जाता है। अब ज्वार के पानी को समुद्र में गिराकर उससे, अवरोधक के पास लगी, टरबाइनों को चलाया जाता है। इससे ज्वार के पानी की स्थितिज ऊर्जा विद्युत में बदल जाती है।

लहरों से बिजली

यद्यपि सागर में उठती हुई ऊंची-ऊंची लहरों की ऊर्जा को बिजली में बदलने के सपने मनुष्य बहुत पुराने जमाने से देख रहा है, पर अभी तक लहरों से बड़े पैमाने पर बिजली पैदा करने में बहुत सफलता नहीं मिली है।

लहरों से हर स्थान पर बिजली नहीं बनाई जा सकती। इसके लिए लंबा तट होना चाहिए, जिसके आगे खुले सागर में तेज पवनें बहती हों पर, पर्वत आदि की कोई बाधा न हो। ऐसा आमतौर पर मध्य अक्षांशों में, महासागरों के कगारों पर, महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों पर ही होता है।

लहरों से बिजली बनाने के लिए विश्व की अनेक प्रयोगशालाओं/संस्थाओं में, विशेष रूप से ब्रिटेन, जापान, नार्वे, स्वीडन और अमेरिका की संस्थाओं में, काफी अध्ययन और प्रयोग किए गए हैं और 100 से अधिक पेटेंट भी लिए गए हैं। फलस्वरूप लहर-बिजलीघरों के अनेक मॉडल यथा 'साल्टर की बत्तख' (साल्टर्स डक) 'कोकेरेल राफ्ट', 'ऑसीलेटिंग वाटर कॉलम' (ओ. डब्ल्यू. सी.) तैयार किए गए हैं। इनमें से कुछ बड़े पैमाने पर लहरों की ऊर्जा से बिजली पैदा करने में भी सक्षम पाए गए हैं। पर कदाचित् सबसे अधिक सफलता मिली है जापान के कमांडर मसूदा की ऑसिलेटिंग वाटर कॉलम डिवाइस को।

भारत के तटों पर उतनी ऊंची लहरें नहीं उठतीं जितनी समशीतोष्ण

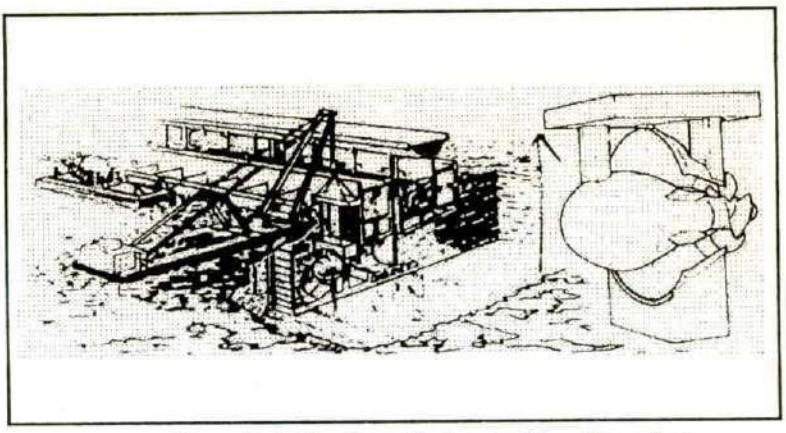

सागर की लहरों से बिजली बनाने के एक संयंत्र की रूपरेखा

कटिबंधों में उठती हैं। भारतीय तटों पर उठने वाली लहरों की संभाव्य ऊर्जा 5 और 10 KW/m के बीच होती है। विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए गए सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि केरल के तट पर विझिंजम के निकट की लहरों में 13 KW/m संभाव्य ऊर्जा है। वहाँ 6 मीटर तक ऊंची लहरें उठती हैं। इस प्रकार विझिंजम के निकट का क्षेत्र लहरों से बिजली बनाने हेतु उपयुक्त पाया गया।

इस संबंध में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, चेन्नई, के महासागर इंजीनियरी विभाग ने पहल की। पहले 1:100 अनुपात के मॉडल बनाकर उन संयंत्रों के अध्ययन किए गए जिनकी स्थापना विंझिंजम में इस कार्य के लिए की जा सकती थी। उनके आधार पर पाया गया कि लहरों से बिजली बनाने के लिए 23.2 मीटर आधार और 15 मीटर ऊंचाई का कैसन जिसमें 12 मीटर ऊंचा चैंबर फिट हो सकता हो, उपयुक्त है। इस चैंबर में सामने की ओर एक लिप दीवार और बाजुओं की ओर गाइड दीवार लगी होनी चाहिए जिससे लहरें अंदर प्रविष्ट कर सकें।

उक्त अध्ययनों के आधार पर सीमेंट कंक्रीट की, उपर्युक्त आकार की, कैसन बनाई गई। यह लगभग 3000 टन भारी है और इसे स्थापित करने के लिए लगभग 3000 टन रेत खोदना पड़ा था। इसे एक चबूतरे पर स्थापित किया गया। इसके ऑसीलेटिंग वाटर कॉलम का शीर्ष एक दुहरा घनाकार,

मुड़ा हुआ खोल है। उसका आकार आधार पर 10 × 7.75 मीटर है और वह ऊपर की ओर संकरा होता जाता है। इस प्रकार उसका सबसे ऊपरी भाग 2 मीटर व्यास का वृत हो गया है और वह 3 मीटर ऊंचा है। इसमें ही पावर मॉड्यूल स्थित है।

इस संयंत्र में ऑसीलेटिंग वाटर कालम में उत्पन्न होने वाली वातिल ऊर्जा को यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित करने के लिए वायु टरबाइनों का उपयोग किया गया है। टरबाइन को सीधा ही 110 किलोवाट के स्क्विरल केज जनरेटर से जोड़ दिया गया है। इस जनरेटर से 600 मीटर लंबा केबल एक ट्रांसफार्मर तक जाता है। यह ट्रांसफार्मर पावर ग्रिड से जुड़ा हुआ है।

आरंभ में इस संयंत्र द्वारा उत्पन्न बिजली में बहुत घट-बढ़ होती रहती थी। इसलिए टरबाइनों में संशोधन किए गए। अब इसकी क्षमता 150 किलोवाट है जिसमें लहरों की ऊंचाई के अनुसार 20 से 55 किलोवाट की घट-बढ़ होती रहती है। मानसून की ऋतु में जब लहरों की ऊंचाई अधिकतम होती है तब यह संयंत्र अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य करता है।

लवणता अंतर

जब ब्राइन से ताजा जल प्राप्त किया जाता है तब ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यदि इस क्रम को उल्टा कर दिया जाए तो ऊर्जा मुक्त होती है। इस सिद्धांत पर विभिन्न लवणताओं के जलों को आपस में मिलाकर ऊर्जा प्राप्त करने के सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं। मिलाए जानेवाले जलों की लवणताओं में जितना अधिक अंतर होता है, प्राप्त होने वाली ऊर्जा की मात्रा भी उतनी ही अधिक होती है। इसलिए नदियों के ताजे जलों (जिनकी लवणता बहुत कम होती है) को सागरों के जलों से मिलाने पर अधिक ऊर्जा प्राप्त हो सकती है।

इस बारे में दो तकनीकें सुझाई गई हैं। पहली तकनीक में भिन्न-भिन्न लवणताओं के जलों को अर्धपारगम्य झिल्ली से अलग किया जाता है। परासरण (ऑसमोसिस) क्रिया से दोनों जलों को आपस में मिलाया जाता है। जलों के मिलने की इस क्रिया में ऊष्मा उत्पन्न होती है। इस ऊष्मा को बिजली

में परिवर्तित किया जा सकता है।

दूसरी तकनीक में भिन्न-भिन्न लवणताओं वाले जलों के बीच में एक विद्युत सुचालक झिल्ली रखी जाती है और उसे एक विद्युत परिपथ का अंग बना दिया जाता है। जलों में आयनों के स्थानांतरण से विभव उत्पन्न होता है और विद्युत धारा उत्पन्न हो जाती है।

अब तक इन तकनीकों से बड़े पैमाने पर बिजली नहीं बनाई जा सकी है।

बायोमास

प्रथम दृष्टि में सागर में ईंधन उगाना और उससे बिजली पैदा करने का तरीका काफी अव्यावहारिक प्रतीत होता है, पर वास्तव में सागर से ऊर्जा प्राप्त करने का यह तरीका अन्य कई तरीकों से बेहतर और व्यावहारिक है। इस तकनीक में सागर की खाद्य शृंखला की उच्च दक्षता का उपयोग करके सागर के पानी में मौजूद पोषक तत्वों से बायोमास प्राप्त की जाती है। यह बायोमास अनेक प्रजातियों के पौधों के रूप में — सूक्ष्म शैवाल से लेकर बृहताकार केल्प जैसे बड़े समुद्री पौधों के रूप में — हो सकती है और इसे सागर में पैदा करने के अनेक लाभ हो सकते हैं।

एक बार बायोमास प्राप्त हो जाने पर उसे ईंधन में परिवर्तित किया जा सकता है। पर बायोमास को सीधा ही ईंधन के रूप में जलाना न तो आर्थिक रूप से लाभप्रद होगा और न ही उससे पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त हो सकेगी। इसलिए उसे रासायनिक रूप से विघटित करके कार्बनिक अम्ल और तत्पश्चात् ओलीफिन और हाइड्रोकार्बन, मुख्यतः मीथेन, में परिवर्तित करना उपयुक्त होगा। रसायनयज्ञों को इस बारे में अनेक सरल और सस्ती विधियाँ ज्ञात हैं। अवायवीय पाचन (एनारोबिक डायजेशन) एक ऐसी विधि है जिससे बायोमास से मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड तो प्राप्त होती ही है, साथ ही अनेक पोषक पदार्थ, विशेष रूप से नाइट्रोजन अवशिष्ट, के रूप में प्राप्त होते हैं। इस अवशिष्ट को बाद में उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

बिजली पैदा करने हेतु बायोमास प्राप्त करने के लिए ओटेक तकनीक से परोक्ष रूप से सहायता ली जा सकती है। जैसा आप जानते हैं कि ओटेक

तकनीक में गहरे सागर के पानी को पंपों द्वारा सतह पर लाना जरूरी होता है। गहरे सागर से आने वाला यह पानी पोषक पदार्थों से भरपूर होता है।

इस प्रकार बायोमास उत्पादन को ओटेक संयंत्र के साथ संयोजित कर देने से लागत में बहुत कमी आ सकती है।

सागर पर बहने वाली पवनें

थल पर बहनेवाली तेज पवन की ऊर्जा से बिजली बनाने के प्रयत्न अनेक स्थानों पर किए जा रहे हैं और इनमें काफी हद तक सफलता भी मिली है, पर अभी तक पवन ऊर्जा को बड़े पैमाने पर बिजली में परिवर्तित नहीं किया जा सका है। वैसे सागर पर बहने वाली तेज पवन की ऊर्जा का उपयोग बड़े पैमाने पर बिजली बनाने के लिए किया जा सकेगा यद्यपि उसके लिए थलीय तकनीकों का उपयोग नहीं किया जा सकता और न ही सागर पर तिरती हुई पवन-चक्कियाँ लगाई जा सकती हैं। वास्तव में इस बारे में अब तक जो अध्ययन किए गए हैं, उनमें पवन ऊर्जा और लहर ऊर्जा को साथ-साथ इस्तेमाल करने की ओर ही अधिक रुझान रहा है।

9 – हिंद महासागर में बढ़ता प्रदूषण

प्रदूषण को "औद्योगिकीकरण और प्रगति का बोनस" माना जाता है– ऐसा बोनस जो अवांछित है और जिसे जबरदस्ती लेना ही पड़ता है। जैसे-जैसे मनुष्य प्रगति करता जा रहा है, कचरे और व्यर्थ पदार्थों की मात्राएँ, उनकी विविधता और घातकता बढ़ती जा रही है। साथ ही उन्हें समुचित तरीके से – ऐसे तरीके से जिससे वे हमें बाद में हानि न पहुँचाए – ठिकाने लगाने की समस्याएं दिन-प्रतिदिन उग्र से उग्रतर होती जा रही हैं। पहले नदियाँ घरेलू कचरे और मल-मूत्र को आसानी से 'पचा' लेती थीं और स्वयं शुद्ध और साफ रही आती थीं परंतु इनकी मात्रा में अत्यधिक वृद्धि हो जाने, तथा इनमें कारखानों के विषैले बर्हिस्राव तथा खेतों में छिड़के जाने वाले पीड़कनाशी और कीटनाशी तथा सीसा, पारा, कैडमियम, आर्सनिक, जस्त आदि धातुओं के मिल जाने के कारण नदियाँ इन्हें पचा नहीं पातीं और अंततः इन्हें सागर में फेंक देती हैं। इससे सागर दिन-प्रतिदिन गंदे होते जा रहे हैं।

ऐसी गंदगी और विषैले पदार्थों के साथ सागर को पेट्रोलियम और रेडियोधर्मी व्यर्थ पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में मिलते रहते हैं। ये सागर को अत्यधिक प्रदूषित कर रहे हैं जिससे न केवल समुद्री जीव-जंतुओं को स्थाई हानि हो रही है वरन् उनका भक्षण करने वाले मनुष्य भी अनेक असाध्य बीमारियों के शिकार होते रहते हैं और समय-समय पर बड़ी संख्या में उनकी मृत्यु भी होती रहती है।

यहाँ सहज ही यह प्रश्न उठता है कि सागर में पिछले हजारों-लाखों वर्षों से घरेलू कचरा और मल-मूत्र डाले जाते रहे हैं और पिछले 100 वर्षों से भी अधिक समय से उनमें कारखानों के बर्हिस्राव भी मिलते रहे हैं तब पिछले दो-तीन दशकों में ही सागर इतने प्रदूषित क्यों हो गए? इसके कारण वे ही हैं जिनसे हमारी नदियाँ प्रदूषित हो गई हैं अर्थात् पिछले दो-तीन दशकों के

दौरान विविध कारकों के फलस्वरूप न केवल प्रदूषकों की मात्रा बहुत बढ़ गई है वरन् उनकी विविधता और घातकता में भी कल्पनातीत वृद्धि हुई है। इसीलिए सागर अपनी विशालता – 36,10,00,000 वर्ग किमी. क्षेत्रफल और 1,40,00,00,000 घन किमी. पानी के बावजूद भी – अपनी शुद्धता और स्वच्छता बनाए रखने में असमर्थ होते जा रहे हैं।

सागर में प्रदूषक विभिन्न तरीकों से – नदियों तथा नालों आदि के माध्यम से, सागर पर से माल ढोते समय, उसमें से तेल आदि खनिज निकालते समय, उसमें सीधे ही कचरा फेंकने से, पवन के साथ उड़कर आ जाने आदि–माध्यमों से – पहुंचते हैं। इनमें 40 प्रतिशत प्रदूषक नदियों आदि द्वारा बहाकर लाए जाते हैं, 30 प्रतिशत सीधे सागर में फेंके जाते हैं, 15 प्रतिशत सागर पर से माल (आमतौर से पेट्रोलियम) ढोते समय, 13 प्रतिशत प्रदूषक वायु के साथ उड़कर सागर पहुंचते हैं और 2 प्रतिशत सागर में से खनिज तेल निकालते समय उनमें मिलते हैं।

भारत के तटीय सागर

भारत के तटीय सागरों के प्रदूषण संबंधी अध्ययन फरवरी, 1976 में, अनुसंधान पोत **गवेषणी** के अर्जित करने के बाद ही, आरंभ हो गए थे। इनमें अनेक अनुसंधान संस्थाओं और विश्वविद्यालय भाग ले रहे हैं। इस संबंध में गोवा स्थित राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान और लखनऊ स्थित औद्योगिक विषविज्ञान अनुसंधान केंद्र ने उल्लेखनीय योग दिया है। हमारे अन्य अनुसंधानपोतों, **सागर कन्या** और **सागर संपदा**, ने भी हमारे सागरों के स्वास्थ्य के बारे में महत्त्वपूर्ण अध्ययन किए हैं।

इस संबंध में महासागर विकास विभाग की स्थापना के बाद कोस्टल ओशन मॉनीटरिंग एंड प्रिडिक्शन सिस्टम प्रोग्राम तैयार किया गया और 1990-91 से वह प्रोग्राम लगातार कार्यांवित भी किया जा रहा है। इसके अंतर्गत हमारे तटों से लेकर 25 किमी. दूरी तक के सागर के प्रदूषण संबंधी अध्ययन निरंतर किए जाते हैं। ये अध्ययन 11 संस्थाओं के सहयोग से, भारत के दोनों तटों पर, किए जाते हैं।

इन अध्ययनों में पाया गया कि हमारे दोनों तटों के कुछ स्थलों को छोड़कर, तट से लगभग 2 किमी. दूरी के बाद का सागर काफी स्वच्छ है। ऐसे कुछ स्थल हैं गुजरात के तट पर अलग; महाराष्ट्र के तट पर थाने, महिम और बरसोवा क्रीक; कर्नाटक के तट पर मंगलौर के निकट का क्षेत्र, केरल के तट पर वेली, तमिलनाडु में चेन्नई के निकट का क्षेत्र, आंध्र में विशाखापत्तनम और काकीनाडा तथा उड़ीसा में पुरी के निकट का क्षेत्र। वैसे मुंबई के निकट तट से 5 किमी. दूरी तक सागर बहुत प्रदूषित है।

भारत के तटीय सागरों में प्रदूषण की अपेक्षाकृत कम मात्रा का एक और मुख्य कारण है हमारे देश का विकसित देशों की तुलना में कम औद्योगिकीकरण। इसलिए हम अपेक्षाकृत कम मात्रा में प्रदूषक उत्पन्न करते हैं। पर देश में औद्योगिकीकरण में तेजी आने से हमारे निकटवर्ती सागर भी शीघ्रता से प्रदूषित होने लगेंगे। इसलिए हमें सावधान रहना है और समय रहते ही सुरक्षा के उपाय करने हैं।

घरेलू कचरा और सीवेज

पिछले हजारों वर्षों से तट के निकट रहने वाले लोग अपना घरेलू कचरा और मल-मूत्र सागर में फेंकते रहे हैं। साथ ही नदियाँ भी इस प्रकार के पदार्थ सागर में मिलाती रही हैं।

अगर घरेलू सीवेज थोड़ी मात्रा में सागर में पहुंचता है तब वह समुद्री वनस्पति के लिए खाद का काम करता है। उससे सागर की उत्पादकता बढ़ती है पर सीवेज की मात्रा बढ़ जाने पर वह 'सुपोषण' को बढ़ावा देता है। सुपोषण के फलस्वरूप शैवालों के कुछ वंशों के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। इससे शैवालों के विभिन्न वंशों में प्राकृतिक रूप से बना रहने वाला संतुलन बिगड़ जाता है और इससे सागर की प्राकृतिक खाद्य-शृंखला गड़बड़ा जाती है। उससे पानी में फास्फेट–फास्फोरस सांद्रता बढ़ जाती है। *नॉक्टीलुसा, गोन्याउलैक्स, इरीकोडेसमियम* आदि शैवालों की, जिन्हें शाकाहारी जीव नहीं खाते, अत्यधिक वृद्धि से अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

इनके अतिरिक्त सीवेज का आधिक्य सागर के पानी में घुली ऑक्सीजन

की मात्रा को कम कर देता है। परिणामस्वरूप अवायवीय परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। अरब सागर में, विशेष रूप से मध्यम गहराई के पानी में, घुली ऑक्सीजन की मात्रा पहले ही अपेक्षाकृत कम है। पानी में बड़ी मात्रा में सीवेज मिलने से वह और भी कम हो जाती है। पानी लगभग ऑक्सीजनरहित हो जाता है जिसके दुष्परिणाम जीव-जंतुओं को भुगतने पड़ते हैं। प्रदूषण के फलस्वरूप ही पश्चिमी तट पर ओखा और पोरबंदर बंदरगाहों के निकट तट से 25 किमी. की दूरी तक के सागर के पानी में अमोनिया की मात्रा 166 मिलि. प्रति लिटर हो गई है। वहाँ इसी अनुपात में ऑक्सीजन घट गई है।

ओखा के निकट स्थित सोडा-ऐश बनानेवाला एक कारखाना प्रतिदित 18,000 घन मीटर गंदा पानी सागर में डालता है परंतु वह शीघ्र ही सागर में दूर-दूर तक फैल जाता है। इसलिए वहाँ के समुद्री जीवों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान द्वारा किए गए सर्वेक्षणों में पाया गया है कि पोरबंदर के निकट स्थित सोडा-ऐश उद्योग जो गंदा पानी सागर में फेंकता है उसका पी-एच. काफी ऊंचा होता है और उससे अमोनिया मुक्त होती है। वह शीघ्र ही नाइट्रेट में बदल जाती है। उसके तात्कालिक प्रभाव नहीं देखे गए हैं, पर समुद्री जीवों पर उसके दूरगामी प्रभाव पड़ सकते हैं।

यद्यपि अभी तक भारत के पश्चिमी तट के हर स्थान पर घरेलू कचरा और सीवेज डालने के परिणाम स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हुए हैं, परंतु बड़े शहरों के निकट जहाँ सागर में बहुत बड़ी मात्रा में सीवेज और औद्योगिक अपशिष्ट मिलते रहते हैं उनके प्रभाव स्पष्ट होने लगे हैं। वेरावल बंदरगाह के पास जहाँ मछली संसाधन उद्योग से निकलनेवाला अपशिष्ट भी सागर में मिलता है, भाटा के दौरान पानी में ऑक्सीजन की मात्रा 1.2 मिलि. प्रति लिटर ही रह जाती है (समुद्री जीवों के लिए ऑक्सीजन की वांछित मात्रा कम-से-कम 4 मिलि. प्रति लिटर होनी चाहिए)। परंतु ज्वार के समय उस पानी के आधिक्य से, जिसमें ऑक्सीजन की मात्रा काफी होती है ऑक्सीजन की पूर्ति हो जाती है।

विशेषज्ञों ने अनुमान लगाया है कि महानगरों के लोग अपेक्षाकृत अधिक कूड़ा-करकट उत्पन्न करते हैं। वहाँ एक व्यक्ति औसतन 120 लिटर सीवेज प्रतिदिन उत्पन्न करता है जबकि कस्बों और छोटे शहरों के लिए यह औसत 60 लिटर प्रति व्यक्ति प्रति दिन है। समझा जाता है कि अकेले मुंबई शहर से प्रति दिन 36.5 करोड़ लिटर घरेलू सीवेज और 18 करोड़ लिटर कारखानों का बहिःस्राव सागर में छोड़ा जाता है। कोलकाता के लिए घरेलू सीवेज की मात्रा लगभग 33.5 करोड़ टन है। इसमें काफी मात्रा में अनुपचारित सीवेज होती है। वास्तव में भारत में 60 प्रतिशत शहरों के सीवेज की काफी मात्रा अनुपचारित ही होती है।

हमारे तटीय शहरों में कठिनता से 50 प्रतिशत आबादी को ही समुचित सीवेज व्यवस्था उपलब्ध है। इससे तटीय सागरों में कोलीफार्म बैक्टीरिया बड़ी संख्या में पाए जाते हैं।

लगभग यही हालत, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका और मॉरीशस जैसे कुछ देशों के अतिरिक्त, हिंद महासागर के तट पर बसे सब देशों की है।

मुंबई के तटीय सागर के पानी में सीवेज और कूड़े-करकट के कारण फास्फेट–फास्फोरस की मात्रा में निरंतर वृद्धि हो रही है। वर्ष 1959 में यह मात्रा 0.82 म्यू मोल प्रति लिटर थी पर आजकल यह लगभग 2 म्यू मोल प्रति लिटर हो गई है। इसके साथ ही तटीय पानी में घुली ऑक्सीजन की मात्रा जो वर्ष 1959 में 4.71 मिलि. प्रति लिटर थी अब लगभग शून्य हो गई है। चेन्नई के तटीय सागर की भी लगभग यही हालत है। पानी में फास्फेट–फास्फोरस की सांद्रता बहुत बढ़ गई है और पानी में घुली ऑक्सीजन बहुत कम हो गई है।

मुंबई के निकट का सागर कितना प्रदूषित हो चुका है इसका आभास महिम की खाड़ी पर एक दृष्टि डालने से हो जाता है। 64 वर्ग किमी. इलाके में फैली यह खाड़ी मुंबई शहर में ही स्थित हैं। वहाँ प्रतिदिन ज्वार उठता है जिसकी अधिकतम ऊंचाई 3 मीटर तक पहुंच जाती है। इस खाड़ी में प्रतिदिन लगभग 64 टन घरेलू सीवेज बहाया जाता है तथा अन्य औद्योगिक व्यर्थ पदार्थ, जिनमें से कुछ अंशतः उपचारित होते हैं, मिलते हैं।

महिम खाड़ी (मुंबई) में प्रति वर्ष फेंके जाने वाले प्रदूषकों की मात्रा

रचक	मात्रा (टनों में)
घुलनशील ठोस पदार्थ	92,619
क्लोराइड	37,495
निलंबित ठोस पदार्थ	15,649
सल्फेट	4,791
नाइट्रोजन	2,236
फास्फोरस	383
लोहा	162
मैंग्नीज	32
जस्त	16
तांबा	7
निकिल	5
कोबाल्ट	2
सीसा	0.7
प्रदूषकों की जैवरासायनिक ऑक्सीजन माँग	16,480

सन् 1930 से पूर्व यह खाड़ी साफ और शुद्ध थी। वहाँ बड़ी संख्या में मछलियाँ पनपती थीं, सीपियाँ मिलती थीं, चारों ओर मेंग्रोव के झुंड फैले हुए थे और वहाँ हर वर्ष प्रवासी पक्षी आते थे। आज कदाचित् यह देश का एक सर्वाधिक प्रदूषित क्षेत्र बन गया है। अब वहाँ ज्वार के समय हाइड्रोजन सल्फाइड की तीव्र दुर्गंध आती है जिसकी वजह से उसके पास से निकलना भी दूभर हो जाता है। उसके पानी में हाइड्रोजन सल्फाइड — गंधक की सांद्रता 1.5 से 98.4 म्यू मोल प्रति लिटर तक पहुँच जाती है। अब वहाँ न तो मछलियाँ हैं, न सीप हैं और न प्रवासी पक्षी आते हैं। बस कूड़ा-करकट और हानिकारी दुर्गंध भर है। यह खाड़ी इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि सागर में बिना सोचे-समझे सीवेज और कूड़ा डालते रहने के क्या परिणाम हो सकते हैं। हर्ष का विषय है कि हाल में कुछ गैरसरकारी संस्थाओं और पर्यावरणविदों के

प्रयत्नों से महिम की खाड़ी के प्रदूषण में कुछ कमी आई है।

भारी धातुएँ

अन्य सागरों की भांति अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में भी भारी धातुओं की अधिकांश मात्रा थलीय जमावटों के अवक्षेपण और निक्षालन के फलस्वरूप नदियों के पानी में घुलकर अथवा उनके द्वारा बहाकर लाए जाने से आती है। कुछ मात्रा मानवीय खनन-कार्यों तथा उद्योगों से, अपशिष्टों के रूप में, भी प्राप्त होती है। नदियों के पानी और अवसाद में भारी धातुओं की मात्रा काफी होती है। आप पढ़ चुके हें कि भारतीय उपमहाद्वीप की नदियाँ प्रतिवर्ष 1,60,00,00,000 टन अवसाद अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में डालती हैं।

राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान तथा देश के अन्य संस्थानों द्वारा किए गए परीक्षणों में पाया गया है कि समान्यतः अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के पानी में भारी धातुओं की सांद्रता बहुत अधिक नहीं है। इस बारे में विचित्र बात यह है कि इन सागरों में भिन्न-भिन्न स्थलों पर भारी धातुओं की सांद्रताएँ अलग-अलग हैं। साथ ही उनकी साद्रताएँ सागर की गहराइयों के साथ भी बदलती रहती हैं। वैसे भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकों ने इनके मान भिन्न-भिन्न पाए हैं। कुछ भारी धातुओं की मात्राएँ इस प्रकार पाई गई हैं : ताँबा 0.08 से 49.1, कैडमियम 0.01 से 1.88, लोहा, 0.10 से 96, मैंगनीज 0.07 से 80, जस्त 0.3 से 42.4, सीसा 0.02 से 7.5, निकिल 0 से 1.63 और पारा 0 से 204 म्यू ग्राम प्रति लिटर।

उत्तरी हिंद महासागर (अरब सागर और बंगाल की खाड़ी इसके ही हिस्से हैं) में जीवों, विशेष रूप से खाद्य मछलियों में लगभग सब भारी धातुओं की सांद्रता विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित अधिकतम अनुमेय मात्राओं से कम है। दूसरे शब्दों में, अब भी अरब सागर और बंगाल की खाड़ी की खाद्य मछलियों तथा अन्य जीवों में भारी धातुओं, विशेष रूप से पारा, कैडमियम और सीसे, की इतनी मात्राएँ सांद्रित नहीं हुई हैं कि वे मनुष्य के खाने के योग्य ही न रहें।

10—414 M/o HRD/2003

यहाँ एक बात पर बल देना युक्तिसंगत होगा। यद्यपि अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में अब भी भारी धातुओं की सांद्रता चिंताजनक स्थिति तक नहीं पहुंची है परंतु उनमें थाना क्रीक और महिम खाड़ी जैसे अनेक स्थल हैं जहाँ जीवों में इनकी सांद्रता बहुत अधिक हो गई है। थाना क्रीक और महिम खाड़ी की मछलियाँ तथा अन्य जीवों का भक्षण मनुष्यों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

पीड़कनाशी

फसलों की कीड़ों से रक्षा करने तथा रोग फैलाने वाले कीड़ों को मारने के लिए कीटनाशियों और पीड़कनाशियों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है। वैसे विकासशील देशों में, खाद्यान्न उत्पादन में तेजी से वृद्धि करने और लोगों को रोगों से बचाने के प्रयत्नों के फलस्वरूप भी, विकसित देशों की तुलना में, अधिक मात्राओं में कीटनाशी और पीड़कनाशी इस्तेमाल किए जाते हैं। पर अंततः इनकी 20 से 25 प्रतिशत तक मात्राएँ सागरों में पहुंच जाती हैं। सागर में जाकर ये पानी में घुल जाते हैं; तली में जम जाते हैं और यहाँ तक कि समुद्री जीवों के शरीर में भी सांद्रित हो जाते हैं।

हिंद महासागर के विभिन्न क्षेत्रों में पीड़कनाशियों की मात्राएँ भिन्न-भिन्न पाई गई हैं। उसके दक्षिणी भाग में, जो थलीय इलाकों से अपेक्षाकृत काफी दूर है, क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बनों की मात्रा बहुत कम है। वहाँ डी.डी.टी. (डाइक्लोरो डाइफेनिल ट्राईक्लोरोईथेन) की सांद्रता 0.005 से 0.025; एच. सी.एच. (हेक्साक्लोरो साइक्लोहैक्सेन) 0.27 से 0.80 और पी.सी.बी. (पॉलीक्लोरिनेटेड बाइफेनिल) 0.04 से 0.08 नैनो ग्राम प्रति लिटर पाई गई है। पश्चिमी अरब सागर में डी.डी.टी की मात्रा 2 से 11, तथा एंड्रीन की 0.45 और डिल्ड्रिन की 0.5 नैनो ग्राम लिटर ग्राम पाई गई है। परंतु अरब सागर के ही पूर्वी भाग में (भारत के पश्चिमी तट के निकट) के पानी में डी. टी.टी. की सांद्रता 15.8 से 444 नैनोग्राम प्रति लिटर और जमावटों में 7.38 से 179.1 नैनो ग्राम प्रति लिटर पाई गई है। इसी क्षेत्र के पानी में एल्ड्रिन, डिल्ड्रिन और एच.सी.एच. की सांद्रताएँ क्रमशः 1 से 10 तक; 2 से 50 तक

और 0.2 से 9.0 नैनो ग्राम प्रति लिटर और जमावटों में क्रमशः 0.95 से 35. 7; 0 से 0.88 तक और 0.44 से 17.9 नैनो ग्राम प्रति ग्राम हैं।

इनकी तुलना में बंगाल की खाड़ी की जमावटों में डी.डी.टी. की मात्रा अपेक्षाकृत बहुत अधिक है, 20 से 780 नैनो ग्राम प्रति ग्राम। वहाँ एल्ड्रिन, डिल्ड्रिन और एच.सी.एच. की मात्राएँ क्रमशः 20 से 500 तक; 0 से 510 तक और 10 से 210 नैनो ग्राम प्रति ग्राम हैं।

अरब सागर के जीवों के शरीर में एंडोसल्फान, जो डी.डी.टी. के विकल्प के रूप में इस्तेमाल की जाती है, पाई जाने लगी है। एंडोसल्फान के प्रभाव से मछलियों में जैवरासायनिक तथा एंजाइमी परिवर्तन होते पाए गए हैं। इसके कारण उनके गलफड़े क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। एंडोसल्फान के फलस्वरूप काल्मों का प्रजनन गड़बड़ हो जाता है।

पेट्रोलियम

भारत के निकट के सागरों को कदाचित् सबसे अधिक हानि होती है पेट्रोलियम से। पेट्रोलियम ही इन सागरों को सबसे अधिक प्रदूषित करता है। विश्व भर में जितना पेट्रोलियम निकाला जाता है उसका 28 से 38 प्रतिशत मध्य-पूर्व के देशों से प्राप्त होता है और वहाँ से जितना पेट्रोलियम अन्य देशों को भेजा जाता है उसकी लगभग 91 प्रतिशत मात्रा अरब सागर और बंगाल की खाड़ी पर से ही ढोई जाती है। इन सागरों पर से जितनी मात्रा ढोई जाती है उसका 65 प्रतिशत अरब सागर पर से पश्चिमी देशों को जाता है और 35 प्रतिशत बंगाल की खाड़ी पर से पूर्वी देशों का।

सागर पर से पेट्रोलियम ढोते समय टैंकर अक्सर ही दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए सन् 1970 से 1981 की अवधि में अरब सागर और बंगाल की खाड़ी पर से गुजरने वाले टैंकर 21 बार दुर्घटनाग्रस्त हुए जिसके कारण सागर पर बड़ी मात्रा में पेट्रोलियम बिखर गया।

वैसे सागर पर पेट्रोलियम टैंकरों के दुर्घटनाग्रस्त होने से ही नहीं बिखरता, टैंकरों में से रिसता भी रहता है। साथ ही बंदरगाहों पर टैंकरों के धोने से भी पेट्रोलियम बिखर जाता है।

सागर पर गिरने के तुरंत बाद पेट्रोलियम पानी पर फैलने लगता है। उसके फैलने की दर उस समय बह रही पवन की गति की लगभग 3 प्रतिशत होती है और वह पवन की दिशा के दाहिनी ओर 15° कोण पर फैलना शुरु करता है। पेट्रोलियम का पृष्ठीय तनाव सागर के पानी की तुलना में कम होता है। इसलिए वह पानी से अधिक तेजी से बहता है। कोष्ण जल में पेट्रोलियम के हल्के घटक, जिनकी कार्बन संख्या 12 से कम होती है और जिनकी मात्रा 40 प्रतिशत तक होती है, पेट्रोलियम के गिरने के 24 घंटे के अंदर ही, वाष्पित हो जाते हैं। इस दौरान पेट्रोलियम पर अन्य क्रियाएँ यथा आक्सीकरण, वैक्टीरियाओं की क्रियाएँ, पानी में विलयन आदि भी होती रहती हैं। सौर प्रकाश में उपस्थित पराबैंगनी किरणें पानी पर फैले पेट्रोलियम की लगभग एक प्रतिशत मात्रा को प्रतिदिन आक्सीकृत कर देती हैं। सागर के पानी में घुली हुई आक्सीजन भी उसका आक्सीकरण करती है। उसकी दर एक मिग्रा. तेल प्रति 3 मिग्रा. आक्सीजन होती है।

सागर के पानी में स्वाभाविक रूप से उपस्थित बैक्टीरिया पेट्रोलियम को (उसके भारी घटकों को) विघटित करते रहते हैं।

पेट्रोलियम के घटक पानी में लगभग अघुलनशील होते हैं। इसलिए सागर पर गिरने वाले पेट्रोलियम की मुश्किल से एक प्रतिशत मात्रा ही पानी में घुल पाती है।

कोष्ण जल में ये सब क्रियाएँ काफी तेजी से होती हैं। इसलिए भूमध्यरैखिक और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सागर पर गिरने वाले पेट्रोलियम की लगभग आधी मात्रा 24 घंटों के भीतर ही लुप्त हो जाती है। बाकी मात्रा का विघटन पेट्रोलियम के घनत्व और श्यानता के अनुसार, भिन्न-भिन्न दरों से, होता है। वैसे उसके विघटन या प्रसार पर सागर पर से बहने वाली पवन की गति और लहरों के भी प्रभाव पड़ते हैं।

पेट्रोलियम के गाढ़े अंश, सागर सतह पर तिर रहे सूक्ष्म कणों को, अवशोषित करके, टार की गोलियों में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी अधिकांश गोलियाँ पानी में डूब जाती हैं और सागर की तली पर जमा हो जाती हैं। परंतु हल्की गोलियाँ धाराओं के साथ बहकर तटों की ओर आ जाती हैं। ऐसी

टार गोलियाँ हमारे पश्चिमी और पूर्वी तटों पर भी आ जाती हैं और वहां 30 से 45 दिनों तक रही आती हैं। उसके बाद वे डूबने लगती हैं। सागर की तली पर टार की जमावटें उस समय तक रही आती हैं जब तक सागर पर कोई तूफान आदि नहीं आ जाता। तूफान के दौरान ऊंची-ऊंची लहरों के उठने-गिरने से ये जमावटें हिल जाती हैं और टार बहकर तटों पर आ जाता है।

पहली बार वर्ष 1975 में हमारे तटों, विशेष रूप से पश्चिमी तट के दक्षिणी भाग, पर टार की गोलियाँ देखी गई थीं। ये गोलियाँ दक्षिण-पश्चिम मानसून के समय देखी गई थीं। यद्यपि अधिकांश टार गोलियों का आकार बच्चों के खेलनेवाले कंचों के समान होता है पर कभी-कभी ये काफी बड़ा आकार भी ग्रहण कर लेती हैं। केन्या के तट पर 16 किग्रा. तक की भी टार की गोलियाँ देखी गई हैं।

जापान के क्षेत्रीय सागरविज्ञान डाटा केंद्र से प्राप्त जानकारी के अनुसार उत्तरी हिंद महासागर का अधिकांश भाग पेट्रोलियम से प्रदूषित है। अरब सागर में तिरते हुए पेट्रोलियम-टार की औसत मात्रा 0.59 मिग्रा. प्रति वर्ग मीटर है। यद्यपि कुछ स्थानों पर यह मात्रा 6.0 मिग्रा. प्रति वर्ग मीटर तक पहुंच गई है तो कुछ जगह पर वह शून्य (बिल्कुल भी नहीं) है।

बंगाल की खाड़ी के उन मार्गों में, जिन पर से पेट्रोलियम ढोने वाले टैंकर गुजरते हैं, तिरते हुए टार की मात्रा 0 से लेकर 69.75 मिग्रा. प्रति वर्ग मीटर तक पाई गई है। वैसे उसकी औसत मात्रा 1.52 मिग्रा. प्रति वर्ग मीटर है। अनुमान लगाया गया है कि अरब सागर के टैंकर-मार्गों पर तिरते टार की मात्रा लगभग 3,700 टन है जबकि बंगाल की खाड़ी के दक्षिणी भाग में यह मात्रा 1,100 टन है।

इन सागरों में होने वाले पेट्रोलियम प्रदूषण के बारे में एक और तथ्य भी सामने आया है। वर्ष 1978 के बाद खाड़ी के देशों से ढोए जाने वाले तेल की मात्रा में काफी कमी आई थी और 1978 से 1984 तक की अवधि में पेट्रोलियम-प्रदूषण की मात्रा में भी बहुत अंतर आया था। इसका यह अर्थ है कि इन सागरों में पेट्रोलियम-प्रदूषण का मुख्य कारण उन पर से तेल का ढोया जाना नहीं वरन् टैंकरों की धोवन को सागर में फेंक दिया जाना है।

पेट्रोलियम सागर के जीवों के शरीर में भी सांद्रित हो जाता है। अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के जंतु प्लांक्टनों के शरीर में 19.5 से 83.3 म्यू ग्राम प्रति ग्राम तक पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन पाए गए हैं।

मैंग्रोव और कोरल भित्तियों को हानि,

तटों पर बसी आबादियों द्वारा घरेलू कचरा, सीवेज, औद्योगिक व्यर्थ पदार्थ मैंग्रोव वनों में अक्सर ही फेंक दिए जाते हैं। आमतौर से ऐसा धरती को भरने – किसी 'बेहतर कार्य' हेतु भूमि का उपयोग करने – के लिए किया जाता है। इससे मैंग्रोव वनों को बहुत हानि पहुंचती है। हमारे पश्चिमी तट के मध्य भाग में, मुंबई शहर के निकट, ऐसा अक्सर ही किया जाता है। इससे उस क्षेत्र में मैंग्रोव वन नष्ट हो गए हैं।

ईरान की खाड़ी के तटों पर स्थित देशों तथा मिस्र में मैंग्रोव वन पेट्रोलियमजन्य प्रदूषण के फलस्वरूप तेजी से नष्ट होते जा रहे हैं।

मैंग्रोव वनों को कीटनाशियों और पीड़कनाशियों से भी बहुत हानि पहुंचती है।

पेट्रोलियमजन्य प्रदूषण कोरल भित्तियों के लिए बहुत हानिकारी होता है। उससे कोरल मर जाते हैं। यद्यपि सीवेज के फलस्वरूप उत्पन्न प्रदूषण रो कोरल एकदम नष्ट नहीं होते परंतु उससे सुपोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। सुपोषण के कारण कुछ शैवाल वंशों की असामान्य रूप से वृद्धि होने लगती है और वे कोरलों के लिए न तो पर्याप्त जगह छोड़ते हैं और न उन तक प्रकाश की समुचित मात्रा पहुंचने देते हैं।

रक्त ज्वार

शहरी कचरे और सीवेज के सागर में पहुंच जाने के बाद उनमें उपस्थित नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम यौगिक विघटित हो जाते हैं। उनसे जो उत्पाद बनते हैं वे कुछ वंशों के डाइनोफ्लेजलेटों के लिए पोषक पदार्थों का कार्य करते हैं। इससे उन डाइनोफ्लेजलेटों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि होती है। अनेक बार इनकी संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि सागर के पानी का रंग लाल हो जाता है। सागर के पानी के रंग के इस प्रकार लाल

हो जाने की घटना 'रक्त ज्वार' (रैड टाइड) कहलाती है।

ये डाइनोफ्लेजलेट जहरीले होते हैं और इनके भक्षण से मछलियों तथा अन्य समुद्री जीवों की बड़े पैमाने पर मृत्यु होने लगती है।

अनेक क्षेत्रों में प्राकृतिक कारणों से भी रक्त ज्वार आते रहते हैं। ऐसा उन स्थलों पर अधिक होता है जहाँ उत्स्रवण क्रिया जल्दी-जल्दी होती है। इसमें सागर की तली का, पोषक पदार्थों से युक्त पानी सतह पर आता रहता है। इन पोषक पदार्थों के कारण भी अनेक, अवांछित, जहरीले शैवालों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ जाती है।

वैसे यहाँ यह बता देना उपयुक्त होता कि सागर का पानी हमेशा डाइनोफ्लेजलेटों के कारण ही लाल नहीं होता और न ही लाल पानी सदैव जहरीला होता है।

निवारण के उपाय

सागर उस पानी से (उसमें घुले और निलंबित पदार्थों से)बड़ी मात्रा में प्रदूषित होता है जो नदियाँ उसमें मिलाती हैं। नदियों द्वारा लाए जाने वाले गाद का मुख्य कारण होता है भूमि कटाव और उसे रोकने का एक बढ़िया उपाय है वन-संरक्षण। इस संबंध में "चिपको आंदोलन" जैसे कार्यक्रम परोक्ष रूप से बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

उर्वरकों, कीटनाशियों और पीड़कनाशियों के कारण होने वाले सागर प्रदूषण को रोकने का सर्वोत्तम उपाय है इनकी केवल अतिआवश्यक मात्राओं का ही उपयोग करना क्योंकि इनकी 20 से 25 प्रतिशत मात्राएँ पानी के साथ बहकर सागर में पहुंच जाती हैं। इनको हवाई जहाज आदि से तो बिलकुल भी नहीं छिड़कना चाहिए। ऐसा करने से इनकी 50 प्रतिशत तक मात्रा खेतों तक पहुंचती ही नहीं वरन् वायुमंडल को प्रदूषित करती हुई अंततः सागर में जा पहुंचती है।

घरेलू सीवेज को सागर तक न पहुंचने देने का उपाय है उसका उपचार। ऐसा करने से न केवल मानव मल-मूत्र ठिकाने लग जाता है वरन् खाद, ईंधन गैस और शुद्ध पानी भी मिल जाता है। इस सिलसिले में सीवेज उपचार प्लांट

सर्वोत्तम होते हैं। पर उनको स्थापित करने में बहुत धन और समय लगता है। इसलिए सीवेज उपचार के लिए निजी स्तर पर किए जा सकने वाले उपचार तत्कालिक, सस्ते और कारगर सिद्ध हो सकते हैं। एक ऐसा उपाय है सुलभ शौचालय। सुलभ शौचालय तटीय प्रदेशों के शहरों में ही नहीं वरन् कस्बों और गांवों तथा गंदी आबादियों में भी आसानी से स्थापित किए जा सकते हैं। ऐसा करने से न केवल सागर में पहुंचने वाले घरेलू सीवेज को उपचारित किया जा सकता है वरन् ईंधन की समस्या भी हल हो सकती है।

घरेलू कचरे और औद्योगिक व्यर्थ पदार्थों को ठिकाने लगाने के लिए पहले "तनुकरण और वितरण" (डायल्यूशन एंड डिस्पर्सन) तथा सांद्रीकरण और संरोधन (कानसेंट्रेशन एंड कंटेनशन) जैसी तकनीकें इस्तेमाल की जाती थीं। पर प्रदूषकों की मात्राओं में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के फलस्वरूप ये तकनीकें असफल होने लगीं। इसलिए घरेलू और औद्योगिक कचरे का पुनः उपयोग करने का विचार लोगों के दिमाग में आया। जापान तथा अन्य देशों में इस विचार को कार्य रूप में परणित किया जा रहा है। वहाँ कचरे को पाइपों में, वायु-प्रवाह की मदद से 20-30 मीटर प्रति सैकेंड की गति से बिलगावकों में लाया जाता है। जहाँ उसे संपीड़ित किया जाता है। इससे कचरे के विभिन्न टुकड़ों के बीच में फंसी वायु निकल जाती है और साथ ही उसका आयतन भी कम हो जाता है। इस संपीड़ित कचरे को जलाकर ऊर्जा प्राप्त की जाती है।

अब हमारे देश में भी कुछ बड़े शहरों में घरेलू कचरे को जलाकर बिजली बनाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। यह बताना उपयुक्त होगा कि गावों और छोटे शहरों के कचरे का इस प्रकार पुनः उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें कागज और प्लास्टिक जैसे ज्वलनशील पदार्थों की मात्रा कम होती है।

वैसे सदैव घरेलू कचरे और औद्योगिक अपशिष्टों का पुनः उपयोग करना संभव नहीं हो पाता। वास्तव में ऐसा करने के लिए अब भी समुचित विधियां ज्ञात नहीं हैं। इसलिए हमारे देश के अधिकांश शहरों में घरेलू कचरे और ठोस औद्योगिक व्यर्थ पदार्थों को जमीन में दाब दिया जाता है। कचरे

को लगभग 10 मीटर गहरे गड्ढे में, सूखे क्षेत्र में, भौम जल स्तर के काफी ऊपर, अपारगम्य क्ले या चट्टान के ऊपर दबाना चाहिए।

यदि घरेलू कचरे, सीवेज, औद्योगिक अपशिष्टों को सागर में डालना ही पड़े तब उन्हें उन स्थलों पर डालने का प्रयत्न करें जहाँ सागर के जल आपस में जल्दी-जल्दी मिलते हैं। इसका कारण यह है कि प्रचलित मान्यता के विपरीत सागर में डाले गए पदार्थ जल्दी नहीं फैलते। अनेक बार वे वहीं पड़े रहते हैं जहाँ डाले गए थे। इस बारे में यह सुझाया गया है कि यदि सीवेज को गहरे सागर में, या जलधाराओं में अथवा उन स्थानों पर जहाँ पानी को यंत्रों से हिलाया जा सके, डाला जाता है तब रक्त ज्वार आने अथवा महामारी फैलने की आशंका को लगभग समाप्त किया जा सकता है परंतु इस कार्य के लिए समुद्र में कुछ दूरी तक पाईप लाइन डालनी पड़ती है। इस तरह की लाइनें डालने के कुछ मापदंड हैं। ऐसी अनेक परियोजनाओं राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान, गोवा, ने सफलतापूर्वक सम्पन्न की हैं।

---

10 – आधुनिक भारत में सागरविज्ञान

अंग्रेजों के भारत आने और यहाँ पूरी तरह स्थापित हो जाने के बाद हिंद महासागर के गंभीर अध्ययन का शुभारंभ हुआ। इन अध्ययनों में ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने भी सहयोग दिया था। ये अध्ययन परोक्ष रूप से आरंभ हुए थे। सन् 1802 में मछलियों पर प्रथम ब्रिटिश रिपोर्ट प्रकशित हुई जिसमें विशाखापत्तनम की तटीय मछलियों के विवरण भी शामिल थे। उसके बाद वर्ष 1806 में हुगली नदी के ज्वारों का जो अध्ययन आरंभ किया गया वह अब भी जारी है। वर्ष 1878 में भारत के प्राणिवैज्ञानिक सर्वेक्षण के वैज्ञानिक फ्रांसिस डे ने भारत की मछलियों का अध्ययन करके अपने निष्कर्षों को दो खंडों में प्रकाशित किया। ये निष्कर्ष भारतीय मछलियों के वर्गीकरण पर अब भी बहुत प्रमाणित माने जाते हैं।

जब भारत में उक्त अध्ययन किए जा रहे थे उस समय सागरविज्ञान के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और युग परिवर्तनकारी घटना घटी। यह घटना थी वर्ष 1872 से 1876 तक लंदन की रॉयल सोसायटी द्वारा आयोजित **चैलेंजर** अभियान और इसके परोक्ष प्रभाव हिंद महासागर और भारत के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए।

चैलेंजर जलयान ने अंध, हिंद और प्रशांत महासागरों पर से 1,27,500 किमी. की यात्राएँ कीं थीं। इस यात्रा के दौरान **चैलेंजर** ने 492 स्थानों पर सागर की गहराइयाँ मापीं थीं, 133 स्थानों से सागर की तली की जमावटों के नमूने एकत्रित किए थे तथा 263 स्थलों पर सागर के जल के ताप मापे थे। साथ ही कई हजार जीव-जंतुओं के नमूने एकत्रित किए थे जिनमें 471 नई प्रजातियों के जीव थे।

अपने अभियान के दौरान **चैलेंजर** ने मेरिआना खड्ड की गहराई (8,185 मीटर तक) मापी थी। साथ ही मध्य महासागरीय पर्वत शृंखला की खोज की थी। लगभग 75,000 किमी. लंबी और 1,500 से 4,000 किमी. चौड़ी यह पर्वत

शृंखला तीनों — अंध, प्रशांत और हिंद — महासागरों, में फैली हुई है और लगभग संपूर्ण थल के बराबर स्थान घेरे हुए है।

इसी अभियन के दौरान यह पता चला था कि सब महासागरों के गहरे भागों की तली पर, आलू के आकार के बहुधात्विक पिंड बिखरे पड़े हैं।

चैलेंजर अभियान की आरंभिक सफलता से प्रेरित होकर रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की कौंसिल ने 1874 में भारतीय समुद्री सर्वेक्षण की स्थापना की तथा तत्कालीन भारत सरकार को भारत के निकट के सागरों का अध्ययन करने हेतु **चैलेंजर** सदृश्य अभियान आयोजित करने के लिए राजी किया। इसके लिए सर्जन-नेचुरलिस्ट का पद स्थापित किया गया और उस पर 1875 में डा. जे. आर्मस्ट्रांग की नियुक्ति की गई।

इसी बीच (सन् 1871 में) भारतीय संग्रहालय कलकत्ता, के प्राकृतिक वैज्ञानिक (नेचुरलिस्ट) अंडमान सागर के गहरे भागों के जीव-जंतुओं का अध्ययन करने हेतु एक अभियान आयोजित कर चुके थे। इस अभियान का नेतृत्व भारतीय संग्रहालय के ही एक अधिकारी डा. जे. वुड-मेसन ने किया था और उनका जल-जहाज था **अनडांटेड**। कदाचित् वुड-मेसन ही अंडमान

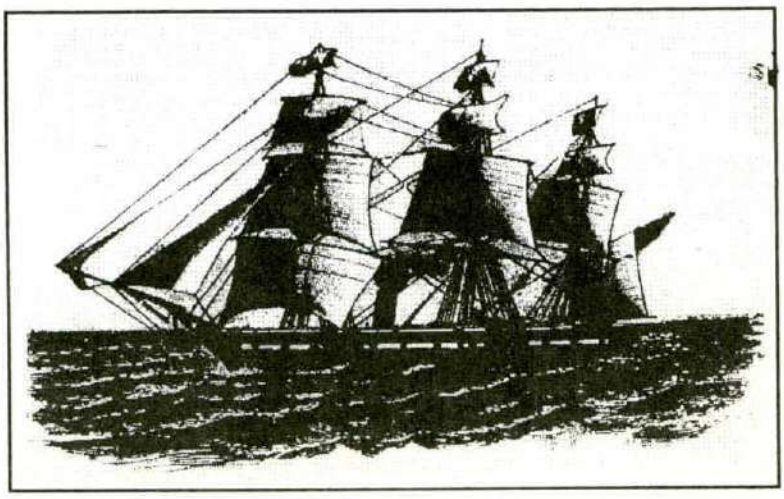

चैलेंजर जलयान जिसकी मदद से विश्व का सबसे महत्त्वपूर्ण सागरवैज्ञानिक अभियान आयोजित किया गया था

सागर के गहरे भागों के जीव-जंतुओं का अध्ययन करने वाले प्रथम व्यक्ति थे।

भारतीय समुद्री सर्वेक्षण अंडमान सागर का अध्ययन करने हेतु सन् 1881 में 580 टन का पोत **आर.आई एम.एस., इंवेस्टीगेटर-प्रथम** अर्जित करने में सफल हुआ। तत्कालीन भारत सरकार के अनुरोध पर ब्रिटेन की नौ सेना ने **चैलेंजर** पर लगे कुछ उपकरण भी, उस पर लगा दिए।

इन प्रारंभिक अध्ययनों के दौरान अंडमान सागर के कुछ समुद्री जीव-जंतुओं के नमूने एकत्रित किए गए। साथ ही सागर के जल के ताप लिए गए और तली की जमावटों के अध्ययन किए गए। 1908 में **इंवेस्टीगेटर-प्रथम** बेकार हो गया और उसके स्थान पर 1708 टन का **इंवेस्टीगेटर-द्वितीय** अर्जित किया गया। यह अपेक्षाकृत तेज चलनेवाला जहाज था। पर 1910 तक, जब तक कर्नल आर.बी.एस. सेवैल की सर्जन-नेचुरलिस्ट के पद पर नियुक्ति नहीं हुई, अंडमान सागर में मुख्य रूप से जीवशास्त्रीय अध्ययन ही किए गए। प्रथम विश्व युद्ध के आरंभ हो जाने पर इन अध्ययनों के क्रम में, 1914 से 1921 तक, व्यवधान आ गया। कतिपय कारणों से 1926 में भारत के निकट के सागरों के अध्ययन के प्रथम दौर के प्रथम अध्याय का पटाक्षेप हो गया।

अरब सागर, बंगाल की खाड़ी तथा अंडमान और लक्षद्वीप समूहों के इर्द-गिर्द के सागरों में किए गए इन सर्वेक्षणों के निष्कर्ष रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की शोध पत्रिका के विभिन्न अंकों में प्रकाशित भी किए गए थे।

देश के स्वतंत्र होने के समय खाद्य समस्या मुँह बाए खड़ी थी। उसे शीघ्र ही हल करना बहुत आवश्यक था। इस सिलसिले में सरकार की दृष्टि भी सागर की अपार खाद्य संपदा की ओर गई और परिणामस्वरूप वर्ष 1947 में ही केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान की स्थापना हुई। उसी वर्ष देश की रक्षा में नौसेना को समुचित महत्त्व देने के विचार से कोचीन में नौसेना सागरवैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित की गई। बाद में, पचास के दशक के अंतिम चरण में सागरविज्ञान के भौतिक पहलुओं के अध्ययन हेतु इसमें एक

विशेष कक्ष स्थापित किया गया। इसके परिणामस्वरूप इस संस्थान का नाम नौसेना भौतिक और सागरवैज्ञानिक प्रयोगशाला हो गया।

विश्वविद्यालयों में सागरविज्ञान पाठ्यक्रम

पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में सागरवैज्ञानिक अध्ययन काफी विलंब से आरंभ हुए थे परंतु भारतवासियों ने इस अपेक्षाकृत नए विषय के महत्त्व को शीघ्र ही पहचान लिया था और उसके अनुसार आवश्यक कदम भी उठाने आरंभ कर दिए थे। इस संदर्भ में पहल की त्रावणकोर विश्वविद्यालय (वर्तमान केरल विश्वविद्यालय) ने। उसने सन् 1938 में ही समुद्री जीवशास्त्र का अध्यापन आरंभ कर दिया था। वैसे मद्रास विश्वविद्यालय ने वर्ष 1927 से ही समुद्री जीवशास्त्र में प्रो. गोपाल अय्यर के निर्देशन में शोध कार्य आरंभ कर दिया था। 1940 के दशक में प्रो. अय्यर के निर्देशन में समुद्री प्राणिशास्त्र के क्षेत्र में बहुत उपयोगी शोध कार्य हुए। लगभग उसी समय बंबई विश्वविद्यालय ने सागरविज्ञान में शोध और अध्यापन कार्य आरंभ किया जो पचास के दशक के मध्य तक जारी रहा।

पचास के दशक में आरंभ में आंध्र विश्वविद्यालय ने भौतिक सागरविज्ञान और मौसमविज्ञान विषयों में प्रो. ई.सी.एल. फोंड के निर्देशन में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम आरंभ किया। अब सागरविज्ञान के अन्य क्षेत्रों यथा भूविज्ञान और भूभौतिकी आदि, में भी शोध कार्य आरंभ हो गया। कोचीन विश्वविद्यालय ने भी पहले समुद्री जीवशास्त्र में और बाद में भौतिक, रासायनिक, भूवैज्ञानिक सागरविज्ञान और औद्योगिक मत्स्यन में पाठ्यक्रम आरंभ किए। इसी समय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अन्नामलाई विश्वविद्यालय के अंतर्गत पोर्टो नोवो में समुद्री जीवविज्ञान में उच्च शोध कार्य हेतु एक केंद्र स्थापित किया। कालांतर में इस केंद्र ने ब्रिटेन के साउथएम्पटन और एबरडीन विश्वविद्यिालयों के साथ सहयोग स्थापित कर लिया।

1970 के दशक के मध्य में उड़ीसा के बहरामपुर विश्वविद्यालय ने सागरविज्ञान की विविध शाखाओं में शोध करने हेतु एक केंद्र स्थापित किया। साथ ही कलकत्ता विश्वविद्यालय ने भी समुद्री जीवशास्त्र में स्नातकोत्तर

पाठ्यक्रम आरंभ किया। इस पाठ्यक्रम में मैंग्रोव पारिस्थितिकी पर विशेष बल दिया जाता है। उन्नीस सौ अस्सी के दशक के मध्य में गोवा विश्ववद्यिालय में भी सागरविज्ञान का अध्यापन आरंभ हो गया।

इनके अतिरिक्त देश के उन अनेक विश्वविद्यालयों में भी जो तटीय इलाकों में स्थित नहीं हैं, सागरविज्ञान से संबद्ध विषयों में शोध की व्यवस्था है।

अन्य देशों के अभियान

वास्को-द-गामा की भारत यात्रा के, लगभग 23 वर्ष बाद, सन् 1521 में मैगलन का एक जहाज **विक्टोरिया** हिंद महासागर पर से गुजरा था। उसमें स्वयं मैगलन तो नहीं था — इस महासागर में प्रवेश करने से पहले ही, फिलीपीन में, उसकी हत्या कर दी गई थी — परंतु उसका एक साथी डेल कैनो, उस जहाज पर अवश्य मौजूद था। उसके बाद सन् 1550 में फ्रांसिस ड्रेंक भी अपनी विश्व यात्रा के दौरान हिंद महासागर पर से गुजरा था। यद्यपि मैगलन स्पेनवासी था और ड्रेंक अंग्रेज़ परंतु उनके बाद सत्रहवीं शताब्दी में इस महासागर पर डच जहाजियों का ही बोलबाला रहा।

वैसे ऐवल तास्मन ने सन् 1642 में आस्ट्रेलिया का चक्कर काटकर तास्मानिया की खोज कर ली थी पर हिंद महासागर के दक्षिणी भाग को पार करने वाले प्रथम अन्वेषक थे कैप्टन जेम्स कुक। उन्होंने इस भाग को दो बार, 1772 और 1776 में, पार किया। हिंद महासागर के दक्षिणतम भाग में जाने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे। इस प्रकार वे ही प्रथम व्यक्ति थे जिसने अंटार्कटिक आइस पैक का, सामना किया था। उसके बाद सन् 1820 में फाबिअन फान बेलिंगशाहन के नेतृत्व में रूसी अभियान और चार्ल्स विल्कीज के नेतृत्व में अमेरिकी अभियान अंटार्कटिका की कगार तक जा पहुंचे थे।

हिंद महासागर और अंटार्कटिक सागर के जलों में विचरण करने वाले आरंभिक अन्वेषकों में ड्यूमोंट द उरविले और सर जेम्स रॉस के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

चैलेंजर अभियान के बाद जर्मन अनुसंधान पोतों **वाल्दिविआ** (1898-

99) और **गॉस** (1901-03) और ब्रिटिश अनुसंधान पोत **इंवेस्टीगेटर** ने भी परीक्षण किए। 1920 के दशक के अंतिम वर्षों में अमेरिकी पोत **डिस्कवरी-द्वितीय** ने हिंद महासागर के पश्चिमी और दक्षिणी भागों के तथा **विलीब्रांड स्नेलियस** और **डाना-द्वितीय** ने खुले सागर में अध्ययन किए। इनके बाद कुछ अन्य अनुसंधान पोतों यथा मिस्री पोत, **महाबिस** (जॉन मरे अभियान); (1933-34), डेनिस पोत, **डाना** (1928-30) और **गलाथिआ** (1950-52) और स्वीडिश अनुसंधान पोत **अल्बाट्रास** (1950-52) ने हिंद महासागर के जल, उसकी तली, उसके खनिज और उसके जीव-जंतुओं के बारे में अनेक अन्वेषण और परीक्षण किए।

पहली दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि इन अन्वेषणों और परीक्षणों से हिंद महासागर के बारे में काफी विस्तृत जानकारियाँ प्राप्त हो गई होंगी परंतु वास्तविकता यह थी कि उक्त अभियानों का मुख्य उद्देश्य हिंद महासागर के बारे में व्यापक अन्वेषण और परीक्षण करना था ही नहीं। इन्होंने किसी अन्य महासागर अथवा सागर के अन्वेषण के साथ हिंद महासागर के कुछ भागों के भी अन्वेषण कर लिए थे।

अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आरंभ हुए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के कार्यक्रमों में राजनीतिज्ञों और वैज्ञानिकों ने हिंद महासागर के अध्ययन को भी शामिल कर लिया। पर अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान को आरंभ करने से पहले पृथ्वी के वायुमंडल, थल और सागरों का अध्ययन करने हेतु एक अन्य महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम, "अंतर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष" (इंटरनेशनल जिओफिजिकल ईयर), आयोजित किया गया। 1957–1958 के दौरान लगभग डेढ़ वर्ष की समयावधि तक आयोजित इस 'वर्ष' के दौरान एक पूरे महासागर का भी गहन अध्ययन करना था। यूरोप और अमेरिका के विकसित देशों के बीच में स्थित होने के कारण इस अध्ययन के लिए अंध महासागर को ही चुना जाना था। वास्तव में, अध्ययन भी उसी महासागर का हुआ, पर इस दौरान अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान की योजना भी तैयार हो गई।

इस अभियान की योजना को उस समय ठोस रूप मिला जब उसे कार्यांवित करने के लिए 20 देशों ने, जिनमें भारत भी शामिल था, आश्वासन दिया। यद्यपि अभियान का वास्तविक कार्यकाल 1962 से 1965 तक था पर अमेरिकी अनुसंधान पोत 1961 में ही हिंद महासागर में आ पहुंचे। तब सोवियत संघ भला कैसे पीछे रहता? वैसे 1960 में इस अभियान का उत्तरदायित्व यूनेस्को ने अंतःसरकारी सागरवैज्ञानिक आयोग (इंटर गवर्नमेंटल ओशनोग्राफिक कमीशन) के माध्यम से, अपने ऊपर ले लिया था। इस प्रकार वास्तविक अभियान 1961 से 1965 तक चला।

अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान में सक्रिय योग देने के लिए भारत सरकार ने 1960 में ही भारतीय राष्ट्रीय समुद्री अनुसंधान समिति गठित कर दी थी। इसके सदस्य विभिन्न अनुसंधान प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों में कार्यरत वैज्ञानिक थे और अध्यक्ष थे जगतप्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री, प्रो. डी. एन. वाडिया। अभियान में भाग लेने के लिए चार अनुसंधान पोतों — **कृष्णा, वरुण, कौंच,** और **बैंगदा** — को आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित किया गया। इनमें **कृष्णा**, 90 मीटर लंबा, भारतीय नौ सेना का फ्रिगेट किस्म का जलयान था जिसे सागर अनुसंधान के लिए विशेष रूप से पुनः सुसज्जित किया गया था। **वरुण** भारतीय-नार्वेजियन परियोजना का पोत था। **कौंच** केरल विश्वविद्यालय का अनुसंधान पोत था और **बैंगदा** मूलतः भारत सरकार के कृषि मंत्रालय का मत्स्यन पोत।

भारतीय दल ने अभियान में सक्रिय योग दिया। उसने मुख्य रूप से भारत के निकटवर्ती सागरों के अध्ययन किए। उसके वैज्ञानिकों ने न केवल सागर के विविध पहलुओं के अध्ययनों और अनुसंधान में योग दिया वरन् भारतीय समुद्री क्षेत्र के विस्तृत मौसमवैज्ञानिक और रेडियोधर्मी अध्ययन भी किए। इस अभियान के दौरान हिंद महासागर के विभिनन क्षेत्रों की संरचना, पानी के गुण और जीव-जंतुओं आदि के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का पता चला (लाल सागर की तली के पानी के असामान्य उच्च ताप और लवणता तथा खनिजों के बारे में आप पढ़ चुके हैं)।

भारत के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियन की कदाचित् सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं : 1962 में कोचीन में हिंद महासागर जैव केंद्र (इंडियन ओशन बायोलॉजिकल सेंटर) और राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओशनोग्राफी) की स्थापना।

हिंद महासागर जैव केंद्र की स्थापना में यूनेस्को तथा अंतःसरकारी सागरवैज्ञानिक आयोग ने बहुत योग दिया। इस केंद्र का मुख्य कार्य अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान एकत्रित किए गए जंतु प्लाक्टनों के नमूनों का समुचित तरीकों के वर्गीकरण कर उनका सही प्रकार भंडारण करना था। यह कार्य अनेक देशों के विशेषज्ञों की सहायता से सफलतापूर्वक संपन्न किया गया। इस के परिणाम दस खंडों की एक एटलस, अनेक शोध पत्रों और संदर्भ ग्रंथों (हैंडबुक) के रूप में प्रकाशित किए गए। आज भी इस एटलस और इन संदर्भ ग्रंथों की अत्यधिक मांग है।

राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान

अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के संपन्न हो जाने के बाद भारतीय राष्ट्रीय समुद्री अनुसंधान समिति के कार्य क्षेत्र में संशोधन करके उसमें देश में की जाने वाली सब प्रकार की सागरवैज्ञानिक विषयक कार्यवाहियों को शामिल कर दिया गया। उक्त अभियान के बाद इस समिति ने सागर के अध्ययन हेतु एक राष्ट्रीय प्रयोगशाला की स्थापना की सिफारिश भी की थी। भारत सरकार द्वारा इस सिफारिश को मान लिए जाने के परिणामस्परूप पहली जनवरी, 1966, को कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च के अंतर्गत राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान की स्थापना हुई और शीघ्र ही उसने हिंद महासागर अभियान निदेशालय के सब कार्य अपने हाथ में ले लिए।

अब राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रयोगशाला है जिसमें सागर में भौतिक, रासायनिक, जैव, भूवैज्ञानिक, पर्यावरणीय, इंजीनियरी आदि सब पहलुओं पर अध्ययन और शोध कार्य हो रहे हैं। संस्थान का मुख्यालय गोवा में है और मुंबई, कोचीन तथा विशाखापत्तनम में उसके क्षेत्रीय केंद्र हैं।

11—414 M/o HRD/2003

संस्थान में सागर संबंधी जानकारियों के भंडारण और विश्लेषण की सब अत्याधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। साथ ही उसके अन्य देशों के सागरवैज्ञानिक केंद्रों के साथ घनिष्ठ संपर्क हैं।

राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान ने दिंसबर 1975 में एक अनुसंधान पोत अर्जित किया। **गवेषणी** नाम से प्रसिद्ध यह जलपोत वास्तव में एक तिरती हुई प्रयोगशाला थी जिसमें सागर संबंधी अध्ययन करने हेतु उपग्रह नौचालन व्यवस्था (सैटेलाइट नेवीगेशनल सिस्टम) सहित अनेक अत्याधुनिक उपकरण और सुविधाएँ उपलब्ध थीं। 1900 टन के इस जलपोत ने, मार्च 1995 में बेकार घोषित किए जाने तक, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी पर सैकड़ों अन्वेषण-यात्राएँ की और 10,000 से अधिक केंद्रों पर अध्ययन किए जिनके दौरान उसने अत्यंत महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ एकत्रित कीं। साथ ही इनके अनेक संभावित मछली-बहुल क्षेत्रों का तथा इनकी तलियों में स्थित खनिज भंडारों का भी पता लगाया।

गवेषणी की सहायता से राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान ने तेल और प्राकृतिक गैस आयोग के लिए भारत के पश्चिमी तट के निकट के सागर में पेट्रोलियम के भंडारों का पता लगाने हेतु सर्वेक्षण किए। इस संबंध में इस संस्थान का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण योग था बाम्बे हाई तेल क्षेत्र से मुंबई तक तेल लाने हेतु, सागर की तली पर, 160 किमी. लंबी पाइप लाइन बिछाने के लिए किया गया सर्वेक्षण कार्य। यह पाइपलाइन बिछाई जा चुकी है और 1978 से इसके द्वारा तेल भेजा जा रहा है। इसके अतिरिक्त सागर की तली पर दो अन्य पाइप लाइनें बिछाने के लिए भी सर्वेक्षण किए गए हैं। इनमें से एक है बेसीन तेल क्षेत्र से हजीरा तक 200 किमी. लंबी पाइप लाइन और दूसरी है बेसीन से तारापुर तक की 120 किमी. लंबी पाइप लाइन। ये दोनों पाइप लाइनें भी बिछा दी गई हैं और इन में से भी तेल भेजा जा रहा है। इस बारे में उल्लेखनीय बात यह भी है कि इस प्रकार के सर्वेक्षण किसी भारतीय संस्थान ने पहली बार किए थे और ये देश में ही विकसित तकनीकों से किए गए थे। इससे सर्वेक्षण कार्यों में आर्थिक रूप से बहुत बचत ही नहीं हुई वरन् इससे भारतीय वैज्ञानिकों के आत्मविश्वास में भी बहुत वृद्धि हुई।

गवेषणी का कार्य क्षेत्र भारत के निकटवर्ती सागरों तक ही सीमित नहीं था। उस पर चढ़कर भारतीय वैज्ञानिकों ने, डॉ. एस.जैड. कासिम के नेतृत्व में, मध्य हिंद महासागर की तली पर, 3.5 किमी. गहराई पर, पड़े बहुधात्विक पिंडों के नमूने भी एकत्रित किए थे। इन पिंडों के नमूने एकत्रित करने के लिए **गवेषणी** ने मध्य हिंद महासागर में, दिसंबर, 1980 और जनवरी 1981 में, सर्वेक्षण किए थे (बहुधात्विक पिंडिकाओं से संबंधित विवरण आप 'खनिज संपदा' अध्याय में पढ़ चुके हैं)।

भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा हिंद महासागर से प्राप्त एक समुद्री वनस्पति जिससे औषधि तैयार की जा सकती है

समुद्री तलछट में विद्यमान सूक्ष्म जीवाश्मों की सहायता से इस संस्थान के वैज्ञानिकों ने पिछले कुछ हजार साल में मानसूनी वर्षा में आए परिवर्तनों का भी अध्ययन किया है तथा मानसूनी वर्षा में 77 वर्ष की आवृति का भी पता लगाया है जिससे भविष्य के परिवर्तनों के बारे में आभास लगाया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त **गवेषणी** ने सेशल्स और श्रीलंका के अनन्य आर्थिक क्षेत्रों के भी सर्वेक्षण किए।

जलमग्न नगरों की खोज – आप पढ़ चुके हैं कि प्राचीन काल में सिंधु घाटी सभ्यता तथा पौराणिक कालों में भारत के तटों पर अनेक समृद्ध बंदरगाह और नगर स्थित थे। साथ ही उस समय भी भारतीय दूर-दूर के

देशों के साथ समुद्री मार्गों से व्यापार करते थे। कालांतर में इनमें से अनेक बंदरगाह, सागर की सतह के ऊंचे उठ जाने तथा अन्य अनेक कारणों से, जलमग्न हो गए। राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान और समुद्री पुरातत्व केंद्र(मेरीन आर्किओलॉजी सेंटर) के वैज्ञानिकों ने दिसंबर 1994 में सागर में डूब गए द्वारका बंदरगाह और शहर के अवशेषों की खोज की। सागर तल पर की गई खुदाई के दौरान जो अवशेष मिले उनसे यह भलीभांति प्रमाणित हो गया है कि द्वारका बंदरगाह की बनावट प्राचीन ग्रंथों में किए गए वर्णन के अनुसार ही थी। वास्तव में द्वारका के बंदरगाह में दीवारों और जलकुंडों

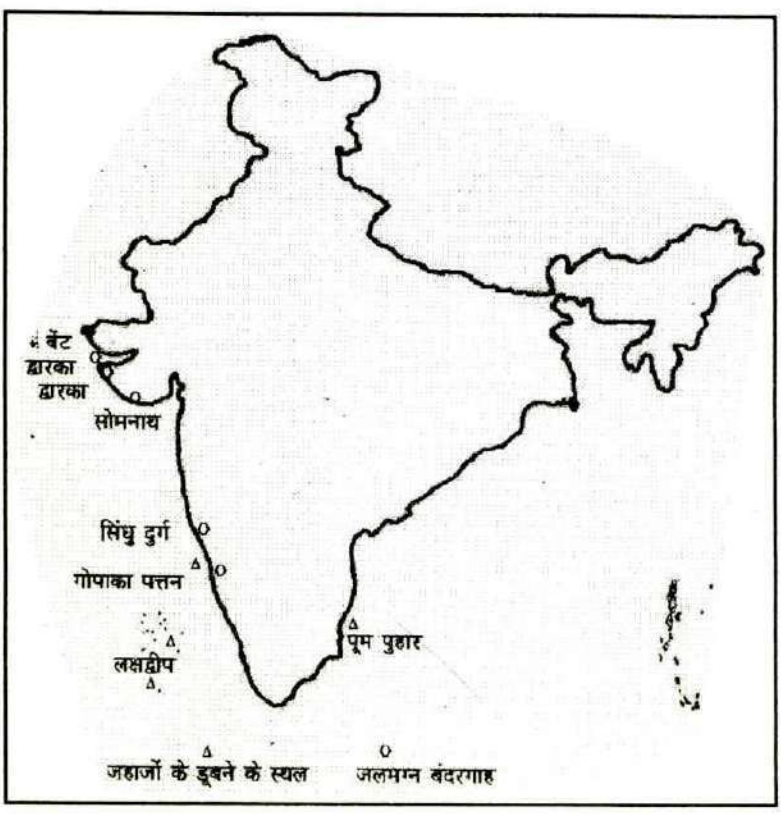

राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान के वैज्ञानिकों ने अनेक जलमग्न नगरों और जहाजों को ढूंढ निकालने में सफलता प्राप्त की है

की ऐसी व्यवस्था थी कि बड़े जहाज भी अंदर आ सकते थे और उच्च ज्वार के दौरान भी सुरक्षित रह सकते थे।

बेट द्वारका (वर्तमान द्वारका शहर के निकट स्थित एक द्वीप) के तटों पर की गई खुदाई से यह पता चला है कि सबसे पहले द्वारका नगर वर्तमान बेट द्वारका में बसाया गया था।

गुजरात के तट पर ही स्थित सोमनाथ के जलमग्न हो गए अंशों की खुदाई करने पर प्राचीन सोमनाथ नगर के अवशेष भी मिले हैं।

चोल वंश के शासनकाल में पूमपुहार कावेरी नदी के डेल्टा पर स्थित एक समृद्ध बंदरगाह था। बाद में वह भी सागर में डूब गया। उसके लिए भी राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान और समुद्री पुरातत्व केंद्र ने खुदाई की है। इसमें मिले अवशेष पूमपुहार बंदरगाह की समृद्धता के द्योतक हैं।

जलमग्न जल जहाज – पिछले 5000 वर्षों के दौरान भारतीय तटों के निकट सैंकड़ों भारतीय और विदेशी जहाज सागर में जलमग्न हो गए थे। इन जहाजों के अवशेष अब भी सागर की तली पर पड़े हैं। सन् 1994 में समुद्री पुरातत्व केंद्र के वैज्ञानिकों को लक्षद्वीप समूह के मिनीकाय द्वीप के तट के निकट जहाजों के लगभग 100 मीटर लंबे अवशेष मिले थे। खुदाई करते समय इन जलमग्न जहाजों के भाप इंजन, पॉटहोल, हल के फ्रेम, विंच भी मिले जिनकी बाद में सही पहचान कर ली गई थी।

बाद में इस प्रकार के अवशेष पूर्वी और पश्चिमी, दोनों, तटों के निकट मिले। इनमें पूमपुहार के निकट, लगभग 19 मीटर गहराई में मिले लगभग 100 मीटर लंबे जहाज के अवशेष विशेष उल्लेखनीय हैं। ये अवशेष दो भागों में मिले। अवशेषों के अध्ययन से पता चला कि वह जहाज 1791 या 1792 में डब्ल्यू. ब्लैकमेन के लिए सीसे के पिंड ला रहा था।

समुद्री पुरातत्व केंद्र ने अब तक 200 से अधिक जलमग्न जहाजों की सूची तैयार की है।

विविध कार्यकलाप – राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान केवल सागर संबंधी अध्ययन और शोध कार्य ही नहीं करता वरन् बंदरगाहों, बिजलीघरों, आयल टर्मिनलों, होटलों, पर्यटक स्थलों आदि के निर्माण में भी परामर्श देता है। जहाँ

तक सागर के तटों की इमारतों में स्थापित उद्योगों के बर्हिस्रावों से तटवर्ती सागर को प्रदूषित होने से बचाने का अथवा प्रदूषित हो चुके सागरों को पुनः स्वस्थ बनाने का तथा अन्य विकासात्मक कार्यों का संबंध है राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान के पास विशेषज्ञों की कमी नहीं है। संस्थान के वैज्ञानिक इन कार्यों में यथासंभव मदद देते रहते हैं। उनके परामर्श से ऐसी अनेक परियोजनाएँ संपन्न हो चुकी है।

राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान अंतःसरकारी सागरवैज्ञानिक आयोग के क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सक्रिय योग देता रहा है। यह संस्थान अन्य विकासशील देशों के वैज्ञानिकों को सागरविज्ञान में प्रशिक्षण भी देता है।

आजकल संस्थान का कार्य क्षेत्र गोवा और उसके आसपास के क्षेत्र से फैलकर गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु आदि तक पहुंच गया है। उसने मुंबई नगर निगम के लिए सीवेज को ठिकाने लगाने की एक बृहत परियोजना भी सम्पन्न की है। आजकल यह संस्थान प्रायोजित परियोजनाओं से प्रतिवर्ष 8 से 10 करोड़ रुपया कमा रहा है।

महासागर विकास विभाग

देश के विभिन्न कार्यकलापों में सागर के विशेष महत्त्व को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने वर्ष 1981 में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। वह था महासागर विकास विभाग की स्थापना। इस विभाग के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए इसका उत्तरदायित्व स्वयं प्रधान मंत्री ने संभाला। इस विभाग के मुख्य उद्देश्य हैं सागर से संबंधित विभिन्न संस्थाओं के बीच समन्वय और सहयोग स्थापित करना, उन्हें आवश्यक धनराशि उपलब्ध कराना, आवश्यकतानुसार नए संस्थान स्थापित करना और इस प्रकार सागर संबंधी विकास कार्यों को प्रोत्साहन प्रदान करना।

इस विभाग ने सागर के संबंध में अनेक उल्लेखनीय कार्य किए हैं। इनमें कदाचित् सबसे अधिक चर्चित हैं: मध्य हिंद महासागर की गहराइयों से बहुधात्विक पिंडिकाओं के नमूने एकत्रित करने हेतु योजना बनाना और उसके

कार्यान्वयन हेतु समुचित सुविधाएँ उपलब्ध कराना; अंटार्कटिक अभियान आयोजित करना; देश के लिए अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस अनुसंधान पोत अर्जित करना, संयुक्त राष्ट्र संघ से बहुधात्विक पिंडों के बारे में खोजबीन करने हेतु भारत के लिए 1,50,000 वर्ग किमी. का क्षेत्र आरक्षित कराना तथा सागरवैज्ञानिक अध्ययन और शोध के लिए देश के विशेषज्ञों का दल तैयार करना आदि। इन कार्यों को समुचित तरीके से करने के लिए विभाग ने 1982 में "सागर नीति" तैयार की।

मार्च 1983 में महासागर विकास विभाग ने तत्कालीन पश्चिमी जर्मनी से एक अनुसंधान पोत **सागर कन्या** अर्जित किया। इसमें सागर के भौतिक, रासायनिक, जैव, भूवैज्ञानिक, मौसमवैज्ञानिक अध्ययन करने हेतु आधुनिक उपकरण और प्रयोगशाला-सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इन अध्ययनों हेतु वह हिंद महासागर के विभिन्न भागों की सैकड़ों यात्राएं कर चुका है। साथ ही उसने

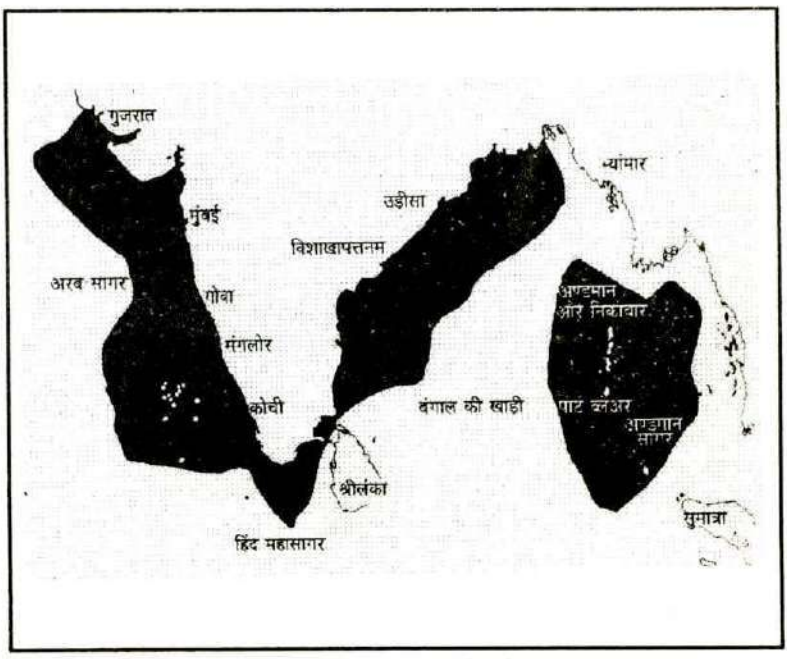

भारत का अनन्य आर्थिक क्षेत्र

मॉरीशस के अनन्य आर्थिक क्षेत्र का सर्वेक्षण किया है और कैरीबियन सागर की संपदा के सर्वेक्षण हेतु कामनवैल्थ साइंस कौंसिल के कार्यक्रमों में भाग लिया। इनके अतिरिक्त **सागर कन्या** ने भारत और आस्ट्रेलिया के बीच स्थित सागर के एकाउस्टिक टोमोग्राफिक अध्ययन किए हैं।

महासागर विकास विभाग द्वारा अर्जित दूसरा अनुसंधान पोत है **सागर संपदा**। यह पोत डेनमार्क से, नंवबर 1984 में, अर्जित किया गया था। यद्यपि इसका मुख्य कार्य क्षेत्र हिंद महासागर की मछलियों के जीवन-चक्र, उनके व्यवहार, उनके वितरण, उनको पकड़ने की तकनीकों आदि का अध्ययन करना है परंतु इसमें सागरविज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी अध्ययन करने की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। साथ ही आधुनिक अंतर्जलीय ध्वानिक (अंडरवॉटर एकाउस्टिक्स) और इलेक्ट्रानिक डाटा प्रोसेसिंग सिस्टम संबंधी उपकरण भी लगे हुए हैं।

सागर संपदा ने अपनी यात्राओं के दौरान भारतीय अनन्य आर्थिक क्षेत्र में और उससे बाहर भी पादप और जंतु प्लाक्टनों की उत्पादकता और मछलियों के घनत्व के बारे में अध्ययन किए हैं। साथ ही उसने अंटार्कटिक सागर में क्रिलों के विषय में सर्वेक्षण किए हैं।

महासागर विकास विभाग ने अनुसंधान पोत केवल अर्जित ही नहीं किए हैं वरन् उनका निर्माण भी किया है। उसने वर्ष 1996 में **सागर पूर्वी** और **सागर पश्चिमी** नाम के दो अनुसंधान पोतों का निर्माण किया। यद्यपि इन पोतों का उपयोग, मुख्य रूप से, महासागर विकास विभाग और राष्ट्रीय सागर प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा तटीय सागरों के अध्ययन और अंवेषण हेतु किया जाता है परंतु ये अन्य संस्थाओं को भी अन्वेषण कार्यों हेतु उपलब्ध हो जाते हैं। इनकी देख-रेख और संचालन राष्ट्रीय सागर प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा किया जाता है।

पिंडों से धातु निष्कर्षण – अब तक हिंद महासागर की तली से रूसी अनुसंधान पोत **साइदोरेंका** की मदद से लगभग 80 टन बहुधात्विक पिंड निकाले जा चुके हैं। इनसे विभिन्न धातुओं के निष्कर्षण हेतु क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, भुवनेश्वर और भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्रांबे, मुंबई, द्वारा संयुक्त रूप से हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड, उदयपुर, में एक पायलट प्लांट

स्थापित किया जा रहा है। यह प्लांट लगातार कार्य करने वाला होगा और इसमें प्रतिदिन 500 किग्रा. पिंडों से धातुएँ निष्कर्षित की जा सकेंगी। इस प्लांट की मदद से ऐसी विधियाँ विकसित करने में मदद मिलेगी जिनसे हिंद महासागर के पिंडों से बड़े पैमाने पर विभिन्न धातुएँ प्राप्त की जा सकें।

महासागर विकास विभाग और राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान अंतःसरकारी सागरवैज्ञानिक आयोग, यूनेस्को, अंतर्राष्ट्रीय सागरतली प्राधिकरण (इंटरनेशल सीबैड अथोरिटी) जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं को सहयोग देते रहते हैं।

राष्ट्रीय सागर प्रौद्योगिकी संस्थान — सागर अध्ययन के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी विकसित करने हेतु भारत सरकार ने महासागर विकास विभाग के अंतर्गत 1993 में राष्ट्रीय सागर प्रौद्योगिकी संस्थान (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओशन टैक्नोलॉजी) की स्थापना की। आरंभ में इस संस्थान ने इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी, चेन्नई, के सहयोग से कार्य किया पर अब यह अपने भवन में (चेन्नई ही में) पल्लीकारनाई में आ गया है। इसके कार्यकलापों में सागर से ऊर्जा प्राप्त करना, गहरे सागर में स्थित भंडारों से खनिज प्राप्त करना, तटीय पर्यावरण के संरक्षण हेतु इंजीनियरी संरचनाओं का निर्माण तथा सागर के अध्ययन हेतु उपकरणों का विकास करना आदि शामिल हैं।

यह संस्थान सागर में रुचि रखने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों को परामर्श भी देता है। वास्तव में सागर पर आधारित सब प्रकार के उद्योगों को सहायता प्रदान करने में इस ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

सागर से ऊर्जा प्राप्त करने की दिशा में यह संस्थान तूतीकोरन तट के निकट एक प्रायोगिक ओटेक संयंत्र की स्थापना कर रहा है (एक मेगावाट क्षमता के इस ओटेक संयंत्र के बारे में आप "ऊर्जा के विशाल स्रोत" अध्याय में पढ़ चुके हैं)।

राष्ट्रीय सागर प्रौदयोगिकी संस्थान ने जर्मनी के सीगेल विश्वविद्यालय के इंस्टीट्यूट फार कंस्ट्रक्शन के सहयोग से एक क्राउलर आधारित खनन मशीन और एक लचीला उत्थापक विकसित किया है। इस खनन मशीन और उत्थापक को 410 मीटर की गहराई तक सफलतापूर्वक परखा भी जा चुका है।

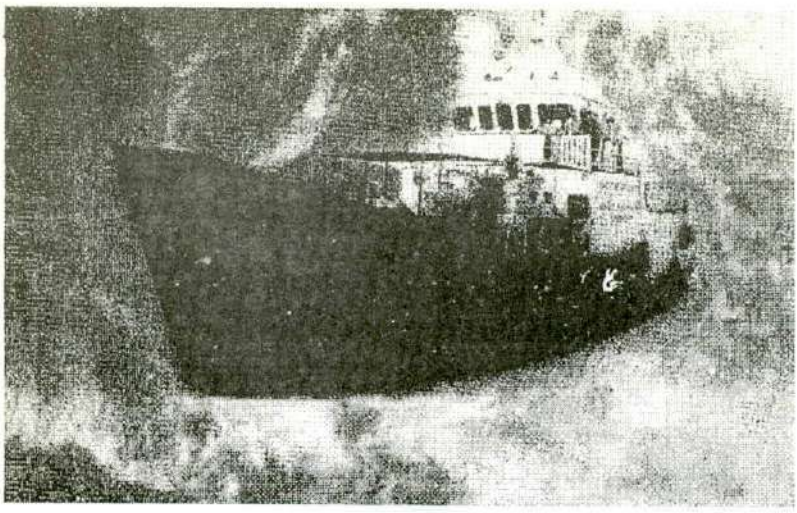

महासागर विकास विभाग द्वारा निर्मित अनुसंधान पोत "सागर. पश्चिमी"

अब इस क्राउलर-उत्थापक में सुधार करके उसे सागर में से 500 मीटर गहराई से रेत निकालने और उसे सागर सतह पर खड़ी जहाज में भरने योग्य बना लिया गया है। यह क्राउलर मुलायम तल पर भी आसानी से चल सकता है। इसे भारतीय तटों पर, विभिन्न स्थलों पर, परखा भी जा चुका है।

सागर में विभिन्न गहराइयों पर सर्वेक्षण कार्य करने हेतु एक मानवरहित पनडुब्बी विकसित करने के लिए राष्ट्रीय सागर प्रौद्योगिकी संस्थान ने एक कार्यक्रम तैयार किया है। इसके अंतर्गत एक ऐसी पनडुब्बी तैयार की जाएगी जो सागर में 6,000 मीटर गहराई तक जा सके। 2.5 × 1.5 × 1.5 मीटर आकार और लगभग 2,000 किग्रा. वजन की यह पनडुब्बी स्वचालित होगी — इसे दूर से नियंत्रित किया जा सकेगा। इसमें अनेक आधुनिकतम स्वचालित यंत्र लगे होंगे।

सागर का अध्ययन : अंतरिक्ष से

अंतरिक्ष युग आरंभ हो जाने के बाद, विशेष रूप से, मौसम दूरसंचार

और दूरसंवेदी उपग्रहों के प्रक्षेपण के बाद, समुद्री अंवेषणों और परीक्षणों के लिए वायुयान और उपग्रह तथा अन्य आधुनिकतम उपकरणों का उपयोग होने लगा। सागर के प्रेक्षण और अध्ययन के लिए पहला उपग्रह "सीसैट" संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1978 में प्रक्षेपित किया था।

उसके बाद 'निंबस', 'कॉस्मॉस', 'जिओसैट', 'मोस', 'एडेओश', 'नोआ', 'ई.आर.एस', 'जे.ई.आर.एस' 'रडार सैट' आदि शृंखलाओं के उपग्रह प्रेक्षपित किए गए। इन उपग्रहों में संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ अन्य देशों के उपग्रह भी शामिल थे।

भारत में "सागर के दूरसंवेदी अध्ययन" (उपग्रह द्वारा सागर अध्ययन) हेतु 1988 में देश में निर्मित प्रथम दूरसंवेदी उपग्रह 'आई.आर.एस.–प्रथम' प्रक्षेपित किया गया। 'आई.आर.एस.' शृंखला के उपग्रहों ने हमारे वैज्ञानिकों को ज्वार-भाटों, मैंग्रोव वनों, खारे पानी की दलदलों, तट के कटावों तथा सागर की आकृति में परिवर्तनों, तटीय धाराओं आदि अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में उल्लेखनीय जानकारियाँ प्रदान की हैं। बाद में भारत के अनन्य आर्थिक क्षेत्र में मछलियों के बारे में अधिकाधिक जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए मार्च 1996 "आई.आर.एस.पी.-3" उपग्रह प्रक्षेपित किया गया। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा प्रक्षेपित यह उपग्रह सूर्य तुल्यकालिक था और इसकी कक्षा पृथ्वी से लगभग 800 किमी. ऊँचाई पर थी। पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए यह हर 24 दिन बाद पुनः अपनी पुरानी कक्षा अपना लेता था। इसका मुख्य कार्य सागर में क्लोरोफिल पिगमेंट का अवलोकन करना है।

पृथ्वी की परिक्रमा करते समय आई.आर.एस.पी.-3 उपग्रह 24 दिन बाद ही अपनी पुरानी कक्षा पर आ पाता था। इसलिए वह सागर के बारे में उतनी शीघ्रता से जानकारियाँ प्रदान नहीं कर पाता था, जितनी शीघ्रता से वैज्ञानिकों को उनकी जरूरत होती है। इसलिए एक अधिक सुचारु दूरसंवेदी उपग्रह प्रक्षेपित करने की आवश्कता उभरकर सामने आई, और उसका परिणाम हुआ वर्ष 1998 में 'आई.आर.एस.पी.-4' का प्रक्षेपण। इस उपग्रह को ओशनसैट-प्रथम भी कहा जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष (इंटरनेशनल ईयर ऑफ ओशन्स) के दौरान प्रक्षेपित ओशनसैट-प्रथम में ओशनकलर मॉनीटर और मल्टीफ्रीक्वेंसी स्कैनिंग माइक्रोवेव रेडियोमीटर सहित अनेक अत्याधुनिक उपकरण लगे हैं जिनसे यह क्लोरोफिल पिगमेंट और सागर की प्राथमिक उत्पादकता जैसे विषयों के बारे में खोजबीन कर रहा है। साथ ही यह सागर की सतह पर बहने वाली पवनों के वेग, दिशा और ताप तथा वायुमंडल में जल वाष्प की मात्रा के बारे में भी आंकड़े प्रदान करता है। इससे हर दूसरे दिन जानकारियाँ प्राप्त होती रहती हैं।

अब 'ओशनसैट-द्वितीय' प्रक्षेपित किए जाने की योजना है। वह ओशनकलर मॉनीटर, अल्टीमीटर, स्केटेरोमीटर, पैसिव माइक्रोवेव रेडियोमीटर और थर्मल इंफ्रारैड मॉनीटर जैसे उपकरणों से सुसज्जित होगा। वह क्लोरोफिल के अतिरिक्त सागर सतह के ताप, उस पर बहने वाली पवनों और लहरों आदि के बारे में भी जानकारियाँ प्रदान करेगा।

अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष

पिछले अनेक दशकों से सागर को "मानव जाति की सांझी धरोहर" कहा जाता रहा है। वैसे सागर के लिए इस संबोधन का उपयोग पहली बार किया था माल्टा देश के प्रतिनिधि, आरविद पारदो ने, पहली नवंबर, 1967 को, संयुक्त राष्ट्र महासभा को संबोधित करते हुए। सागर को बढ़ते हुए अंतर्राष्ट्रीय विवादों का अखाड़ा बनने से रोकने, उसे और प्रदूषित होने से बचाने तथा असीम समझे जाने वाले उसके जैव और निर्जीव स्रोतों की लूट पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से उन्होंने कुछ ठोस उपाय भी सुझाए थे।

उसके पंद्रह वर्ष बाद, सन् 1982 में, अन्कालॉस-III ने विश्व समुदाय के हाथ में एक ऐसा कानूनी अधिकार प्रदान कर दिया जिससे हर देश के लिए सागर की क्षेत्रीय सीमाएँ निर्धारित की जा सकीं तथा देशों के आपसी विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से निपटाने का मार्ग प्रशस्त किया जा सका।

वर्ष 1998 को "अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष" (इंटरनेशनल ईयर ऑफ ओशन्स) के रूप में आयोजित करने के बारे में पहल की अंतःसरकारी सागरवैज्ञानिक

आयोग ने। बाद में यूनेस्को ने 1993 में आयोजित अपने महासम्मेलन में इस प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की। अगले वर्ष 1994, में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने भी इस प्रस्ताव को औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया। इस बारे में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि "अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष का आयोजन सागर को केवल जीवन और सभ्यता के वास्तविक स्रोत के रूप में ही मान्यता प्रदान करने के लिए नहीं वरन् उसे आगामी पीढ़ियों के लिए स्वस्थ बनाए रखने की आवश्यकता पर बल देने के लिए भी किया जाएगा।"

मानव जाति के लिए सागर के महत्त्व की ओर विभिन्न देशों की सरकारों और जनसाधारण का ध्यान आकर्षित करने की दृष्टि से इस 'वर्ष' के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार निश्चित किए गए : (i) यह जागरूकता उत्पन्न करनी है कि सागर और तटीय क्षेत्रों के स्रोत असीमित नहीं हैं। उनकी भी निश्चित, आर्थिक सीमाएँ हैं (उनका दोहन सोच-समझ कर किया जाना चाहिए); (ii) विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा इन स्रोतों के समुचित सदुपयोग के बारे में वादे कराना और पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराना, तथा (iii) विशेष रूप से चक्रवातों, त्सुनामी लहरों और सूखे तथा बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के आगमन की पूर्वसूचना प्राप्त करने और उनके दौरान सहायता आयोजित करने हेतु विश्वव्यापी स्तर पर वैज्ञानिकों के बीच पारस्परिक सहयोग स्थापित करने पर बल देना।

इस दौरान निम्न मुख्य कार्यक्रम आयोजित किए गए :

एक्सपो-98 – पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन में 22 मई से 30 सितंबर 1998 तक, एक अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी आयोजित की गई जिसका मुख्य विषय था "दि ओशंस : ए हेरीटेज फॉर द फ्यूचर" (सागर : भविष्य के लिए धरोहर)। इस प्रदर्शनी में भारत सहित 115 देशों ने भाग लिया था। इसमें यूनेस्को का भी एक पंडाल था जिसमें सागर से संबंधित विभिन्न मॉडल प्रदर्शित किए गए थे।

संयोग से 1998 वास्को-द-गामा की भारत यात्रा का पंचशताब्दी वर्ष भी था।

सागर विषयक प्रकाशन – अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष के दौरान यूनेस्को

और अंतःसरकारी सागरवैज्ञानिक आयोग के शिक्षाविदों ने सागर विषयक शिक्षा पर एक विशेष पैकेज तैयार किया। साथ ही **ह्यूमेनिटी एंड द सी** (मानवता और सागर) पर एक बहुखंडीय विश्वकोश और **इलेक्ट्रोनिक यूनाइटेड नेशंस इंटरएक्टिव एटलस ऑफ द ओशन्स** प्रकाशित करने का निश्चय किया गया।

संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों ने सागरविज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं को पुरस्कृत करने की योजना भी तैयार की।

मई 1998 में संयुक्त राष्ट्र सीरीज के अंतर्गत एक विशेष डाक टिकट जारी की गई। अंतःसरकारी सागरवैज्ञानिक आयोग के सदस्य देशों में से 20 देशों ने इस 'वर्ष' के दौरान विशेष डाक टिकटें जारी कीं।

शोध और प्रशिक्षण यात्राएँ – अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष के दौरान अनेक देशों ने शोध-सह-प्रशिक्षण समुद्री यात्राएँ आयोजित कीं। सामान्य जनता में सागर के विभिन्न पहलुओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने की दृष्टि से इन यात्राओं में भाग लेने वाले जहाज रास्ते में बंदरगाहों पर रुकते तथा प्रर्दशनी और व्याख्यान आदि आयोजित करते थे।

स्वतंत्र विश्व सागर आयोग – वर्ष 1995 में संयुक्त राष्ट्र विश्वविद्यालय, तोक्यो, में स्वतंत्र विश्व सागर आयोग (इंडीपेंडेंट वर्ल्ड कमीशन आन दि ओशन्स) की स्थापना की गई। इस आयोग ने सागर प्रवृतियों का गहन मूल्यांकन करने के बाद 1998 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के समक्ष अपनी रिपोर्ट पेश की। बाद में 1998 में यह रिपोर्ट **दि ओशंस : अवर फ्यूचर** नाम से कैंब्रिज यूनीवर्सिटी प्रैस द्वारा प्रकाशित भी की गई।

अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष के दौरान संसार के अनेक देशों में सम्मेलन/परिसंवाद/कार्यशालाएँ आदि आयोजित किए गए।

सागर चार्टर – सेंट जॉन्स, न्यूफाउंडलैंड, कनाडा, में सितंबर 1997 में आयोजित सागर सम्मेलन में एक सागर चार्टर जारी किया गया। कोई भी देश इसे कानूनी रूप से मानने के लिए बाध्य नहीं है। यह सागरों और तटीय क्षेत्रों के संरक्षण हेतु कार्यक्रमों को आरंभ करने की घोषणा है।

भारत में कार्य – अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष के दौरान भारत में भी सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं ने अनेक कार्यक्रम आयोजित किए थे। इस दौरान महासागर विकास विभाग और राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान ने सागर की जैव और निर्जीव संपदा, उससे संबंधित संस्थागत और कानूनी पहलू तथा सागर-प्रदूषण, समुद्री सूक्ष्म जीवाश्म, तटीय अपरदन आदि पर परिसंवाद आयोजित किए थे।

महासागर विकास विभाग अंतर्गत कार्यरत स्वैच्छिक संस्था, सोसायटी फॉर दि इंडियन ओशन स्टडीज़, ने इस वर्ष तीन अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों – "इक्कीसवीं सदी में हिंद महासागर", "हिंद महासागर : जलवायु और पर्यावरण पर प्रभाव" तथा "सागर के स्रोतों का वहनीय विकास : वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक और कानूनी पक्ष" का आयोजन किया। साथ ही अनेक पत्रिकाओं और पुस्तकों का भी प्रकाशन किया और अनेक व्याख्यान आयोजित किए।

यूनेस्को ने 9 अक्तूबर, 1998, को भारत में अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष का विधिवत आरंभ किया। इस वर्ष के दौरान महासागर विकास विभाग ने **माई ओशन चार्टर** (मेरा सागर-चार्टर) भी जारी किया।

11–समुद्री पर्यावरण सुरक्षा : अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ ही मानव समुदाय की आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं। कतिपय उन्नत राष्ट्रों ने महासागरों में खोज कार्य आरंभ किए तथा अपने ढंग से सागर संपदा का उपयोग करने लगे। महासागरों में खनिज और खाद्य पदार्थों का विशाल भंडार मौजूद है। इसके अनियंत्रित उपयोग को रोकने तथा विश्व स्तर पर उचित व्यवस्था बनाए रखने के लिए नियम तथा अधिनियम बनाने की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

तदनुसार दिसंबर, 1982 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने जमैका में एक सम्मेलन – सागर के कानूनों पर तीसरा संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन – आयोजित किया। इसमें सागर संबंधी कानून और नियमावली तैयार करने हेतु 119 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित यह सम्मेलन अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। इसमें अनेक देशों ने आपस में विचार-विमर्श करके सागर संबंधी 320 नियमों से युक्त "जमैका समझौता" का मसौदा तैयार किया। अब तक संसार के अधिकांश देशों ने समुद्र की संपदा के उपयोग से संबंधित इस समझौते पर सहमति प्रदान कर दी है किंतु आश्चर्य और खेद की बात है कि ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जर्मनी जैसे विकसित देश इस समझौते से सहमत नहीं हैं। वैसे ये ही देश गहरे सागर में संचित खनिज संपदा का बेरोकटोक दोहन करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

समुद्री संसाधनों के उपयोग के संबंध में पहले से निर्धारित अंतर्राष्ट्रीय नियमों के अंतर्गत सागरीय इलाकों को दो वर्गों में रखा गया है। पहलाः प्रादेशिक सागर (जिसमें आंतरिक जल राशि भी शामिल है) तथा दूसराः खुला सागर। इस बारे में पारंपरिक मान्यता यह है कि प्रादेशिक सागर में तटीय देश का नियंत्रण रहेगा तथा खुले सागर में किसी भी एक राष्ट्र का आधिपत्य नहीं होगा। हर देश वहाँ उपलब्ध संसाधनों का इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र होगा।

अनन्य आर्थिक क्षेत्र

कुछ वर्षों बाद खुले सागर में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करने पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पुनः विचार किया गया। इस संदर्भ में काफी विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय लिया गया कि खुले समुद्री क्षेत्र की संपदा और उसकी तली में मौजूद खनिज संपूर्ण मानव समुदाय की संपत्ति हैं और इनका उपयोग कोई भी देश, मानव समुदाय के हित में, शांति के लिए, कर सकता है, परंतु सामरिक उद्देश्य के लिए नहीं।

उक्त निर्णय को एशियाई और अफ्रीकी देशों ने हिंद महासागर के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण पाया। साथ ही उन्होंने यह उम्मीद भी जाहिर की कि सागर को युद्ध अभ्यासों के लिए तथा प्रदूषक पदार्थों को फेंकने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाएगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रादेशिक सागर के बारे में एक व्यावहारिक सीमा-रेखा भी तय की, जिसके अनुसार तट से 200 नॉटिकल मील की दूरी तक सागर का उपयोग करने का अधिकार तटीय देशों को दिया गया। किंतु कई क्षेत्रों में, विशेषकर द्वीप-समूहों तथा यूरोप के कई तटीय इलाकों में स्थिति उलझनपूर्ण हो गई, क्योंकि वहाँ 200 नॉटिकल मील के अंतर्गत एक से अधिक देशों के इलाके आ जाते हैं। ऐसी स्थिति में संबद्ध देशों ने आपस में समझौता कर अपने क्षेत्रीय कानून भी बनाए हैं, जिन पर संयुक्त राष्ट्र से सहमति प्राप्त कर ली गई है।

सागर से संबंधित कार्य-कलापों को नियंत्रित करने हेतु कानून बनाने की प्रक्रिया में प्रादेशिक सागरीय क्षेत्र के साथ उसके आर्थिक उपयोग की बात पर भी विचार किया गया। इस क्षेत्र को "अनन्य आर्थिक क्षेत्र" (एक्सक्लूज़िव इकोनोमिक ज़ोन — ई.ई.जैड.) नाम दिया गया। किसी देश के अनन्य आर्थिक क्षेत्र में उस देश विशेष को अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं जिनमें मछली पकड़ने के विशेष अधिकार भी शामिल हैं। देश विशेष की अनुमति के बिना कोई अन्य देश उस क्षेत्र में मछली नहीं पकड़ सकता।

अनन्य आर्थिक क्षेत्र में आमतौर से तट के निकट का उथला सागर

12—414 M/o HRD/2003

हिंद महासागर की पर्यावरणीय सुरक्षा के मामले पर 'सार्क' (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग) के भागीदार देशों के संगठन ने भी ध्यान दिया है। हिंद महासागर क्षेत्र में स्वच्छ पर्यावरण बनाए रखने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन (आई.एम.ओ.) ने दक्षिणी एशियाई देशों के साथ एक सम्मेलन आयोजित किया था जिसमें बांग्लादेश, भारत, मालद्वीप तथा श्रीलंका के प्रतिनिधियों ने शामिल होकर एक समन्वय समिति बनाई थी।

ऐसा देखा गया है कि औद्योगिक विकास और बढ़ती हुई आबादी के कारण हिंद महासागर के तटीय क्षेत्र में स्थित नगरों में जल प्रदूषण बढ़ने लगा है। इसे नियंत्रित करने के लिए सार्क देशों के सहयोग से एक कार्य-योजना बनाई गई है, जिसमें भारत, बांग्लादेश, मालद्वीप, श्रीलंका और पाकिस्तान शामिल हैं। इसके अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ के सहयोग से ऐसे नियम तथा अधिनियम बनाए जाएंगे, जिनसे हिंद महासागर के पर्यावरण को प्रदूषण से बचाए रखा जा सके।

12 – भविष्य की आशा

"गरीबी सहित ऐसी बहुत कम विश्वव्यापी समस्याएँ हैं जो सागर से घनिष्ठ रूप से संबंधित नहीं हैं"

—जिओफ्रे हॉलैंड

अध्यक्ष, अंतःसरकारी सागरवैज्ञानिक आयोग

(संयुक्त राष्ट्र महासभा में अंतर्राष्ट्रीय सागर वर्ष की घोषणा करते हुए)

इंडियन साइंस कांग्रेस के सत्तरवें अधिवेशन (1983) को, मुख्य अध्यक्ष के पद से, संबोधित करते हुए, प्रसिद्ध सागरवैज्ञानिक, प्रो. रामचंद्रन, ने कहा था "मानव विकास और सागर विकास का आपस में अटूट संबंध है। मानव का भविष्य सागर से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। सागर में ही भुखमरी, महामारी, स्थानाभाव और सामाजिक असमानताओं के हल छिपे हुए हैं। चाहे कोई इस बात से सहमत हो अथवा नहीं परंतु यह एक निश्चित तथ्य है कि सागर ही वह स्थल है जहाँ हमें अधिक संतुलित पर्यावरण और श्रेष्ठतर जीवन मिल सकता है।"

भारत के लिए हिंद महासागर अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वह हमारे भविष्य की आशा के साथ हमारे पास भावी पीढ़ियों की धरोहर भी है। हमें जहाँ एक ओर उसकी संपदा का समुचित उपयोग करना है वहाँ दूसरी ओर उसे स्वच्छ और स्वस्थ भी बनाए रखना है।

हाल ही में प्रकाशित **"इंडियन ओशन इन द ट्वेंटीफर्स्ट सेंचुरी"** (इक्कीसवीं सदी में हिंद महासागर) पुस्तक में जगतप्रसिद्ध सागरवैज्ञानिक एस.जैड. कासिम हिंद महासागर के अतीत और भविष्य की चर्चा करते हुए बताते हैं कि भारत ने सागरविज्ञान के सब क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है। पिछले कुछ दशकों में हिंद महासागर के भौतिक लक्षणों, जीव-जंतुओं, खनिज संपदा आदि के बारे में भारतीय वैज्ञानिकों ने काफी जानकारियाँ हासिल कर ली हैं और "इक्कीसवीं सदी में हिंद महासागर की संपदा का अधिक कुशलता से उपयोग करने की रणनीतियाँ बनायी जा रही हैं"।

हमें पूरी आशा और विश्वास है कि हिंद महासागर से हम अपनी अनेक ज्वलंत (भौतिक) समस्याओं के हल प्राप्त कर सकेंगे। आइए ! देखें हम ऐसा किस प्रकार कर सकते हैं :

पेय जल

यद्यपि हमारे देश में वर्षा की औसत मात्रा 105 सेमी. प्रतिवर्ष है परंतु देश के हर भाग में वह एकसमान नहीं होती।

इसके अतिरिक्त हमारे देश में 17.75 करोड़ हेक्टा मीटर जल स्रोत हैं जिनमें से हम केवल 2.64 करोड़ हेक्टा मीटर का ही उपयोग कर पा रहे हैं। परिणामस्वरूप हमारी 50 प्रतिशत आबादी को पर्याप्त मात्रा में पेय जल भी नहीं मिल पाता। पानी की इस कमी को हम हिंद महासागर से पूरा कर सकते हैं। इसके लिए हमें उन तकनीकों – आसवन, इलेक्ट्रोडायलिसिस और विलोम परासरण – में बहुत संशोधन करने होंगे।

यदि हम इनमें से किसी एक अथवा सभी तकनीकों से समुद्री पानी को वांछित पैमाने पर पीने योग्य, सिंचाई योग्य अथवा उद्योगों के लिए उपयोगी जल में बदलना, चाहें, तब अरब सागर और बंगाल की खाड़ी हमें पानी के इतने बड़े भंडार प्रदान कर सकेंगी जिनसे हम कितनी भी मात्रा में, कितने भी समय तक, पानी ले सकेंगे। यही बात हिंद महासागर के तट पर बसे अन्य देशों के साथ भी लागू होती है।

कुछ समय पूर्व इस विषय पर एक और सुझाव भी प्रस्तुत किया गया था। वह था सुदूर अंटार्कटिक सागर से विशाल हिमखंडों को जहाजों द्वारा खींचकर, मरूस्थल प्रदेशों तक लाने का। प्रथम दृष्टि में हास्यापद और अव्यावहारिक प्रतीत होते हुए भी अब वैज्ञानिकों के लिए यह गंभीर चिंतन का विषय बन चुका है।

खाद्य

हिंद महासागर के तट पर बसे कुछ देश, बहुत छोटे पैमाने पर, खाद्य पदार्थों के रूप में समुद्री खरपतवारों का उपयोग कर रहे हैं। शोध और अध्ययन

करने पर इन खरपतवारों की अन्य अनेक ऐसी प्रजातियों का पता चल सकता है जिन्हें बड़े पैमाने पर खाद्यों के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। थल की अनाज उत्पादन की एक सीमा होती है इसलिए भारत को भी सागर से खाद्यान्नों की पूर्ति करने की ओर अपना ध्यान देना चाहिए।

आजकल भारत में, इन खरपतवारों का वार्षिक उत्पादन लगभग 50,000 टन है और भली प्रकार से 'खेती' करने से उसके एक लाख टन प्रति वर्ष तक पहुंच जाने की पूर्ण आशा है। इस बारे में जल्दी बढ़ने वाली, अधिक उत्पादन देने वाली और प्रोटीन-बहुल खरपतवारों की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। यह हर्ष का विषय है कि इस क्षेत्र में हमारे अनेक शोध संस्थान, यथा केंद्रीय नमक और समुद्रीरसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर, केंद्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान, राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान और आंध्र विश्वविद्यालय ने काफी कार्य किया है।

वैज्ञानिकों की दृष्टि में समुद्री खरपतवारों की तुलना में पादप प्लांक्टन बेहतर खाद्य हैं लेकिन पादप प्लांक्टनों को सीधे खाने योग्य व्यंजनों में बदलने के लिए हमें इन्हें बहुत बड़ी मात्रा में पकड़ना पड़ेगा। अब तक ज्ञात तकनीकों के अनुसार यह बहुत श्रमसाध्य और महंगा कार्य है। 50 टन पादप प्लांक्टन प्राप्त करने के लिए 1.5 करोड़ टन पानी को छानना पड़ेगा। अतएव हमें नई तकनीकें विकसित करनी पड़ेंगी। ये तकनीकें 'प्राकृतिक' विधियों पर आधारित हो सकती हैं। उदाहरणार्थ अपना मुख्य भोजन, जंतु प्लांक्टन पकड़ने के लिए नीली व्हेल अपना मुँह खोलकर सागर में तैरती जाती है। उसके मुँह में स्थित छन्ने में से प्लांक्टन छन कर अंदर जाते रहते हैं और पानी बाहर गिरता रहता है। हमें भी इसी प्रकार का कोई यंत्र विकसित करना होगा।

सागरों में खाद्य के रूप में जो जीव सबसे महत्त्वपूर्ण है और जिसे मनुष्य हजारों वर्षों से खाता आ रहा है वह है मछली। आज हम अपनी खाद्य आवश्यकता के जिस 3 प्रतिशत भाग की पूर्ति सागर से कर रहे हैं उसमें सबसे अधिक मात्रा मछलियों की है। यद्यपि सागर में लगभग 20 हजार प्रजातियों की मछलियाँ निवास करती हैं और उनकी मात्रा कई खरब टन

अनुमानी जाती है परंतु हम अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग करके भी काफी कम मात्रा में मछलियाँ पकड़ रहे हैं और इस अल्प मात्रा में हिंद महासागर का योग और भी अल्प है — कुल मात्रा का मात्र 5 प्रतिशत। इस मात्रा को आधुनिक विधियों का उपयोग करके 4–5 गुना बढ़ाया जा सकता है।

इस संबंध में भारत की स्थिति बेहतर नहीं है। जैसा कि आप पढ़ चुके है कि उसके तटीय सागरों से लगभग 22 लाख टन मछलियाँ ही प्रतिवर्ष पकड़ी जाती हैं। भारत में मछलियों की अधिकांश मात्रा तट से 15 किमी. दूर तक के समुद्र में पकड़ी जाती है जबकि मछलियों के बढ़िया क्षेत्र तट से 50 किमी. और उससे भी अधिक दूरी तक स्थित होते हैं। निश्चय ही तट से अपेक्षाकृत अधिक दूरी पर स्थित इन क्षेत्रों से मछलियाँ पकड़ने के लिए न केवल बेहतर मत्स्यन पोतों का इस्तेमाल करना होगा वरन् नई और बेहतर तकनीकें भी अपनानी होंगी।

इसके लिए हमें बेहतर मत्स्यन नौकाओं का तथा सोनार और अवरक्त किरणों, लेज़र, पराश्रव्य युक्तियों आदि का उपयोग करना पड़ेगा तथा दूरसंवेदी उपग्रहों की भी मदद लेनी पड़ेगी।

मछलियों तथा झींगे, श्रिंप, लोब्स्टर जैसे जीवों का उत्पादन बढ़ाने हेतु जल कृषि भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। परंतु इसके लिए भी न केवल उसकी तकनीकों में सुधार करना होगा वरन् उसके क्षेत्र में भी विस्तार करना होगा।

औषधियाँ

अधिकाश समुद्री जीवों का विकास थलीय जीव-जंतुओं की तुलना में काफी पहले हो गया था। यद्यपि औषधीय गुणों की दृष्टि से अब तक केवल एक प्रतिशत समुद्री पौधों और जंतुओं का ही परीक्षण किया गया है, परंतु ऐसे आभास मिले हैं कि उनमें से अधिकांश में औषधीय गुण मौजूद हो सकते हैं।

यद्यपि अगार, एल्जीनेट, कॉड लिवर ऑयल, सोडियम मोरुलेट, प्रोटामीन जैसे कुछ समुद्री उत्पादों का उपयोग बहुत समय से हो रहा है परंतु

अब भी औषधि निर्माण में प्रयुक्त किए जाने वाले लगभग 10,000 पदार्थों में से केवल 0.5 प्रतिशत ही सागर से प्राप्त किए जाते हैं। वैसे समुद्री जीव-जंतुओं से ऐसे हजारों पदार्थ प्राप्त किए जा सकते हैं जिनका उपयोग औषधियों में तथा कीटनाशियों आदि के रूप में किया जा सकता है। इन पदार्थों में हैलोजनित यौगिक, स्टीरॉयड, प्रोस्टाग्लैंडिन तथा अनेक प्रकार के टॉक्सिन शामिल हैं।

अन्य सागरों की भांति हिंद महासागर में भी ऐसे जीव-जंतु बड़ी मात्रा में मौजूद हैं जिनसे औषधि निर्माण हेतु रासायनिक पदार्थ प्राप्त होने की संभावना है। ऐसे जीवों और उनसे औषधि-संभाव्य पदार्थ अलग करने के बारे में 1978 में ही केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान और राष्ट्रीय सागरविज्ञान संस्थान ने मिलकर कार्य आरंभ किया था। बाद में, इस कार्य में संयुक्त राज्य अमेरिका की कुछ संस्थाओं का भी सहयोग मिल गया।

अब तक भारत में समुद्री जीवों से तैयार किए गए लगभग 500 निसारों के औषधियों में उपयोग करने के लिए परीक्षण किए गए हैं। इनमें से 165 उपयोगी पाए गए हैं। इन पदार्थों में ऐसे गुण मौजूद हैं जिनसे इनका उपयोग हृदय और तंत्रिका तंत्र के तथा उच्च रक्त दाब आदि रोगों के उपचार हेतु औषधियों में तथा बैक्टीरियानाशी, पीड़ाहारी आदि के रूप में किया जा सकता है परंतु इनका कदाचित सबसे प्रमुख गुण है गर्भनिरोधक। अब तक 4 समुद्री खरपतवारों, 6 स्पंजों और 5 कोरलों में गर्भनिरोधक गुण पाए गए हैं। साथ ही इनसे अल्कोहल, वसीय अम्ल, डाइटर्पीन आदि, अनेक पदार्थों का निर्माण किया जा सकता है।

गोवा मेडिकल कालेज में मैंग्रोव, *एकैंथस इलिसिफोलियस* के औषधीय गुणों का परीक्षण करने पर पाया गया कि उसके मेथानोलिक निसार में पीड़ाहारी और सूजन रोकने के बढ़िया गुण मौजूद हैं। साथ ही उसके इस्तेमाल से नशे की लत नहीं पड़ती। उसके ये गुण उसमें मौजूद 2-बेंजोक्स एजोलिनोल यौगिक के फलस्वरूप होते हैं। यह यौगिक काला आजार के इलाज में भी उपयोगी पाया गया है।

लाल शैवाल *एकैंथेफोरा स्पाइसीफोरा* से एक बैक्टीरियारोधी यौगिक अलग किया गया है। इस प्रकार अनेक समुद्री खरपतवारों से औषधीय गुणों से युक्त यौगिक प्राप्त किए जा चुके हैं।

इस संबंध में उड़ीसा के तट पर पाए जाने वाला घोड़े की नाल के आकार का केकड़ा (हॉर्स शू क्रैब) भी उल्लेखनीय है। उससे कैंसर के उपचार हेतु औषधि प्राप्त की जा सकती है। इसलिए इस केकड़े को संरक्षण-योग्य जंतु घोषित कर दिया गया है।

यह पाया गया है कि समुद्री जीव-जंतु कैंसर, एड्स तथा अन्य अनेक भयंकर रोगों से पीड़ित नहीं होते। इससे यह अनुमान भी लगाया जाता है कि उनके शरीर में ऐसे रोगों से रक्षा कर सकने योग्य पदार्थ मौजूद होते हैं। अध्ययनों और परीक्षणों से इन पदार्थों का पता लगाया जा सकता है और उन्हें अलग कर मनुष्यों पर उनके परीक्षण किए जा सकते हैं।

खनिज

प्राकृतिक रूप से पृथ्वी पर पाए जाने वाले 92 रासायनिक तत्वों में से समुद्री पानी से लगभग 60 तत्व निकाले जा सकते हैं। यद्यपि आर्थिक रूप से, व्यावहारिक विधियाँ ज्ञात न होने के कारण, समुद्री पानी से आजकल साधारण नमक के अतिरिक्त मैग्नीशियम, ब्रोमीन और पोटैशियम जैसे कुछ ही पदार्थ व्यावसायिक पैमाने पर प्राप्त किए जा रहे हैं परंतु प्रौद्योगिकी के तेजी से विकसित होने के फलस्वरूप यह आशा की जाती है कि भविष्य में उससे अन्य पदार्थ भी प्राप्त होने लगेंगे। समुद्री पानी से सोना प्राप्त कर अपने देश, जर्मनी, का कर्ज चुकाने में प्रो. हेबर असफल रहे थे परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि इस कार्य में भविष्य में भी वैज्ञानिकों को असफलता ही हाथ लगेगी। इस बात की पूरी संभावना है समुद्री पानी से सोना ही नहीं चांदी, प्लेटिनम, यूरेनियम और भारी पानी जैसे पदार्थ भी व्यावसायिक पैमाने पर प्राप्त किए जा सकेंगे।

हिंद महासागर की तली पर पड़ी बहुधात्विक पिंडिकाओं से भविष्य में कोबाल्ट, निकिल आदि जैसी महत्त्वपूर्ण धातुओं की पर्याप्त मात्राएँ प्राप्त होने

की हमें पूर्ण आशा है। वे हमारे उज्ज्वल भविष्य की प्रतीक हैं परंतु उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं हिंद महासागर की तली पर बनी उष्णजलीय जमावटें। ऐसी जमावटें लाल सागर की तली में पाई गई हैं जहाँ ज्वालामुखी क्रियाओं के फलस्वरूप नई तली बन रही है। इन जमावटों में तांबे, सीसे और जस्ता जैसी धातुओं के सल्फाइड-अयस्कों के बहुत बड़े भंडार हैं।

लाल सागर की तली पर मध्य हिंद महासागर पर्वत शृंखला फैली हुई है। इस पर्वत शृंखला के अन्य भागों में भी इस प्रकार की जमावटों के पाए जाने की आशा है। वैसे हमारी अंडमान बेसिन में इस प्रकार की जमावटों की उपस्थिति का अनुमान है।

यद्यपि वर्तमान में भारत में पेट्रोलियम की अधिकांश मात्रा अपतटीय क्षेत्रों यथा बांबे हाई, बेसिन आदि से प्राप्त हो रही है परंतु अनुमान है कि अब भी देश के तट के निकट लगभग 200 मीटर की गहराई तक 3,80,000 वर्ग किमी. क्षेत्र में फैली अवसादी बेसिन में पेट्रोलियम और गैस के अन्य बड़े क्षेत्र मिल सकते हैं। इस संबंध में सर्वेक्षण कार्य जारी है। गोदावरी और कृष्णा नदियों के डेल्टायी क्षेत्र इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

ऊर्जा

सागर की लहरों से, उसके विभिन्न जल स्तरों के तापों में अंतर से और उसके ज्वार-भाटों से अब भी, बिजली पैदा की जा रही है परंतु उसकी मात्रा अत्यंत कम है। अब तक न तो उससे कोई बड़ा कारखाना चलाया जा रहा है और न ही किसी बड़े शहर को रोशन किया जा रहा है। इसका मुख्य कारण है उक्त स्रोतों में से किसी से भी बिजली पैदा करने हेतु ज्ञात तकनीकों में अब भी बहुत संशोधन की जरूरत है। साथ ही ,उन तकनीकों को कार्यान्वित करने के लिए बहुत बड़ी राशि, समय और परिश्रम चाहिए। पर निकट भविष्य में, ऊर्जा के अधिकांश थलीय स्रोतों के शीघ्र ही समाप्त हो जाने की आशंका, और उनके द्वारा फैलाए जाने वाले प्रदूषण में वृद्धि तथा ऊर्जा की निरंतर बढ़ती हुई आवश्यकताएँ, वैज्ञानिकों को सागर से बड़ी मात्रा में ऊर्जा प्राप्त करने के लिए मजबूर कर देंगी।

ओटेक तकनीक से बिजली पैदा करने की दृष्टि से हमारा देश "स्वर्ण पट्टी" में आता है। हमें आशा है कि हमारे वैज्ञानिक निकट भविष्य में ओटेक से बड़े पैमाने पर बिजली बनाने के लिए गंभीर प्रयत्न करेंगे।

साथ ही लहरों और ज्वार-भाटाओं से भी बिजली उत्पन्न करेंगे और विझिजंम जैसे प्रयोगों को बड़े पैमाने पर दुहराएंगे।

उद्योग

संसार के अन्य देशों की भांति भारत में भी सागर पर आधारित अनेक बड़े उद्योग कार्यरत हैं। ये हैं — जल परिवहन, मछली पकड़ना, जल जहाजों का निर्माण, बंदरगाहों का निर्माण, सागर से पेट्रोलियम और गैस निकालना और पर्यटन आदि। इनके अतिरिक्त कुछ छोटे उद्योग भी हैं। इन उद्योगों में आज भी करोड़ों आदमी रोजगार पा रहे हैं। इन उद्योगों की प्रगति और विस्तार से अन्य लाखों लोगों को रोजगार उपलब्ध हो जाने की आशा है।

मछली पकड़ना बहुत प्राचीन व्यवसाय है। भारत में आज भी इसमें एक करोड़ से भी अधिक व्यक्ति कार्यरत हैं। अब इस उद्योग के साथ मछली उपचार, बर्फ उत्पादन, रिफ्रीजरेशन जैसे अनेक सहायक उद्योग जुड़ गए हैं। ये उद्योग अब भी अधिकांशतः निजी क्षेत्र में हैं और इनमें दिन प्रतिदिन विस्तार हो रहा है।

आज भारत लगभग चार हजार करोड़ रुपए मूल्य के समुद्री खाद्य निर्यात कर रहा है। निर्यात की जाने वाली सामग्री में मछलियों के अतिरिक्त श्रिंप प्रमुख हैं। आजकल इनमें स्क्विड और कटलफिश भी शामिल हो गए हैं।

मछली तथा अन्य जीवों को पकड़ने हेतु नए क्षेत्रों का पता लगा कर और नई तकनीकों का उपयोग करके हम मत्स्यन उद्योग तथा उसके सहायक उद्योगों का और विस्तार कर सकते हैं। इससे न केवल लाखों और लोगों को रोजगार उपलब्ध हो सकेगा वरन् विदेशी मुद्रा की प्राप्ति में भी बढ़ोत्तरी होगी।

जहाजरानी अत्यंत प्राचीन उद्योग है। प्राचीन काल से ही जल-जहाजों द्वारा लोग एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते रहे हैं और माल ढोते रहे

हैं। आज भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में मुख्यतः जल-जहाजों का ही उपयोग किया जाता है। यद्यपि हमारे देश में जहाज निर्माण और जहाज परिवहन उद्योग बहुत पुराने थे परंतु आधुनिक युग के आरंभ में ये अन्य देशों के उद्योग के मुकाबले में बहुत पिछड़ गए। स्वतंत्रता के बाद इन उद्योगों की प्रगति पर भी समुचित ध्यान दिया जाने लगा। कोलकाता, विशाखापत्तनम, मुंबई, गोवा, कोचीन आदि स्थानों पर शिपयार्ड स्थापित किए गए हैं और इनमें जल-जहाजों के निर्माण और मरम्मत कार्य आरंभ किए गए हैं। आज भारत इन दोनों क्षेत्रों में आत्मनिर्भर है।

जहाजरानी उद्योग से ही जुड़ा है बंदरगाह निर्माण उद्योग।

बस्तियाँ बसेंगी सागर में

तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण प्रतिदिन भयावह होती जा रही आवास की समस्या की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान काफी पहले ही चला गया था। इस को हल करने के प्रयत्न में उन्होंने सागर के गर्भ में विशेष 'घर' बनाकर रहने के सफल प्रयोग भी किए थे। अपने इन प्रयोगों में कुछ दिनों तक वे उथले सागर में रहे भी थे।

सागर के गर्भ में रहने में दो प्रमुख समस्याएँ सामने आ सकती हैं। पानी का असहनीय दाब और सांस लेने के लिए मुक्त ऑक्सीजन की अनुपस्थिति। दाब की समस्या को विशेष पोशाक पहनकर हल किया जा सकता है। पर मुक्त ऑक्सीजन की अनुपस्थिति की समस्या को हल करना इतना आसान नहीं है!

इस समस्या को हल करने के लिए अब वैज्ञानिक संश्लेषित गलफड़े बनाने के प्रयास कर रहे हैं। वे पॉलीएस्ट्रीन और रबर सिलिकोन की ऐसी पतली झिल्ली बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं जो पानी में घुली ऑक्सीजन को तो शरीर में जाने देती है परंतु स्वयं पानी को रोक लेती हैं। इस प्रकार की झिल्ली पहन लेने के बाद मनुष्य सागर के गर्भ में रहते हुए भी उसी प्रकार आसानी से, सांस ले सकेगा जैसे मछली लेती है।

इस प्रकार सागर में मनुष्य की अधिकांश समस्याओं के हल मौजूद हैं।

हाँ ! उन्हें प्राप्त करने के लिए समुचित रणनीतियाँ बनानी होंगी और उन्हें योजनाबद्ध तरीके से कार्यांवित करना होगा।

हमें आशा ही नहीं वरन् विश्वास है कि इक्कीसवीं सदी में भारत अपनी अधिकांश समस्याओं के हल हिंद महासागर में प्राप्त कर सकेगा। उसकी पानी की आवश्यकता पूरी हो सकेगी। हिंद महासागर के मत्स्यन क्षेत्रों को हानि पहुँचाए बिना पर्याप्त मात्रा में मछलियाँ तथा अन्य खाद्य जंतु प्राप्त हो सकेंगे। जलकृषि के क्षेत्र और तकनीकों में विस्तार होगा। सागर से ही हमें अनेक औषधि-उपयोगी रसायन प्राप्त हो सकेंगे। मध्य हिंद महासागर बेसिन से बहुधात्विक पिंडिकाएँ इतनी मात्रा में निकाली जाने लगेंगी कि उनसे हम निकिल और कोबाल्ट जैसी धातुओं की भी अपनी मांगों को पूरी कर सकेंगे। सागर के तटों पर छोटे-छोटे ही नहीं वरन् विशाल ओटेक संयंत्रों की स्थापना हो जाएगी। वे तटीय क्षेत्रों की ही नहीं वरन् आंतरिक प्रदेशों की भी ऊर्जा-आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे और हो सकता है कि अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के गर्भ में भारतीयों की बस्तियाँ भी स्थापित हो जाएं।

इतना सब करने पर भी हिंद महासागर स्वस्थ और स्वच्छ बना रहेगा। उसका पानी निर्मल और शुद्ध होगा और उसमें जीव-जंतुओं की भरमार होगी।

हम आशावान हैं और हमारा भविष्य उज्जवल है।

शब्द-सूची (हिंदी-अंग्रेजी)

अंडजनन	Spawning
अंतरापृष्ठ	Interface
अंतःक्रिया	Interaction
अंतर्जलीय	Underwater
अंतःज्वारीय क्षेत्र	Intertidal zone
अक्षांश	Lattitude
अणुसंख्य गुणधर्म	Colligative property
अटॉल/प्रवाल द्वीप	Attol
अत्यधिक गहरा	Hadal
अधस्तल	Subsurface
अधिकेंद्र (भूकंप)	Epicentre
अधिप्राणिजात	Epifauna
अधोध्रुवीय	Subpolar
अर्द्धपारगम्य झिल्ली	Semipermiable membrane
अत्यंतनूतन	Pleistocene
अतिनूतन	Pliocene
अनुप्रस्थ	Transverse
अपरद	Detritus
अपतट/तट से दूर	Offshore
–क्षेत्र	–zone
–ढाल	–slope

–द्रोणिका	–trough
–बालुभित्ति	–sandbar
–मत्स्यन	–fishing
–रोधिका	–bar
अप्रकाशी क्षेत्र	Aphotic zone
अपरदन	Erosion
अपवाह	Drift
अपशिष्ट	Waste
अपसरण	Divergence
अभिवहन	Adviction
अभिवृद्धि	Accretion
अभिसमुद्र	Seaward
अभिसरण	Convergence
अभूकम्पीय	Aseismic
अम्लीय चट्टान	Acid rock
अम्लीय वर्षा	Acid rain
अल्पनूतन	Oligocene
अवदाब	Depression
अवरक्त	Infrared
अवशिष्ट जमावट	Relict sediment
अवशिष्ट पुलिन	Relict beach
अवशोषण	Absorbtion
अवसर्पण	Slump
अवायवीय	Anaerobic
असंगतता	Anomoly
असंरक्षी गुण	Non-conservative property

अवसादन	Sedimentation
अवसादी	Sedimentary
आकाशी जल	Meteoric water
आग्नेय चट्टान	Igneous rock
आनमनी	Flexural
आर्डोविशिअन	Ordovician
आवास अवधि	Residence time
आविलता	Turbidity
इओसीन	Eocene
इवैपोराइट	Evaporite
उच्चतम ज्वार	High water
उत्थान	Rise
उत्परिवर्तन	Mutation
उत्स्रवण	Upwelling
उद्गम केंद्र (भूकंप)	Focus
उपतट	Inshore
उपोष्ण	Subtropical
उपांग	Appendage
उर्मिका	Ripple
उभयगामी गति	Amphidromic motion
उल्व तरल	Amniotic fluid
उष्णजलीय	Hydrothermal
ऊष्मा	Heat
गुप्त–	latent—
संवेद्य–	sensible–

ऊष्माधारिता	Thermal capacity
एककोशिक	Unicellular
एकमैन कुंडली	Ekman spiral
ऐल्बिडो	Albido
कंटिका	Spicula
कल्प	Period
कॉरिओलिस बल	Coriolis force
कार्बन यौगिकीकरण	Carbon fixation
कापिपोड	Copepod
कायिक जनन	Vegetative reproduction
कैल्शियमी	Calcareous
कोरल भित्ती	Coral reef
कोरल रोधिका/बैरियर भित्ति	Barrier reef
कोलायडी कण	Colloidal particle
कोष्ण	Warm
क्रस्टेशियाई	Crustacean
क्रिटेशस कल्प	Cretaceous period
क्रेटानी	Cratonic
क्लोरीनता	Chlorinity
क्षतिपूर्ति गहराई	Compensation depth
क्षैतिज	Horizontal
खंडज	Clastic
खरपतवार	Weed
खाई समुद्री	Trench Sea
खाड़ी रोध	Bay barrier
खाद्य शृंखला	Food chain

खुली खाड़ी	Bight
गभीर खड्ड	Canyon
गतिक तलाकृति	Dynamic topography
गभीर प्रकीर्णन परत	Deep scattering layer
गभीरवेलापवर्ती क्षेत्र	Bathypelagic zone
गभीर सागर	Bathyal sea
गहनतम खड्ड	Hadal
गहराई मापन	Sounding
ग्रंथिल	Glandular
गाईऑट	Guyot
गाद·	Silt
गोलाद्र्ध	Hemisphere
घूर्णी	Rotary
चंद्र दिन	Lunar day
चुंबकीय	Magnetic
चक्रवात	Cyclone
चतुर्थक	Quaternary
चरना	Grazing
चाप	Arc
जननक्षमता	Fecundity
जलकृषि	Aquaculture
जलधारा	Current
अधस्तल–	subsurface–
आविलता–	turbidity–
अपवाह–	drift–
प्रति–	reversed–

सघन–	density–
वेलांचली–	longshore–
भाटा–	ebb–
भूविक्षेपी–	geostropic–
जलमंडल	Hydrosphere
जलमार्ग	Channel
जलराशिकी	Hydrography
जलवैज्ञानिक	Hydrological
जलोढ़ पंखाकार जमावट	Alluvial fan
जीव-संदीप्ति	Bioluminescence
जीवाणुविज्ञान	Bacteriology
जीव–जीवी जमावट	Biogenous sediment
जीवमंडल	Biosphere
जीवाश्म	Fossil
जुरैसिक	Jurassic
जेटी	Jetty
जैवमात्रा	Biomass
जैवहर्मी/बायोहर्मी	Biohermal
जैवावासक	Biotope
ज्वार	Tide
अद्र्धदैनिक–	semidiurnal–
लघु–	neap–
बृहत्–	spring–
भित्ति–	bore–
भूमध्यरैखिक–	equatorial–
ज्वारनदमुख	Estuary
ज्वालामुखी पर्वतमाला	Ring of fire

टेकरी/टीला	Knoll
टोमोग्राफी	Tomography
ट्राइऐसिक	Triassic
ट्रैप	Trap
डिवोनी	Devonian
तट	Shore
तटबंध	Levee
तटरेखा	Shore line
तटीय प्रवालभित्ति	Fringing reef
तत्रजनिक	Authigenic
तनुतापी	Stenothermal
तनुलवणी	Stenohaline
तरंग-परास	Fetch
तरणक	Nekton
तलमज्जी	Demersal
तापीय (ताप के संबंध में)	Thermal
तृतीयकल्पी/तरशियरी	Tertiary
तूफान महोर्मि/झंझा महोर्मि	Storm surge
त्सुनामी	Tsunami
थर्मोक्लाइन	Thermocline
थर्मोहेलाइन	Thermohaline
थर्मोहेलाइन परिसंचरण	Thermohaline circulation
द्विकपाटी	Bivalve
द्वितीयक तटरेखा	Secondary shoreline
द्वीप चाप व्यवस्था	Island arc system

द्वीपसमूह	Archipelago
दुर्बलतामंडल	Asthenosphere
दृश्यांश	Outcrop
दैनिक	Diurnal
दैहिक	Somatic
दोलन	Oscillation
द्रुमाकृतिक	Dendritic
द्रोणी/द्रोणिका/गर्त	Trough
धातुमय	Metalliferous
ध्रुवीय परिभ्रमण	Polar wandering
ध्वनि चैनल	Sound channel
नॉट	Knot
निक्षालितक	Leachate
निक्षेप	Deposit
जलजनित–	hydrogeneous–
नितल जीवजात	Benthos
नितलस्थ	Benthic/Benthonic
निपंक	Ooze
निस्यंदी अशन	Filter feeding
पंखाकार घाटी	Fan valley
पपड़ी/पर्पटी	Crust
परपोषित	Heterotrophic
परभक्षण	Predation
परभक्षी	Predatory
परासरण	Osmosis
परिकल्पना	Hypothesis

परिक्षेपण	Dispersion
परिसंचरण तंत्र	Circulatory system
पर्मियन	Permian
पश्च जल	Back water
पाचक तंत्र	Digestive system
पारभासी	Translucent
पार्श्वीय	Lateral
पुराचुंबकत्व	Paleomagnetism
पुराजलवायु	Paleoclimatic
पुराजीवी	Paleozoic
पुरानूतन/पैलियोसीन	Paleocene
पुलिन	Beach
पुष्पपुंज/फुल्लिका	Bloom
पृथुतापी	Eurythermal
पृथुलवणी	Euryhaline
पोषी	Tropic
प्लवकविज्ञान	Planktonology
प्लांक्टन	Plankton
अंश–	mero–
अतिसूक्ष्म–	ultra–
जंतु–	zoo–
नैनो–	nano–
पादप–	phyto–
बैक्टीरिया–	bacteria–
बृहत–	macro–

महा–	mega–
सूक्ष्म–	micro–
होलो–	holo–
प्लांक्टन पुंज	Plankton bloom
प्लेसर	Placer
प्लेसर निक्षेप	Placer deposit
प्रकाशसंश्लेषण	Photosynthesis
प्रकीर्णन	Scattering
प्रक्षोभ	Turbulance
प्रतिबल	Stress
प्रतिध्वनिक गहराई मापन	Echo sounding
प्रतिपवन	Leeward
प्रवाह प्रतिरूप	Flow pattern
प्राग्जैविक क्षेत्र	Azoic zone
प्राथमिक उत्पादकता	Primary productivity
फेनिल तरंग	Surf
बफर	Buffer
बहिःस्राव	Effluent
बीजाणु	Spore
बेसिन	Basin
बैक्टीरियानाशी	Bacteriocide
ब्यूफोर्ट संख्या	Beaufort number
भंवर	Eddy
भग्नोर्मि क्षेत्र	Breaker zone
भूआकृतिक	Physiography

भूकम्पी	Seismic
भू–अभिनति	Geosyncline
भूवैज्ञानिक	Geologist/Geological
भौम जलस्तर	Water table
भ्रमिल	Vortex
भ्रंश	Fault
भ्रंश खंड	Fault block
मंदप्रकाशी क्षेत्र	Disphotic zone
मध्यजीवी	Mesozoic
मध्यनूतन	Miocene
मध्यमंडल	Mesosphere
मलबा	Debris
महाकल्प	Era
महातरंग	Swell
महाद्वीप	Continent
–उत्थान	–rise
–ढलान	–slope
–मार्जिन	–margin
–शेल्फ	–shelf
महासागरीय	Oceanic
–क्षेत्र	–province
–पपर्टी	–crust
–बेसिन	–basin
महोर्मि	Surge

माध्य उच्चतम ज्वार	Mean high water
–सागर तल	–sea level
मैंटल	Mantle
मैग्नज जल	Juvenile water
मोहोरोविसिक असांतत्य (मोहो)	Mohorovicic descontinuity (Moho)
युग	Epoch
रक्त ज्वार	Red tide
रीफ अंचल/भित्ति अंचल	Reef flat
रीफ/भित्ति/शैल भित्ति	Reef
रुद्धोष्म	Adiabatic
–प्रवणता	–gradient
रोधिका/भित्ति	Bar
लक्षण	Feature
लघुमहाद्वीप	Microcontinent
लवणता	Salinity
लहर/तरंग	Wave
आंतरिक–	internal–
उथली जल–	shallow water–
केशिका–	capillary–
गुरुत्व–	gravity–
प्रणोदित–	forced–
मुक्त–	free–
संक्रमण–	transition–
लैगून	Lagoon

वलन	Fold
वाम-पार्श्वीय	Left lateral
वाष्पन	Evaporation
विकास	Evolution
विकिरण	Radiation
विक्षोभ	Disturbance
वितल	Abyss
वितलीय	Abyssal
–पहाड़ी	–hill
–मैदानी	–plain
विभंग क्षेत्र	Fracture zone
विवर्तनिकी	Tectonics
विशिष्ट ऊष्मा	Specific heat
विसर्प	Meander
विस्थापन	Drift
वेलांचली	Littoral
वेलापवर्ती	Pelagic
अधि–	epi–
गभीर–	bathy–
मध्य–	meso–
वितल–	abysso–
वृताकार गति	Gyre
शेल्फ अवकाश/भग्नतट ढाल	Shelf break
शैल अपक्षयण	Rock weathering
शैवाल	Algae
शोल/माधस्थल	Shoal

संकरी खाड़ी	Creek
संदीप्तिशील	Luminescent
संरचना	Structure
सकल उत्पादन	Gross production
समतापरेखा	Isotherm
समतापीय	Isothermal
सममान रेखा	Isopleth
समलवण रेखा	Isohaline
–प्रसार	–spreading
समुद्री तली	Seafloor
–प्रसार	–spreading
समीर	Breeze
समुद्राभिगामी	Catadromous
समुद्री गुफा	Sea cave
–टीला	–mount
सहजीविता	Symbiosis
सहभोजिता	Commensalism
सिएल	Sial
सिल	Sill
सिमैटिक	Simatic
सिल्यूरियन	Silurian
सीनोज़ोइक/नूतनजीव	Cenozoic
सीमांत समुद्र	Marginal sea
सुपोषण	Eutrophication
सुप्रकाशित क्षेत्र	Euphotic zone

सुस्थितिक	Eustatic
सूचक प्रजाति	Indicator species
सूर्यातप	Insolation
सेश/सरतल दोलन	Seiche
स्तरीय प्रवाह	Laminar flow
स्थलज़ात	Terrigenous
स्थलमंडल	Lithosphere
स्थलाकृति	Topography
स्थानबद्ध	Sessile
स्फुरदीप्त	Phosphorescent
स्पिट	Spit
स्वपोषी	Autotroph
हैलोक्लाइन	Halocline
होलोसीन	Holocene

परिशिष्ट-दो

परिभाषाएं

अणुसंख्य गुणधर्म **Colligative property**

वे गुण जो घोल में उपस्थित रासायनिक तत्वों की संख्या के अनुसार विचरित होते हैं न कि उनकी संरचना के अनुसार। उदाहरणार्थ समुद्री पानी की लवणता में वृद्धि होने के साथ पानी के क्वथनांक और परासण में वृद्धि हो जाती है परंतु गलन बिंदु और वाष्प दाब घट जाता है।

अटॉल/प्रवालद्वीप-वलय **Atoll**

केन्द्रीय लगून को घेरे हुए वृताकार कोरल भित्ति। यह भित्ति सागर की तली पर से उत्पन्न होती है।

अत्यधिक गहरा **Hadal**

सागर के सबसे गहरे भाग से, जिसकी गहराई 6000 मीटर से अधिक होती है, संबंधित।

अधिकेंद्र (भूकंप का) **Epicenter**

भूकंप के फोकस के ऊपर, धरती की सतह पर, स्थित बिंदु।

अपरद **Detritus**

चट्टानों के विघटन से उत्पन्न अबद्ध पदार्थ।

अप्रकाशी क्षेत्र **Aphotic zone.**

सागर का वह भाग जहाँ पौधों द्वारा प्रकाशसंश्लेषण के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रकाश नहीं पहुंचता।

अपरदन **Erosion**

चट्टानों का भौतिक और रासायनिक विघटन तथा इस प्रकार विखंडित और घुले हुए पदार्थ का स्थानांतरण।

अपसरण Divergence

एक क्षेत्र विशेष से पानी का विभिन्न दिशाओं में, बाहर की ओर प्रवाह; अधिकांशतः उत्स्रवण क्षेत्र से संबद्ध।

अभिवहन Advection

जलधारा में समुद्री पानी की क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर गतियां।

अवशिष्ट जमावट Relict sediment

ऐसी जमावट जिसके अभिलक्षण वर्तमान परिस्थितियों को दर्शाकर अतीत की परिस्थितियाँ दर्शाती हैं।

अवायवीय Anaerobic

वह परिस्थिति जहाँ आक्सीजन अनुपस्थित रहती है। काला सागर इसका उदाहरण है।

असंरक्षी गुण Non-conservative property

सागर के पानी का ऐसा गुण जो वह सतह पर प्राप्त करता है और जो उस के गहराई पर चले जाने के बाद, पानी के आपस में मिलने और विसरित होने के अतिरिक्त, अन्य प्रक्रियाओं द्वारा, बदला जा सकता है। उदाहरणार्थ पानी में घुली आक्सीजन की मात्रा। पानी के गहराई पर चले जाने के बाद जीवों द्वारा ग्रहण कर लिए जाने के परिणामस्वरूप वह कम हो जाती है।

आकाशी जल Meteoric water

वायुमंडल से प्राप्त जल।

आवास अवधि Residence time

समुद्री जल में किसी क्षण विशेष पर मौजूद किसी तत्व की कुल मात्रा और उसके प्रतिस्थापन अथवा अवक्षेपण की दर के बीच का अनुपात।

उत्स्रवण Upwelling

वह प्रक्रिया जिससे सागर में, गहरा, ठंडा, पानी सतह पर आता रहता है। यह प्रक्रिया आमतौर से भूमध्यरैखिक जलधाराओं अथवा तट के सहारे बहने वाली जलधाराओं के कारण होती है क्योंकि ये सतह पर से पानी को बहा ले जाती हैं। उसकी पूर्ति के लिए गहराई से पानी ऊपर (सतह) पर आता रहता है।

उद्गम केंद्र भूकंप Focus (of an earthquake)

पृथ्वी के गर्भ में वह वास्तविक क्षेत्र जहाँ भूकंप पैदा होता है।

एकमैन कुंडली Ekman spiral

असीमित गहराई और चौड़ाई तथा एकसमान श्यानता वाले सागर पर एक सी गति से बहने वाली कर्ष पवन के प्रभाव को समझाने वाला एक सैद्धांतिक मॉडल। इस कर्ष के फलस्वरूप उत्तरी गोलार्द्ध में सतह की जलधारा पवन के दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर, 45° पर, बहने लगती है। सागर की गहराई बढ़ने के साथ धारा की दिशा अधिक मुड़ने लगती है। इससे लगभग 100 मीटर की गहराई पर धारा के बहने की दिशा बदलकर पवन की दिशा की विपरीत हो जाती है।

कॉपिपॉड Copepod

चिंगट (श्रिंप) सदृश्य क्षुद्र क्रस्टेशियन। अधिकांश की लंबाई 0.5 से 10.0 मिमी. तक होती है। इनमें से अनेक जीवसंदीप्त होते हैं और उनके समूह तेज चमकीला, प्रकाश उत्पन्न करते हैं।

कोरल रोधिका (बैरियर भित्ति) Barrier reef

सागर के तट के निकट और समानांतर स्थित कोरल भित्ति। उसके और तट के बीच में एक गहरा लैगून होता है जिसे कोरल पार नहीं कर पाते। अक्सर यह भित्ति तट के निकट काफी दूर तक फैली होती है पर इसमें जगह–जगह पर चैनल या दर्रे होते हैं।

कोलाइडी कण Colloidal particle

बहुत सूक्ष्म – आमतौर पर 0.00024 सेमी. से भी सूक्ष्म कण।

क्रस्टेशियन Crustacean

आर्थोपोड़ाओं का ऐसा वर्ग जो गलफड़ों या ब्रेंकिया की मदद से सांस लेता है और उनका शरीर आमतौर से एक कठोर खोल या पपड़ी (क्रस्ट) से ढंका रहता है। इस वर्ग में बार्नकल, केकड़े, श्रिंप और लोब्स्टर आदि शामिल हैं।

क्लोरीनता Chlorinity

समुद्री पानी में क्लोरीन की मात्रा जो ग्राम प्रति किग्रा. पानी के रूप में व्यक्त की जाती है। आजकल यह सब हैलाइडों के समतुल्य 0.328533 गुना चांदी के रूप में परिभाषित की जाती है।

क्षतिपूर्ति गहराई Compensation depth

वह गहराई जिस पर पौधों द्वारा (24 घंटे की अवधि में) प्रकाशसंश्लेषण से उत्पन्न आक्सीजन की मात्रा उतनी ही होती है जितनी पौधे श्वसन के रूप में ग्रहण कर लेते हैं।

खाड़ी रोध Bay barrier

ऐसी समुद्री जमावट जो दोनों सिरों पर मुख्य थल खंड से जुड़ी होती है और खाड़ी के मुख में पूरी तरह फैली होती है। इससे खाड़ी खुले सागर से बिलकुल अलग हो जाती है।

खाद्य शृंखला Food chain

एक जटिल तंत्र जिसमें अनेक जीव निहित होते हैं जिनमें से प्रत्येक अपने से बड़े जीव का शिकार होता है।

गभीर प्रकीर्णन परत Deep scattering layer

सागर में जीवों के झुंडों द्वारा निर्मित एक ऐसी परत जो ध्वनि को परावर्तित कर देती है और तली का मिथ्या आभास कराती है। यह परत 100 मीटर तक मोटी हो सकती है। दिन के समय ये जीव गहराई में चले जाते हैं जबकि रात के समय सागर सतह के निकट आ जाते हैं।

गहराई मापन Sounding

सागर की गहराई का निर्धारण। यह निर्धारण एक विशेष प्रकार की ध्वनि के सागर की तली से परावर्तित होकर पुनः सागर सतह तक पहुंचने में लगने वाले समय-अंतराल के मापन से किया जाता है।

गभीर सागर/गभीर तली Bathayl

सागर का वह भाग अथवा तली जिसकी गहराई 100 से 2000 फैदम (180 से 3700 मीटर) के बीच होती है।

गाईऑट Guyot

सपाट शीर्षवाला जल में डूबा द्वीप।

चंद्र दिवस Lunar day

किसी स्थानीय देशांतर पर चंद्रमा के दो उत्तरोत्तर गमनों के बीच की समयावधि। यह अवधि मोटे तौर पर 24.84 सौर घंटों के बराबर होती है।

14—414 M/o HRD/2003

चुंबकीय असंगति Magnetic anomaly

पृथ्वी की पपड़ी में उपस्थित लौहचुंबकीय खनिजों के गुणों के परिणामस्वरूप पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के नियमित पैटर्न में विकृति।

चरना Grazing

जंतु प्लांक्टनों द्वारा पादप प्लांक्टनों का भक्षण।

जलधारा अधस्तल Current subsurface

आमतौर से पिक्नोक्लाइन के नीचे बहने वाली जलधारा। सामान्यतः इसकी गति धीमी होती है। यह सतह पर बहने वाली धारा की विपरीत दिशा में बहती है।

आविलता– turbidity–

अत्यंत आविल, अपेक्षाकृत सघन, जलधारा जिसमें बड़ी मात्रा में क्ले, गाद और रेत निलंबित रहते हैं। ऐसी धारा सागर में अपेक्षाकृत कम सघन समुद्री पानी में से जलमग्न ढाल पर बहती है।

ज्वारीय– tidal–

खगोलीय पिंडों द्वारा उत्पन्न ज्वार से संबद्ध पानी के उत्थान और पत्तन के दौरान होने वाली पानी की क्षैतिज हलचल। अपेक्षाकृत खुले क्षेत्रों में ज्वारीय धारा की दिशा दैनिक अथवा अर्द्धदैनिक रूप से 360° के कोण पर लगातार, बदलती रहती है। तटीय क्षेत्रों में ज्वारीय धारा की प्रकृति स्थानीय स्थलाकृति के अनुसार बदलती रहती है।

तरंगिका– rip–

तट की ओर आने वाली लहरों अथवा पवन द्वारा तट पर एकत्रित हो जाने वाले पानी का वापिस बहाव तट से सागर की ओर, तेज बहने वाली, सतही, संकरी धारा।

भाटा– ebb–

ज्वारीय धारा जो ज्वार की ऊँचाई के ह्रास से संबद्ध होती है। आमतौर से वह सागर की ओर अथवा ज्वार के बढ़ने की दिशा के विपरीत बहती है। कुछ लोग भ्रमवश इसे "भाटा" भी कहते हैं।

भूविक्षेपी– geostropic–

ऐसी जलधारा जो पृथ्वी के घूर्णन से, गुरुत्वाकर्षण बल और कॉरिऑलिस प्रभाव के बीच लगभग संतुलन स्थापित होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है।

वेलांचली– **longshore–**

तट द्वारा लहरों को एक कोण पर विक्षेपित किए जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न जलधारा। यह धारा तट के लगभग समानांतर बहती है।

सघन– **density–**

ऐसी जलधारा जो घनत्वों के अंतर अथवा गुरुत्व के कारण दूसरी धारा में से या उस के नीचे से अथवा ऊपर से, बहती है। इस प्रकार की धारा का पानी, आसपास के पानी के साथ घनत्वों में अंतर के कारण, नहीं मिल पाता।

जलजनित जमावट **Hydrogenous sediment**

वह जमावट जो समुद्री पानी में से अवक्षेपण के, अथवा मौजूदा निक्षेप और समुद्री पानी के बीच आयनों के विनिमय के, फलस्वरूप बनती है। इस प्रकार के अवक्षेपण से ही बहुंधात्विक पिंड, फास्फोराइट, ग्लूकोनाइट, फिलीप्साइट, आदि का निर्माण होता है।

जीव-जीवी जमावट **Biogenous sediment**

मृत जंतुओं और पौधों के कार्बनिक मलबे से बनी जमावटें।

जैवमंडल **Biosphere**

पृथ्वी के भीतर, उसकी सतह पर तथा उसके ऊपर मौजूद जीवन का कुल मंडल।

जैवमात्रा **Biomas**

प्रति इकाई क्षेत्रफल या इकाई आयतन में रहने वाले जीवों की मात्रा, ग्रामों में।

ज्वार उच्चतम **High water**

ज्वार द्वारा पहुंचने वाला वह उच्चतम स्तर जिस पर पहुंच कर ज्वार नीचे उतरने लगता है।

बृहत– **spring–**

पूर्णिमा या अमावस्या को आने वाला उच्च ज्वार।

भूमध्यरैखिक– **equatorial–**

महीने में दो बार आने वाला ज्वार जब चंद्रमा भूमध्यरेखा पर रहता है। यह न्यूनतम दैनिक असमानता दर्शाता है।

माध्य उच्चतम– **mean high water–**

19-वर्षीय अवधि के दौरान सब उच्चतम ज्वारों की औसत ऊँचाई।

लघु– **neap–**

सप्तमी–अष्टमी को चांद के गुरुत्वाकर्षण बल के क्षीण पड़ जाने के फलस्वरूप उत्पन्न क्षीण ज्वार।

ज्वारनदमुख **Estuary**

एक अर्द्ध–परिबद्ध, तटीय जलराशि, जो खुले सागर से जुड़ी हुई हो और जहाँ थल स्रोतों से आने वाला ताजा पानी समुद्री पानी में मिलता रहता है।

तट, अग्र **Shore, foreshore–**

वह तटीय क्षेत्र जो सागर के पानी के सामान्यतः ऊपरी और निचले स्तरों के बीच स्थित होता है – अंतराज्वारीय क्षेत्र।

निकट– **near–**

तट रेखा से सागर की ओर, खंडित्रों की रेखा तक, फैला क्षेत्र।

पश्च– **back–**

सागर के किनारे की, अपेक्षाकृत सपाट तट की, संकरी पट्टी। आमतौर से यह पट्टी सूखी रहती है और इस पर केवल उच्चतम ज्वार के दौरान ही पानी भरता है।

तटीय प्रवालभित्ति **Fringing reef**

सीधे तट से जुड़ी हुई कोरलभित्ति।

तनुतापी **Stenothermal**

वे जीव जो ताप की क्षुद्र घट-बढ़ ही सहन कर सकते हैं।

तनुलवणी **Stenohaline**

वे जीव जो लवणता की क्षुद्र घट-बढ़ ही सहन कर सकते हैं।

तरणक **Nekton**

स्वतंत्र रूप से तैरने वाले समुद्री जीव। मछलियाँ, वयस्क स्क्विड और समुद्री स्तनधारी जीव तरणक होते हैं।

नितल– **–benthos**

सागर की तली के निकट स्वतंत्र रूप से तैरने वाले जीव। ये जीव अपना अधिकांश जीवन तली के निकट ही गुजारते हैं।

तलमज्जी **Demersal**

सागर की तली के निकट रहने वाले जीव।

थर्मोक्लाइन **Thermocline**

सागर में पानी का एक ऐसा स्तर जिसमें ऊपर से नीचे की ओर जाते समय ताप शीघ्रता से बदलता है।

द्वितीयक तटरेखा **Secondary shoreline**

वह तटरेखा जहाँ तटीय क्षेत्र मुख्य रूप से समुद्री अथवा जैव कारकों यथा कोरल भित्तियों, दल–दल आदि द्वारा निर्मित हुआ हो।

द्वीप चाप व्यवस्था **Island arc system**

द्वीपों की ऐसी रैखिक व्यवस्था, जिसकी अवतल बाजू (कानकेव साइड) उस सागर की ओर होती है जो द्वीपों को महाद्वीप से अलग करता है और उत्तल बाजू (कानवैक्स साइड) उस खुले सागर की ओर जिसमें गहरी खाइयाँ और खड्ड होते हैं।

दुर्बलतामंडल **Asthenosphere**

मैंटल के भीतर, पृथ्वी की सतह से 100 से 400 किमी. नीचे, स्थित लचीली गतिशील परत। इसी परत पर प्लेटें क्षैतिज रूप से गति करती हैं।

दृश्यांश **Outcrop**

धरती की सतह पर चट्टानों का उद्भासन।

दैनिक **Diurnal**

ज्वारों के संदर्भ में एक चंद्र दिवस (24.84 सौर घंटों के समतुल्य) जिसमें एक उच्च ज्वार और एक निम्न ज्वार (भाटा) आता है।

ध्वनि चैनल **Sound channel**

वह क्षेत्र जहाँ ध्वनि का वेग न्यूनतम हो जाता है। इस क्षेत्र में ऊर्जा की बहुत कम हानि के साथ ध्वनि ऊपर या नीचे की ओर से उसी क्षेत्र में अपवर्तित हो जाती है। इस प्रकार इस क्षेत्र में गति करने वाली ध्वनि को कई हजार किलोमीटर दूरी तक पारेषित किया जा सकता है।

ध्रुवीय परिभ्रमण **Polar wandering**

भूवैज्ञानिक काल के दौरान चुंबकीय ध्रुवों का आभासी स्थानांतरण।

नॉट **Knot**

गति की इकाई जो एक नॉटिकल मील प्रति घंटे के बराबर होती है। यह 1.688 फुट प्रति सैकंड अथवा 51.4 सेमी. प्रति सैकंड के तुल्य होती है।

नितल जीवजात **Benthos**

सागर की तली पर रहने वाले जीव।

निपंक **Ooze**

वह समुद्री जमावट जिसमें विभिन्न सूक्ष्मजीवों के खोलों की मात्रा 30 प्रतिशत से अधिक होती है। निपंकों को आमतौर से उनकी संरचना के अनुसार अथवा उनके प्रमुख घटकों (जीवों के अवशेषों) के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है यथा सिलिकामय, रेडियोलारेनमय।

नेरिटांचली **Neritic**

सागर का वह भाग जो तट के निकट के 200 मीटर गहरे सागर तक फैला होता है। दूसरे शब्दों में महाद्वीपीय शेल्फ के ऊपर स्थित जलराशि।

पपड़ी (पर्पटी, पटल) **Crust**

पृथ्वी का सबसे ऊपरी और सबसे पतला भाग। इसकी मोटाई सागरों के नीचे लगभग 5 किमी. होती है जबकि महाद्वीपों के नीचे लगभग 25 किमी.। सागर के नीचे वह बेसाल्टी चट्टानों से बना हुआ है और थल के नीचे ग्रेनाइटी चट्टानों से।

पिक्नोक्लाइन **Pycnocline**

सागर का वह क्षेत्र जहाँ पानी के ताप और लवणता में परिवर्तन के फलस्वरूप उसके घनत्व में तेजी से वृद्धि होती है। पिक्नोक्लाइन क्षेत्र में पानी के घनत्व में वृद्धि उस क्षेत्र के ऊपर और नीचे के क्षेत्रों की तुलना में अधिक होती है।

पुराचुंबकत्व **Paleomagnetism**

किसी वस्तु में उपस्थित वह अवशिष्ट चुंबकत्व जो वस्तु के निर्माण के समय उसने पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र से ग्रहण किया था।

पुलिन **Beach**

सागर तट के साथ रेत और रोड़ियों की जमावट जो आमतौर से लहरों और जलाशयों द्वारा लाई गई सामग्री से बनी होती है।

पृथुतापी **Eurythermal**

ये समुद्री जीव जो पानी के ताप की बहुत घट–बढ़ को भी सहन कर सकते हैं।

पृथुलवणी **Euryhaline**

वे समुद्री जीव जो पानी की लवणता में बड़े परिवर्तन को सहन कर सकते हैं।

प्लांक्टन **Planktor**

अंश– **mero–**

वे जीव जो अपने जीवन के आरंभिक काल में (अंडों और लार्वों के रूप में) तिरते रहते हैं। बाद में वे नितलस्थ हो जाते हैं। इस प्रकार के प्लांक्टन विशेष रूप से, नेरिटांचली पानी में बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। अस्थायी प्लांक्टन।

अतिसूक्ष्म– **ultra–**

वे प्लांक्टन जो 5 म्यू से छोटे होते हैं। इनमें बैक्टीरिया और छोटे फ्लेजलेट जीव शामिल होते हैं। इन्हें समुद्री पानी से निकालना बहुत कठिन होता है।

नैनो– **nano–**

वे प्लांक्टन जिनका आकार 5 से 60 म्यू के बीच होता है। इनमें अनेक प्रकार के डाइनोफ्लेजलेट और छोटे डायएटम शामिल होते हैं। नैनो प्लांक्टन अधिकांश जालों (प्लांक्टन पकड़ने के जालों) में से निकल जाते हैं और सेंट्रीफ्यूज की मदद से ही पकड़े जाते हैं।

मेसो– **meso–**

मध्य गहराइयों में निवास करने वाले सब प्रकार के प्लांक्टन।

सूक्ष्म– **micro–**

वे प्लांक्टन जिनका आकार 60 म्यू और एक मिमी. के बीच होता है। अधिकांश पादप प्लांक्टन इसी वर्ग में आते हैं।

होलो– **holo–**

वे जीव जो अपना संपूर्ण जीवन प्लांक्टन के रूप में ही बिताते हैं।

प्राथमिक उत्पादकता **Primary productivity**

एक निश्चित आयतन की जलराशि अथवा आवास में, एक निश्चित समयावधि में, जीवों द्वारा अकार्बनिक पदार्थों से कार्बनिक पदार्थों का उत्पादन।

प्रतिध्वनिक गहराई मापन **Echo sounding**

सागर की गहराई मापने की एक तकनीक जिसमें ध्वनिक अथवा पराश्रव्य संकेत

सागर की तली की ओर भेजे जाते हैं और तली से उनके परावर्तित होकर वापस सागर सतह तक आने की समयावधि से गहराई का अनुमान लगाया जाता है।

बेसिन **Basin**

सागर का वह गहरा, समतल, भाग जो महाद्वीपीय मार्जिन से महासागरीय पर्वत श्रृंखला तक फैला होता है। इसकी गहराई आमतौर से 4 से 5 किमी. तक होती है।

भ्रंश **Fault**

चट्टान में ऐसी दरार जिसके दोनों ओर के भाग, आपेक्षिक रूप से, विस्थापित हो गए हों।

भू-अभिनति **Geosyncline**

एक लंबी, रैखिक बेसिन जिसमें बहुत मोटी–मोटी (हजार मीटर या उससे अधिक मोटी) अवसादी जमावटें होती हैं। ये बेसिनें ऊपर उठ सकती हैं, वलित हो सकती हैं और इनमें भ्रंश पड़ सकते हैं और अंततः ये पर्वतों में रूपांतरित हो सकती हैं।

मंदप्रकाशी क्षेत्र **Disphotic zone**

सागर का वह क्षेत्र जहाँ सौर प्रकाश मंद रूप में पहुंच पाता है। इस क्षेत्र में प्रकाश की कमी के कारण प्रकाशसंश्लेषण क्रिया नहीं हो पाती।

महाद्वीपीय ढलान **Continantal slope**

महाद्वीपीय शेल्फ और महाद्वीपीय उत्थान के बीच लगभग 1500 मीटर की गहराई तक फैला, तीखे ढलान वाला, क्षेत्र।

–मार्जिन **–margin**

महाद्वीपों के निकट का उथला सागर जो थल और गहरे सागर के बीच स्थित होता है। इसमें महाद्वीपीय शेल्फ और महाद्वीपीय उत्थान शामिल होते हैं।

–शेल्फ **–shelf**

सागर की तली का उथला हिस्सा, जो महाद्वीप के एकदम निकट से आरंभ हो जाता है। सामान्यतः वह सागर की ओर एकसा ढलुवां होता है और सागर के निकट तीखे महाद्वीपीय ढलान में बदल जाता है।

महासागरीय क्षेत्र Oceanic province

सागर का वह भाग जो 200 मीटर से अधिक गहरा होता है।

मैंटल Mantle

पृथ्वी की पपड़ी और उसके क्रोड के बीच की परत।

मोहोरोविसिक असांतत्य (मोहो) Mohorovicic discontinuity (Moho)

पृथ्वी की पर्पटी के नीचे (सागरों की तली के नीचे 11 किमी. गहराई पर और महाद्वीपों के नीचे 35 किमी. गहराई पर) भूकंपी तरंगों के वेग में एकाएक असांतत्य (परिवर्तन) आ जाता है। यह असांतत्य पृथ्वी की विभिन्न परतों में रासायनिक अथवा प्रावस्था परिवर्तन दर्शाता है। यह मैंटल के ऊपरी भाग में स्थित होता है।

रीफ, (भित्ति, शैल भित्ति) Reef

मुख्यतः जैविक जमावट जिसका निर्माण जीवित अथवा मृत जीवों ने किया हो और जो टीले या पहाड़ी के सदृश्य हो।

रुद्धोष्म प्रवणता Adiabatic gradient

सागर में ऊर्ध्वाधर पैमाने पर प्रति 1000 मीटर ताप परिवर्तन की दर।

लवणता Salinity

सागर के पानी में घुले पदार्थों की कुल मात्रा। यह एक किग्रा. सागर जल में घुली मात्रा के रूप में प्रति एक हजार भाग के रूप में दर्शायी जाती है।

लहर Wave

आंतरिक– Internal–

वह लहर जो भिन्न–भिन्न घनत्वों वाले जलों की सीमा पर उत्पन्न होती है।

उथली जल– shallow water–

पानी की सतह पर एक ऐसी लहर जिसकी तरंगदैर्ध्य पानी की गहराई की तुलना में कम से कम 20 गुनी होती है।

केशिका (पृष्ठ तनावी)– capillary–

ऐसी लहर जिसका प्रसार–वेग मुख्य रूप से, उस द्रव, जिसमें से वह गति करती है, के पृष्ठ तनाव द्वारा नियंत्रित होता है। दूसरे शब्दों में ऐसी लहर जो मुख्यतः पृष्ठ तनाव द्वारा नियंत्रित होती हैं। ऐसी जल लहर जिसका तरंगदैर्ध्य 2.5 सेमी. के कम होता है, केशिका लहर कहलाती हैं।

खंडित्र– breaker–

वह लहर जो उसके शीर्ष के आधार से आगे निकल जाने के कारण भंग हो जाती है।

गुरुत्व– gravity–

लहर जिसका अग्रसर वेग मुख्य रूप से पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा नियंत्रित होता है। 5 सेमी. से अधिक तरंगदैर्ध्य की जल लहरें गुरुत्व लहरें होती हैं।

प्रणोदित– forced–

ऐसी लहर जो लगातार प्राप्त होते रहने वाले बल, यथा चांद का गुरुत्वाकर्षण बल, द्वारा उत्पन्न होती है और उसके ही कारण जीवित रहती हैं।

मुक्त– free–

ऐसी लहर जो उसको उत्पन्न करने वाले बल के अतिरिक्त किसी अन्य बल द्वारा प्रभावित नहीं होती। यह समांगी सीमा परिस्थितियों का पालन करती है। सागर या किसी जलराशि में मुक्त लहर सहसा उत्पन्न समाघात द्वारा उत्पन्न होती है। बाद में वह घर्षण, बेसिन के विस्तार और उस जल माध्यम के परिक्षेपी लक्षणों द्वारा ही प्रभावित होती हैं। सागर सतह की अधिकांश लहरें (ज्वारीय लहरों के अतिरिक्त) मुक्त लहरें होती हैं।

संक्रमण– transitional–

गहरे पानी से उथले पानी की ओर जाने वाली ऐसी लहर जिसकी तरंगदैर्ध्य पानी की गहराई के दुगने से अधिक परंतु बीस गुने से कम होती है।

लैगून Lagoon

उथली जलराशि जिसका सागर के साथ प्रतिबंधित संबंध होता है।

वलन Fold

चट्टानों अथवा अवसादी जमावटों में मोड़ या वक्रता।

वितलीय पहाड़ी Abyssal hill

वह छोटी पहाड़ी जिसकी ऊँचाई 30 से 1000 मीटर तक होती हैं। ऐसी पहाड़ियाँ सागर की तली के अधिकांश भाग को घेरे हुए हैं।

–मैदान –plain

सागर का वह समतल भाग जो 2000 से 6000 मीटर तक गहरा होता है।

विभंग क्षेत्र Fracture zone

सागर की तली का बड़ा, अनियमित क्षेत्र जिसमें पहाड़ियों और समुद्री टीले उपस्थित होते हैं। इस क्षेत्र के बीच में अक्सर ही पहाड़ी स्थित होती है।

विवर्तनिकी Tectonics

पृथ्वी की पपड़ी की संरचनात्मक विकृति का उद्गम और इतिहास।

वेलांचली Littoral

तट के निकट का पर्यावरण।

वेलापवर्ती Pelagic

सागर का, तल के ऊपर का जलीय क्षेत्र। इसमें मुख्यतः दो उपक्षेत्र होते हैं: नेरिटांचली और महासागरीय। नेरिटांचली उपक्षेत्र का संबंध महाद्वीपीय शेल्फ के ऊपर स्थित जलराशि से होता है जबकि महासागरीय उपक्षेत्र का गहरे सागर के (200 मीटर से अधिक गहरे) जल से।

आधि– epi–

100 मीटर तक गहरा सागर।

गभीर– bathy–

1000 से 4000 मीटर तक गहरा सागर।

मध्य- meso–

100 से 1000 मीटर तक गहरा सागर।

वितल– abysso–

सागर का वह भाग जिसकी गहराई 4000 से 10,000 मीटर तक होती है।

वृत्ताकार गति Gyre

पानी का वृत्ताकार कुंडली में घूमना।

शेल्फ अवकाश (भग्नतट ढलान) Shelf break

ढलान में एक ऐसी तीक्ष्ण रुकावट जो महाद्वीपीय शेल्फ की कगार और महाद्वीपीय ढलान को आरंभ करती है।

शोल Shoal

सागर में डूबा हुआ उथला किनारा अथवा पहाड़ी जो जल जहाजों के लिए खतरा पैदा कर सकती है।

समताप रेखा Isotherm

समान अथवा स्थिर ताप वाले सब स्थानों को आपस में जोड़ने वाली काल्पनिक रेखा।

समलवणता रेखा Isohaline

समान लवणता वाले सब स्थानों को आपस में जोड़ने वाली काल्पनिक रेखा।

समुद्री टीला Sea mount

सागर की तली पर स्थित ऐसा उभार/पर्वत जो 1000 मीटर से अधिक ऊंचा हो।

सहभोजिता Commensalism

दो जीवों के बीच ऐसा संबंध जिसमें एक जीव दूसरे का, बिना उसे हानि या लाभ पहुंचाए, फायदा उठाता है।

सिएल Sial

महाद्वीपों के नीचे स्थित भूपर्पटी जिसमें सिलिका और एलूमीनियम का बाहुल्य होता है।

सिल Sill

पर्वत शृंखला जो अंशतः घिरी हुई सागर बेसिन को सागर अथवा दूसरी बेसिन से अलग करती है।

सीमांत समुद्र Marginal sea

महासागर के निकट स्थित और उससे भलीभांति जुड़े सागर।

सुप्रकाशित क्षेत्र Euphotic zone

सागर का वह क्षेत्र जिसमें पौधों को प्रकाशसंश्लेषण हेतु पर्याप्त प्रकाश मिल जाता है। उस क्षेत्र में जहाँ नदियाँ सागर में मिलती हैं, या ज्वारनदमुखों में अथवा वर्षा ऋतु में, सुप्रकाशित क्षेत्र कुछ सेमी. से लेकर 5–6 मीटर गहराई तक होता है। उपतटीय क्षेत्र में वह 20 से 40 मीटर गहराई तक तथा खुले सागर में जहाँ पानी निर्मल होता है, वह 140 मीटर गहराई तक होता है।

सेश, (सरतल दोलन) Seiche

अचल लहर। ऐसी लहर जो आगे नहीं बढ़ती परंतु जल ऊपर–नीचे होता रहता है। कुछ निश्चित बिंदुओं पर जल सतह अचल रही आती है।

स्थानबद्ध Sessile

किसी स्थान पर स्थायी रूप से निवास करने वाला जीव।

हैलोक्लाइन **Halocline**

सागर सतह से आमतौर से 50 से लेकर 100 मीटर तक गहरा (कभी–कभी यह गहराई 1000 मीटर तक भी हो जाती है) वह भाग जहाँ समुद्री पानी की लवणता तेजी से बदलती है। हैलोक्लाइन में लवणता–परिवर्तन उसके ऊपर अथवा नीचे के क्षेत्रों की तुलना में अधिक होता है।

परिशिष्ट-तीन

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली-निर्माण के सिद्धांत

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं:

   (क) तत्त्वों और यौगिकों के नाम, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड आदि;

   (ख) तौल और माप की इकाइयाँ तथा भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर आदि;

   (ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ. गिलोटिन), गेरीमैंडर (मि. गेरी), एम्पियर (मि. एम्पियर), फ़ारेनहाइट तापक्रम (मि. फ़ारेनहाइट) आदि;

   (घ) वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली;

   (ङ) स्थिरांक, जैसे π, g आदि;

   (च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि;

   (छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला

के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप देवनागरी और मानक रूपों से भी, विशेषतः साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे सेन्टीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु देवनागरी में संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु **विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों** में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm ही प्रयुक्त करना चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे क, ख, ग, या अ, ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे साइन A, कॉस B आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो:-

   (क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और

   (ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे telegraph/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन,

पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स, आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. **अतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण :** अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. **लिंग** - हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. **संकर शब्द :** पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए 'गारंटित', classical के लिए 'क्लासिकी', codifier के लिए 'कोडकार' आदि, के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं, यथा सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास :** कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है। परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

13. **हलंत** - नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

14. **पंचम वर्ण का प्रयोग :** पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए परंतु lens, patent आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

परिशिष्ट-चार

आयोग द्वारा प्रकाशित परिभाषा-कोशों की सूची

क्र.सं.	परिभाषा-कोश	मूल्य
1.	भूविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 284)	10.00
2.	भूविज्ञान परिभाषा-कोश-2 (सामान्य भूविज्ञान) (पृ. 196)	13.50
3.	शैलविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 195)	-
4.	प्रारंभिक पारिभाषिक रसायन कोश (पृ. 242)	3.25
5.	उच्चतर रसायन परिभाषा-कोश	17.00
6.	रसायन (कार्बनिक) परिभाषा-कोश-3 (पृ. 280)	25.00
7.	पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा-कोश (पृ. 188)	173.00
8.	प्रारंभिक पारिभाषिक कोश—गणित (पृ. 298)	18.75
9.	गणित परिभाषा-कोश (पृ. 253)	11.00
10.	आधुनिक बीजगणित परिभाषा-कोश (पृ. 159)	11.00
11.	सांख्यिकी परिभाषा-कोश (पृ. 432)	18.00
12.	भौतिकी परिभाषा-कोश (पृ. 212)	3.15
13.	आधुनिक भौतिकी परिभाषा-कोश (पृ. 290)	13.00
14.	प्राणिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 220)	10.00
15.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (1,2,3,4)	-
16.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश-5 (आकारिकी तथा वर्गिकी)	-
17.	पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 161)	80.50
18.	भूगोल परिभाषा-कोश	10.00
19.	मानव-भूगोल परिभाषा-कोश (पृ. 228)	18.00
20.	मानचित्र-विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 361)	231.00

21.	गृहविज्ञान परिभाषा-कोश	-
22.	गृहविज्ञान परिभाषा-कोश-2 (पृ. 64)	9.00
23.	इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा-कोश (पृ. 215)	22.00
24.	तरल यांत्रिकी परिभाषा-कोश (पृ. 76)	10.00
25.	यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा-कोश (पृ. 135)	84.00
26.	सिविल इंजीनियरी परिभाषा-कोश (पृ. 112)	61.00
27.	आयुर्विज्ञान पारिभाषिक कोश (शल्यविज्ञान)	48.05
28.	इतिहास परिभाषा-कोश (पृ. 297)	20.50
29.	शिक्षा परिभाषा-कोश (पृ. 197)	13.50
30.	शिक्षा परिभाषा-कोश-2 (पृ. 205)	99.00
31	मनोविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 142)	9.50
32.	दर्शन परिभाषा-कोश (पृ. 432)	9.75
33.	अर्थशास्त्र परिभाषा-कोश (पृ. 232)	117.00
34.	अर्थमिति परिभाषा-कोश (पृ. 245)	17.65
35.	वाणिज्य परिभाषा-कोश (पृ. 173)	24.70
36.	समाजकार्य परिभाषा-कोश (पृ. 183)	-
37.	समाजशास्त्र परिभाषा-कोश (पृ. 212)	71.40
38.	सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 287)	24.00
39.	पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 196)	49.00
40.	पत्रकारिता परिभाषा-कोश (पृ. 164)	87.50
41.	पुरातत्व परिभाषा-कोश (पृ. 391)	76.50
42.	पुरातत्व परिभाषा-कोश-2 (पृ. 453)	509.00
43.	पाश्चात्य संगीत परिभाषा-कोश (पृ. 104)	28.55
44.	भाषाविज्ञान परिभाषा-कोश खंड-1 (पृ. 212)	89.00
45.	कंप्यूटर-विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 144)	102.00

46.	राजनीतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 356)	343.00
47.	प्रबंधविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 191)	170.00
48.	अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा-कोश (पृ. 293)	344.00
49.	कृषि-कीटविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 213)	75.00
50.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 204)	75.00
51.	पादप आनुवंशिकी परिभाषा-कोश (पृ. 185)	75.00
52.	पादपरोगविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 138)	75.00
53.	मृदा विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 149)	77.00
54.	सूक्ष्मजैविकी परिभाषा-कोश (पृ. 193)	45.00
55.	भाषाविज्ञान परिभाषा-कोश खंड-2 (पृ. 259)	59.00
56.	धातुकर्म परिभाषा-कोश (पृ. 441)	278.00
57.	भारतीय दर्शन परिभाषा-कोश खंड-1 (पृ. 171)	151.00
58.	सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 263)	125.00
59.	विद्युत इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00

मुद्रणाधीन

60.	संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा-कोश	–

आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रहों की सूची

क्र.सं.	शब्द-संग्रह	मूल्य
1.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान, खंड-1,2 (पृ. 2058)	174.00
2.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 819)	38.50
3.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड-1,2 (पृ. 1297)	292.00
4.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 700)	132.00
5.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषि विज्ञान (पृ. 223)	278.00
6.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, नृविज्ञान	239.40
7.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 240)	48.50
8.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (पृ. 104)	48.00
9.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत्, यांत्रिक) (पृ. 566)	57.00
10.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी-2 (पृ. 186)	84.00

विषयवार शब्दावलियाँ

1.	मानविकी शब्दावली - (नृविज्ञान) (पृ. 179)	10.00

2.	कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (पृ. 337)	87.00
3.	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (पृ. 378)	55.00
4.	वाणिज्य शब्दावली (पृ. 172)	259.00
5.	समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
6.	अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	30.00
7.	भाषाविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 249)	113.00
8.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	निःशुल्क
9.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	निःशुल्क
10.	पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली (पृ. 174)	82.00
11.	लोक-प्रशासन शब्दावली (पृ. 98)	52.00
12.	अर्थशास्त्र शब्दावली (मानविकी शब्दावली-9) (पृ. 96)	4.40
13.	नृविज्ञान शब्दावली (पृ. 198)	10.00
14.	वानिकी शब्दावली (पृ. 62)	8.50
15.	खेलकूद शब्दावली (पृ. 103)	10.25
16..	डाकतार शब्दावली (पृ. 126)	11.60
17.	रेलवे शब्दावली (पृ. 56)	2.00
18.	गुणता-नियंत्रण शब्दावली (पृ. 67)	38.00
19.	रेशम विज्ञान शब्दावली (पृ. 85)	50.00
20.	गणित की मूलभूत शब्दावली (पृ. 135)	निःशुल्क
21.	कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 115)	निःशुल्क
22.	भूगोल की मूलभूत शब्दावली (पृ. 156)	निःशुल्क
23.	भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 141)	निःशुल्क

217

24.	वनस्पति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 207)	निःशुल्क
25.	पशु चिकित्सा विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 179)	निःशुल्क

शब्द-संग्रह

1.	कोशिका-जैविकी शब्द-संग्रह (पृ. 197)	62.00
2.	गणित शब्द-संग्रह (पृ. 357)	143.00
3.	भौतिकी शब्द-संग्रह (पृ. 536)	119.00
4.	गृहविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 144)	60.00
5.	रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (पृ. 167)	-
6.	भूगोल शब्द-संग्रह (पृ. 369)	200.00
7.	खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	-
8.	भूविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 328)	88.00
9.	संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (पृ. 48)	15.00
10.	पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (पृ. 184)	12.25

आयोग द्वारा प्रकाशित पाठमालाएँ/मोनोग्राफ

क्र.सं.		मूल्य
1.	ऐतिहासिक नगर	195.00
2.	प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
3.	समुद्री यात्राएँ	79.00
4.	विश्व दर्शन	53.00
5.	अपशिष्ट प्रबंधन	17.00

6.	कोयला : एक परिचय	294.00
7.	वाहित मल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
8.	पर्यावरणी प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.50
9.	रत्न-विज्ञान – एक परिचय	115.00
10.	2-दूरीक एवं 2-मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
11.	पराज्यामितीय फलन	90.00

प्रकाशनाधीन

12. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी
13. मैग्नेसाइट – एक भूवैज्ञानिक अध्ययन
14. स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन
15. स्वास्थ्य दीपिका
16. समकालीन भारतीय दर्शन के मानववादी चिंतक
17. भारत में कृषि का विकास
18. मृदा एवं पादप पोषण
19. हिंद महासागर – भविष्य की आशा
20. जैव-प्रौद्योगिकी – उद्भव एवं विकास

PED. 856 (हिन्दी)
600-2003 (DSK-II)

Price: Inland : ₨.154.00
Foreign: £ 2.2 or $ 3.15

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित,
एवं प्रकाशन नियंत्रक, दिल्ली द्वारा प्रकाशित.
PRINTED BY THE MANAGER, GOVERNMENT OF INDIA PRESS, FARIDABAD
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, DELHI.